

81/

जीवन रहस्य

श्री श्री माता अमृतानन्दमयी देवी

खंड ७

संकलन

स्वामी अमृतस्वरूपानन्द पुरी



माता अमृतानन्दमयी मिशन ट्रस्ट
अमृतपुरी, केरल

Jivan Rahasya (Hindi) Vol.7

Translation of the English original 'Awaken Children Vol.7' into
Hindi by : Dr. N.E. Vishwanath Iyer

Published by:

Mata Amritanandamayi Mission Trust
Amritapuri PO, Kollam Dt., Kerala,
INDIA 690525.

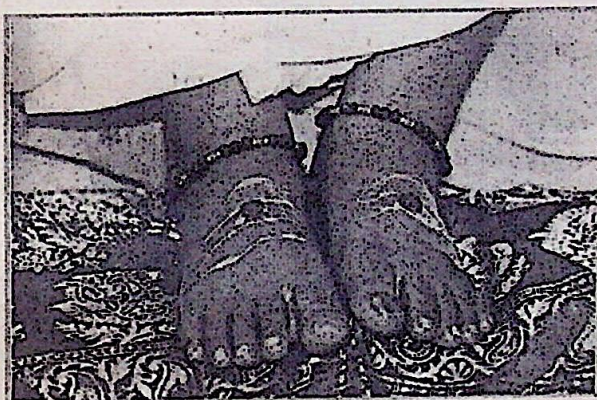
First Edition: February 2002 Copies 1000

Copyright © 2001 by Mata Amritanandamayi Mission Trust.
All rights reserved.

Page Layout: Amrita DTP, Amritapuri.

Printed at: Amrita Offset Printers,
Amritapuri P.O.,
Kollam Dist., Kerala - 690 525
Ph.: (0476) 896278, 897578, 896179 &
896399
email: mam@amritapuri.org
website: www.amritapuri.org

अम्मा के अमृततुल्य वचनों का यह संकलन
अम्मा के चरणकमलों में श्रद्धापूर्वक समर्पित ।



ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥

शोषणं पापपंकस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम् ।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ॥



प्रस्तावना

अपने जीवन में वेदान्त का अभ्यास करना वास्तविक जीवन की गहराइयों का अनुभव करना है, जीवन को पूर्णरूपेण समझना तथा अनुभव करना है। वेदान्त, जीवन का निषेध नहीं करता, उल्टे वह जीवन का समर्थक है। वह जीवन का ही अभिन्न अंग है। वेदान्त का विषय कोई बाह्य वस्तु नहीं है। वेदान्त तो हमें हमारे विषय में, हमारे स्वरूप, यथार्थ अस्तित्व के विषय में सिखाता है। वस्तुतः यथार्थ जीवन तभी प्रारंभ होता है जब व्यक्ति अपने भीतर आत्मा का अन्वेषण प्रारंभ करता है। तब ही हमारे जीवन की वास्तविक यात्रा का प्रारंभ होता है। अम्मा कहती है - "जैसे हम खाते, पीते और सोते हैं उसी तरह अध्यात्म को भी हमारे जीवन का अनिवार्य अंग होना चाहिए। अध्यात्म और भौतिकता के बीच संतुलन स्थापित किए बिना यथार्थ आनन्द प्राप्त नहीं होता और जीवन का लक्ष्य भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह संतुलन ही जीवन की नींव है, जीवन का सार है। यही वेदान्त एवं संसार के सभी धर्मों का ध्येय है। मेरे अभिप्राय में 'जीवन रहस्य' का यह सातवाँ खण्ड वेदान्त का सार है। यह आनन्दपूर्ण एवं सफल जीवन बिताने का अचूक उपाय है। इस पुस्तक में प्रत्येक शब्द गहन आध्यात्मिक तत्त्वों को उद्घाटित करता है एवं जीवन का सार तत्त्व इनमें निहित है। यदि इस पुस्तक को लगन से पढ़ें तो ध्यान की अनुभूति हो सकती है, आत्मा की झाँक मिल सकती है।

संसार के कोने-कोने में हम ऐसे कई लोगों को पाएँगे जो अपने-अपने

क्षेत्र में विशेषज्ञ माने जाते हैं। वे सफल और आनन्दपूर्ण जीवन बिताने की या तनावमुक्त जीवन शैली पर भाषण देते और कार्यशालाएँ चलाते हैं। यह वर्तमान युग में आम बात है। ये एक हद तक लाभकारी हैं ज़रूर, मगर इससे दीर्घकालीन अनुभव नहीं होता। वह सहभागियों पर एक अस्थायी प्रभाव डालता है। परंतु वे शीघ्र ही अपनी पुरानी मानसिकता में पड़ जाते हैं। क्यों? कारण यह कि प्रशिक्षक स्वयं समस्या के सही कारण में गहराई से पैठने और उसको जड़ सहित उखाड़ फेंकने की क्षमता नहीं रखते। अम्मा जैसे सद्गुरु ही यह कर सकते हैं। यह भय और अस्वस्थता का युग है, गहरी पीड़ाजनक व्यथा का युग है। व्यक्ति कैसे ऐसी पीड़ा से मुक्ति पाए? व्यक्ति कैसे भवसागर को लौघ सके? व्यक्ति समस्याओं और कोलाहल के बीच कैसे अविचलित और शान्त रह सकता है? उसका उपाय है। अम्मा उसी का पथ दिखा रही हैं। यही नहीं, अम्मा स्वयं हमारा हाथ अपने हाथ में लेकर मंजिल की ओर ले चलती हैं। तो वह रहस्य क्या है? अम्मा हमें बताती हैं - “साक्षी बने रहो। अपने अस्तित्व के केन्द्र में प्रतिष्ठित रहो। आत्मा में चिर प्रतिष्ठित रहो और जो कुछ हो रहा है उसका अवलोकन मात्र करो। यदि तुम साक्षी रहने की यह कला, जो कि तुम्हारा यथार्थ स्वभाव है, जान जाओगे तो सब कुछ सुन्दर और आनन्ददायक खेल बन जाएगा।”

अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ वार्तालापों में अम्मा, जो कि परमसत्य की मूर्तिमंत रूप हैं, अपने बच्चों के हित के लिए ज्ञान की विविध सतहें दिखाती हैं। अम्मा के अमृतमय व कृपापूर्ण शब्दों से पथ प्रकाशित और स्पष्ट हो जाता है। हमें इस पथ पर केवल चलना है। घबराने की कोई बात नहीं है। अम्मा जानती हैं कि हम डगमगाते पाँव से चलना सीखते बच्चे हैं। इसलिए अम्मा हमारा हाथ कस कर पकड़े हुए हैं, हमें सहायता देती हैं और अनन्त प्रेम एवं करुणा से पथ दिखाती हैं। विजय हमारी है।

- स्वामी अमृतस्वरूपानन्द पुरी

इस पुस्तक में चर्चित अधिकाँश घटनाएँ १९८४ अक्तूबर से लेकर १९८६ जनवरी तक की अवधि में घटी थीं। मीनाक्षी मंदिर की अम्मा की यात्रा अपवाद है, जो १९७७ के मध्य में हुई थी। कृष्णभाव की समाप्ति की घोषणा अक्तूबर १९८३ में हुई थी। कविवर ओट्टुर उणि नंबूदिरिप्पाड का देहान्त १९८९ अगस्त २५ को हुआ था।



अध्याय - १

सीमित अहं नहीं - असीम आत्मा

अम्मा इतने सारे लोगों के जीवन, खासकर युवाओं के जीवन जिन्होंने जीवन के आमोद-प्रमोद का अनुभव तक अभी नहीं किया है, का कैसे परिवर्तन कर पाती हैं? यह प्रश्न अनेक लोग करते हैं, आस्तिक व नास्तिक भी। इसका उत्तर सरल है, जब हम अम्मा के सान्निध्य में होते हैं, जब हम अम्मा की आँखों की गहराइयों में झाँकते हैं तब हमें अपनी आत्मा की एक झलक मिलती है। अम्मा के नयनों में अनन्तता प्रतिबिम्बित होती है। उनका संपूर्ण अस्तित्व हमें मन के अतीत होने की, पूर्ण अहंकारशून्य अवस्था की झलक देता है। हम अम्मा में अपनी ही निर्मलता, निश्छल प्रेम की पावनता देखते हैं, अपनी ही आत्मा के दर्शन करते हैं।

मान लो कि ज़िन्दगी भर हमने पौष्टिक आहार नहीं खाया है और एक दिन संयोग से पहली बार हमें पौष्टिक आहार मिलता है और वह बड़ा स्वादिष्ट भी होता है। ऐसा जायकदार और हितकारी भोजन चखने के बाद और उसके सुलभ होने पर भी क्या हम अपौष्टिक आहार खाने के लिए ललचाएँगे? नहीं। हममें अच्छे पुष्टिकारक भोजन की ही चाह होगी। उसी तरह अम्मा की उपस्थिति में उनके हर दृष्टिक्षेप, स्पर्श, शब्द और क्रिया में हम अमरत्व का अमृतपान करते हैं। हमें उसका स्वाद प्राप्त होता है और हमें भान होता है कि वही हमारा सहज स्वभाव है। हमें पता लगता है कि आनन्द के नाम पर अब तक हमने जो अनुभव किया वह उस आनन्दपूर्ण अनुभूति की तुलना में नगण्य है। हममें प्रथम बार बोधोदय होता है कि हम न शरीर हैं, न अहंकार, बल्कि हम सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं। जैसा कि अम्मा कहती हैं, "हम यह समझ पाते हैं कि हम निरीह मेमने नहीं हैं, शक्तिशाली सिंह हैं।" अम्मा यह मुद्दा

स्पष्ट करने के लिए एक कहानी सुनाती हैं -

“एक मुर्गी के अंडों के बीच में एक गरुड का अंडा भी पड़ा था। मुर्गी यह समझे बिना गरुड के अंडे को भी सेंकती रही। कुछ दिनों के बाद अंडों से चूजे निकले। गरुड का चूजा भी मुर्गी के चूजों के साथ दाना चुगता, कुतरता, मिट्टी से कीड़ों को चुनता और चोंच में लेकर खा जाता था। वह अपनी वास्तविक प्रकृति से बिल्कुल अनभिज्ञ था। दिन व महीने बीतते गए तो चूजे बड़ी मुर्गी-मुर्गा बन गए। तब भी गरुड अपने को उनमें से अभिन्न समझता हुआ मुर्गियों के साथ ही जीता था। वह पूरी तरह अपने भ्रम में उलझा हुआ था, उसने मुर्गे के रूप में अपने अस्तित्व को आत्मसात कर लिया था। एक दिन आसमान से उड़ते दूसरे गरुड की नज़र में यह मुर्गा-गरुड पड़ा, वह बड़ी व्यस्तता से मुर्गियों के साथ कीड़े चुग रहा था। आसमान के गरुड को इस दृश्य पर ताज्जुब हुआ। उसने निश्चय किया कि मुर्गे-गरुड को उसके भ्रम से बाहर निकालकर बचा लेना चाहिए। वह उस गरुड से मिलने की ताक में रहा। एक दिन आसमान का गरुड नीचे उतर आया और उसके पास गया। मुर्गे-गरुड ने जब आसमान से एक बड़े गरुड को अपनी तरफ आते देखा तब वह बहुत डर गया और मुर्गे की तरह कुलबुलाने लगा। क्षणभर में सारी मुर्गियाँ अपने साथी को बचाने उसे घेर कर खड़ी हो गईं, यों उस दिन गरुड को अपने प्रयास में असफल होकर वापस उड़ जाना पड़ा। लेकिन एक दिन मुर्गा-गरुड दोस्तों से दूर अकेले चलता दिखाई दिया। दूसरा मौका मिला। आसमान का गरुड धीरे से, सावधानी से, फिर से मुर्गे-गरुड के पास आया। अब की बार वह कुछ दूर ही खड़ा हो कर मुर्गे-गरुड से बोला, ‘मैं तुम्हारा दोस्त हूँ न कि दुश्मन। मैं तुमसे कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ।’ मुर्गे-गरुड को उसपर यकीन नहीं आया और वह डरकर भागने लगा। मगर आसमान का गरुड अपनी मोठी बातों से उसे रोक सका। उसने समझाया - ‘तुम कोई मामूली मुर्गे नहीं, तुम मेरे ही समान शक्तिशाली गरुड हो और आसमान की ऊँचाई में उड़ सकते हो।’ आसमान के गरुड ने कहा, ‘तुम्हारा स्थान यह धरती नहीं है, तुम्हारा स्थान अनन्त विशाल आकाश है। मेरे साथ चलो और

हवा में उड़ने का आनन्द लो। तुम वह कर सकते हो क्योंकि तुम मेरे समान ही हो, मुझमें जो शक्ति है वह तुममें भी है। लो, कोशिश कर देखो।' यों आसमान का गरुड मुर्गे-गरुड को मनाता गया। शुरू में मुर्गे-गरुड ने बिलकुल विश्वास नहीं किया। उसने यह भी सोचा कि यह गरुड की कोई चाल है। लेकिन आसमान के गरुड ने उसे न छोड़ने का दृढ़ निश्चय किया था। धीरज और चतुराई से वह मुर्गे-गरुड का विश्वासपात्र बन गया। इसके बाद उसने मुर्गे-गरुड को उसके साथ नज़दीक के एक तालाब तक चलने को कहा। मुर्गा-गरुड आसमान के गरुड पर यकीन करने लगा था। उसका मन कुछ और आश्वस्त था और वह आसमान के गरुड के साथ तालाब को चला। वहाँ वे पानी के पास खड़े हुए। आसमान का गरुड मुर्गे-गरुड से बोला, 'अब पानी में देखो। अपनी परछाई और मेरी परछाई की समानता देखो।' मुर्गे-गरुड ने स्वच्छ, शान्त जल में देखा। वह देखता ही रहा। उसे अपनी आँखों पर यकीन नहीं आ रहा था। वह ज़िन्दगी में पहली बार अपनी परछाई देख रहा था, असली प्रतिबिम्ब। अब उसने समझ लिया कि वह मुर्गे जैसा बिलकुल नहीं दिखता था, उलटे आसमान के गरुड सा ही था। इस अनुभव के बाद आसमान के गरुड पर उसका विश्वास दृढ़ हो गया। उसमें आत्मविश्वास जागा और वह आसमान के गरुड की हर बात को मानता चला। प्रारंभ में मुर्गे-गरुड को धरती से उड़ने में थोड़ी तकलीफ तो हुई किंतु शीघ्र ही दोनों गरुड साथ ही आसमान में शान से उड़ते दिखाई पड़े।"

अम्मा कहती है, "अधिकांश लोग मुर्गे-गरुड जैसे अज्ञान में रहते हैं। वे अपना स्वरूप नहीं पहचानते।"

अम्मा हमें स्मरण दिलाती हैं - "बच्चो, तुम सर्वशक्तिमान आत्मा हो। संपूर्ण विश्व तुम्हारा है। तुम संपूर्ण सृष्टि के स्वामी हो, वस्तुतः तुम ही समस्त सृष्टि हो। अपने को नगण्य, शक्तिहीन या सीमित व्यक्ति न मानो।"

अम्मा की उपस्थिति में हमें अपने यथार्थ स्वरूप की झलक मिलती है। हम यह झलक पाने पर मौन हो जाते हैं और उन्हीं को आश्चर्य से ताकते रहते हैं। अपने जीवन में पहली बार हमें अपने यथार्थ स्वरूप की झाँकि मिलती है। जब अम्मा कहती हैं कि हम केवल यह शरीर

नहीं, अहंकार नहीं, बल्कि सर्वशक्तिमान ईश्वर हैं तब उनके शब्द हमारे हृदय को भेद जाते हैं। कारण यह कि वे सीधे परमसत्य परमात्मा से ही उद्भूत हैं। अम्मा हमें पूर्णतः जीत लेती हैं और तब धीरे से हमें आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर की तरफ उड़ने में सहायता देती हैं। हम भी मुर्गे-गरुड की तरह अपने सत्य स्वभाव को पहचाने बिना अपना जीवन जीते रहे हैं। अम्मा के दिव्य सान्निध्य के प्रकाश में हमें बिजली की चमक की तरह सहसा यह बोध होता है कि हम इस संसार के नहीं हैं, बल्कि हम आत्मा हैं।

जब हम अपने को शरीर, मन व बुद्धि से अभिन्न मानते हैं तब हम मुर्गे-गरुड जैसा मायाभ्रम में जीवन बिताते हैं। हम शक्तिशाली गरुड हैं। हम विशाल आध्यात्मिक आकाश की ऊँचाई में उड़ सकते हैं। फिर भी हम अपना वास्तविक स्वरूप पहचाने बिना मुर्गियों की तरह जीते व मरते हैं।



अध्याय - २

मन पागल है

अम्मा ब्रह्मचारियों तथा कुछ गृहस्थ भक्तों के साथ वार्तालाप कर रहीं थीं। एक ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया - "अम्मा, यदि हम वस्तुतः आत्मा हैं तो सत्य का अनुभव करने में इतनी कठिनाई क्यों होती है?"

अम्मा ने उत्तर दिया - "सत्य बड़ा जटिल होता है, साथ ही सब से सरल भी। अज्ञानी और घमंडी लोगों के लिए इसे जानना सर्वाधिक कठिन है। पर जो जिज्ञासु हैं, जानने की तीव्र इच्छा रखते हैं, उनके लिए यह सबसे सरल भी है।

"लोग अहंकार का पोषण करने में ही लगे हैं। वे कभी आत्मा को जानने का विचार तक नहीं करते। आत्मज्ञान के लिए अहंकार को भूखों मारना होगा। परन्तु अधिकांश लोग अहंकार को भूखा रख नहीं पाते। उलटे वे उसी से अधिकाधिक जुड़े रहते हैं। मानव की प्रमुख प्रवृत्ति अपनी ओर अधिकाधिक आकर्षण खींच लेना है। वे चाहते हैं कि लोग उन्हें जानें, उनकी प्रशंसा करें; उनका मानना है कि यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। यह सब अहं का भोजन है, वह ध्यान पर ही जीता है। यदि तुम्हारा अहं लोगों के ध्यान की निरन्तर मांग करता रहे तो तुम अपनी आत्मा को कैसे जानोगे?

"आत्मसाक्षात्कार के लिए मन का विलयन होना आवश्यक है। जब तक मन रहेगा तब तक तुमपर अहं की प्रभुता रहेगी।

"लोग पागल लोगों की तरफ उंगली उठाते हैं और उन्हें 'पागल' कहते हैं। किंतु वे नहीं जानते कि वस्तुतः वे स्वयं पागल हैं। जिस किसी का मन है वह पागल है, क्योंकि मन पागलपन है। पागल व्यक्ति के संबंध में वह बाहर व्यक्त होता है और इसलिए हम उसे देख सकते

हैं। किंतु तुम्हारे विषय में वह अधिक प्रकट नहीं होता अतएव वह व्यक्त नहीं है। मगर पागलपन तो है ही क्योंकि मन का अस्तित्व है।

"लोग जब उत्तेजित, व्यग्र या क्रुद्ध होते हैं तब उनकी तरफ देखो। वे सचमुच पागल हो जाते हैं। क्रोध अस्थायी पागलपन के सिवा और कुछ नहीं। उत्तेजना या व्यग्रता के विषय में भी वही बात है। जब तुम अत्यधिक क्रुद्ध होते हो तब तुम पागलों सा बोलते हो, व्यवहार करते हो। वह एक अस्थायी स्थिति है, तुम मन का संतुलन खो बैठते हो। जब ऐसी स्थिति स्थायी बन जाती है तब पागलपन कहलाती है। अगर तुम अपने मन की गुलामी बहुत ज्यादा करो, उसे उचित नियंत्रण में न रखो तो तुम्हारी स्थिरता नष्ट हो जाएगी और तुम पागल हो जाओगे।

"मन ही अहंकार है, वह तुम्हें अहंकेन्द्रित बनाता है। किंतु तुम्हें अहंकेन्द्रित होने के बजाए आत्मकेन्द्रित, अपने अस्तित्व के यथार्थ केन्द्र पर केन्द्रित होना चाहिए। इसके लिए मन को नष्ट करना होगा। अहं को मरना होगा। तभी तुम साक्षीभाव की स्थिति में स्थायी रूप से रह सकोगे।

"सत्य के पथ पर सबसे बड़ी बाधा अहंकार है। अहंकार का अपना कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि मन व अहंकार दोनों झूठे हैं। इस समय हम इसी खयाल में हैं कि मन और अहं हमारे मित्र हैं मगर वे हमें बहका रहे हैं, हमें हमारे स्वस्वरूप से दूर हटा रहे हैं। मन और अहं की अपनी कोई शक्ति नहीं है। उनकी शक्ति आत्मा से, हमारे स्वरूप से निःसृत है। आत्मा ही वास्तविक स्वामी है। किंतु हम अब मन और अहं के झूठे मालिकों से मार्गदर्शन पा रहे हैं। वे हमें केवल बहकाते ही नहीं, हमारे स्वरूप को आवृत्त भी करते हैं। इस तथ्य को पहचान लो और मन^१ व अहं के सीमित आवरण से बाहर निकल आओ। जब तक बाहरी छिलका टूट कर नष्ट न हो तब तक बीज अंकुरित होकर

^१ मन के चार व्यापार या पहलू हैं। वे हैं, मनस् - संशय करने वाली वृत्ति, चित्त - स्मृतियों का भण्डार, बुद्धि - निर्णय करने वाली वृत्ति, अहंकार - अहं 'मैं' और 'मेरे' की वृत्ति। मन एक ही है, पर व्यापार के अनुसार भिन्न नामों से जाना जाता है।

एक बड़ा वृक्ष नहीं बन सकता। इसी तरह अहं के मरने तक सत्य पहचाना नहीं जा सकता।

अहं ध्यान पर जीता है

प्रश्न - "अम्मा, आपने कहा कि अहं ध्यान पर जीता है। इस कथन का भाव आप ज़रा समझा دیجिए।"

अम्मा - "बच्चो, हम यह रोज़, हर क्षण करते हैं। आकर्षण की लालसा मानव स्वभाव का अंग है। हम उस विषय में चाहे सचेत रहें या न रहें, हम सब वह चाहते हैं। मानवमात्र में औरों का ध्यान आकृष्ट करने की एक आंतरिक प्रवृत्ति रहती है। बच्चा तक ध्यान चाहता है। उसे पाए बिना मन और अहं नहीं रह सकते।

"पति पत्नी का ध्यान चाहता है, पत्नी पति का। बच्चे अपने माँ-बाप का ध्यान चाहते हैं। पुरुष स्त्रियों का ध्यान चाहते हैं तथा स्त्री चाहती हैं कि पुरुष उनको देखें। ध्यान पाने के लिए लोग कुछ भी कर सकते हैं। पूरा संसार ध्यान की लालसा रखता है। यह रुझान तो जानवरों में भी पाया जाता है। इतना ही फर्क है कि ध्यान आकृष्ट करने के उनके अलग ढंग हैं। जिस किसी का मन व अहं है उसे ध्यान की भी आवश्यकता है और वह उसके बिना जीवित नहीं रह सकता।

"प्रायः सारे देशों में लोग दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए एक ही सा व्यवहार करते हैं। सारे राष्ट्रों के युवाओं में वह अधिक प्रकट दिखाई देता है। दूसरों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए वे जो कुछ करते हैं, खासकर भिन्नलिंगी व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए, वह कभी-कभी मूर्खतापूर्ण होता है। किंतु तब भी वे ऐसा करते हैं क्योंकि उस उम्र में वे अपने मन व अहं के पूरे कब्जे में रहते हैं। मन पागल है। जब तुम पूर्णतः उसके अधीन हो तब पागलपन से भिन्न और क्या प्रकट होगा? पागल मन की उपज पागलपन ही होगी।

"ज्यों-ज्यों तुम्हारी आयु बढ़ती है त्यों-त्यों तुम्हारे मन और अहं बढ़ें

होते हैं, वे अधिक सूक्ष्म भी बनते हैं। ध्यान आकृष्ट करने के तुम्हारे तरीके भी अधिक सूक्ष्म बनते हैं। तुम्हारे तरीके अब पहले की तरह भेदे न होंगे, पर लालसा अब भी वही रहती है।

“एक पत्रकार एक खास नगर के महापौर के बारे में लेख लिख रहा था। पत्रकार ने महापौर के विषय में लोगों की राय जाननी चाहीं। उसने शहर की आबादी के भिन्न-भिन्न तबकों के लोगों से भेंट की और महापौर पर उनका ख्याल जानना चाहा। प्रत्येक नागरिक का महापौर के बारे में बुरा अभिप्राय ही था। उसे वे निष्ठुर और रिश्वतखोर मानते थे। नगर की सभी समस्याओं के लिए वे महापौर को ही दोषी ठहराते थे। बहुत से लोग इसपर दुःखी थे कि उन्होंने उस व्यक्ति को महापौर चुनने के पक्ष में मतदान दिया था। महापौर सभी को नापसन्द था। अंत में संवाददाता महापौर से मिला। उसने उनसे पूछा कि उन्हें अपनी सेवा के लिए कितना पारिश्रमिक मिलता है। महापौर ने बताया कि वे वेतन बिलकुल नहीं लेते। पत्रकार ने प्रश्न किया - ‘अगर यह बात है तो इस नगर के महापौर के पद को क्यों संभाले हुए हो, जबकि आप कुछ कमा नहीं पाते और लोग आपको नापसंद भी करते हैं?’ महापौर ने कहा, ‘सो मैं आपको बताऊंगा। मगर यह शर्त रहेगी कि आप छापेंगे नहीं। मैं लोकप्रिय चाहे न रहूँ, तो भी मुझे जो मान-सम्मान मिलता है उसका मैं आस्वादन करता हूँ।’

“सिर्फ अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए लोग खून तक करते हैं। अहं का पारा इतना चढ़ जाता है कि एक व्यक्ति हृद से ज्यादा क्रूरता का काम करके सम्मान पाने की बात सोचता है। दुनियाभर में ऐसा हो रहा है।

“कुछ सप्ताह पहले एक युवक अम्मा के दर्शन करने आया। उसने बिना शर्म के साफ बताया कि मशहूर होना उसकी सबसे बड़ी तमन्ना है। उसने अम्मा से कहा कि वह अपना नाम व तस्वीर किसी प्रमुख समाचार पत्र में छपा देखना चाहता है। अम्मा ने उससे कुछ समय तक बातचीत कर समझाने की कोशिश की कि उसका नज़रिया कितना मूर्खतापूर्ण है। आखिर उसने अपना विचार बदला और उसे अपने प्रथम वचनों पर

पश्चात्ताप भी हुआ। वह ईमानदार था, तभी तो उसने अम्मा को अपनी इच्छा बताई। पर क्या यह अधिकांश लोगों की चाह नहीं है? लोग अक्सर बेईमान होते हैं और अपने मन की बात बाहर व्यक्त नहीं करते, बोलते नहीं हैं। लोगों के बीच, व्यक्ति व समाज के बीच बड़ी दीवार है। अपने अहंकार के कारण वे अपना खुलापन खो चुके हैं। वे अपने मन को खुश करने तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति की बात ही सोचते हैं।

“जब एक बच्चा रोता है तब वह ध्यान की माँग ही कर रहा होता है। तुम्हारी सारी महत्वाकांक्षाएँ तथा अभिलाषाएँ ध्यान के लिए अहं की सशक्त, किंतु सूक्ष्म माँग ही है। तुम एक साधारण मानव बनना नहीं चाहते। जब तुम किसी पेशे में कामयाब होना चाहते हो तब ध्यान की माँग ही कर रहे होते हो। तुम असाधारण, दूसरों से बेहतर होना चाहते हो। तुम जो कुछ हो उससे संतुष्ट नहीं रह सकते। तुम चाहते हो कि और लोग तुम्हें जानें, तुम्हारी इज्जत करें। यह इसलिए होता है कि लोग हृदय से ज़्यादा मन पर केन्द्रित रहते हैं। अम्मा यह नहीं कह रही कि तुम कोई अरमान न रखो। अरमान रखना ठीक है पर वे तुम्हें बड़ा घमंडी, अहंवादी न बना पावें। मन और उसकी इच्छाओं के धार में बह जाना नहीं चाहिए।

“एक वैज्ञानिक कम अहंकारी हो तो वह बेहतर वैज्ञानिक बन सकेगा। एक राजनीतिक व्यक्ति मन की अपेक्षा हृदय से अधिक काम करना सीखे तो लोगों को प्रेरणा दे सकता है। एक खिलाड़ी अपने अहं पर काबू पा ले तो अधिक सफल हो सकेगा।

“तुम ज्यों-ज्यों अधिक अहंकेन्द्रित हो जाते हो, अधिक ध्यान की माँग करते हो, त्यों-त्यों ज़्यादा असहिष्णु बनते हो। तुम आशा करते हो कि लोग तुम्हारे साथ खास ढंग से बर्ताव करें, दूसरे तुम्हारा सम्मान करें, चाहे तुममें उसकी योग्यता न हो।

“अम्मा एक गायक को जानती हैं जो बड़े सम्मान की चाह रखता है। वह कुशल संगीतज्ञ ज़रूर है मगर उसके घमंड ने उसे अनाकर्षक व्यक्ति बना रखा है। एक दिन उसके एक प्रशंसक ने, जो कि स्वयं बड़े गायक थे, उनके शास्त्रीय गीत आलापने की शैली पर टिप्पणी की। गायक

के प्रशंसकों के एक छोटे दल के सामने यह टिप्पणी की गई। दुर्भाग्य से गायक यह टिप्पणी बरदाश्त नहीं कर सका, यद्यपि टिप्पणी बड़े शान्तिपूर्ण व सभ्य तरीके से की गई थी। गायक ने उस टिप्पणी को अपना अपमान समझा और दूसरों के सामने ही टिप्पणी सुनानेवाले को एक चपत मारी।

“अहंवादी लोग, वे जो भी हों, बहुत डरते हैं कि उनकी इज्जत नहीं हो रही है। वे अपना महत्व खोने से डरते हैं। वे ऐसी एक स्थिति का सपना भी नहीं देख सकते क्योंकि वही उनके अस्तित्व की बुनियाद है। उनका अहंकार दूसरों द्वारा उनके प्रति दिखाए सम्मान व श्रद्धा पर जीता है। अगर उन्हें वे नहीं मिलते तो वे चूर-चूर हो जाते हैं। अगर लोग उनकी तारीफ नहीं करते या प्रत्याशित सम्मान व ध्यान नहीं देते वे चिड़ जाते हैं और उनका संयम टूट जाता है। अपने अहं और ‘स्वप्रधानता’ के कारण वे किसी की आलोचना को बरदाश्त नहीं कर सकेंगे, चाहे वह सकारात्मक क्यों न हो। अगर उनके आचरण के बारे में कोई सवाल करे तो उन्हें बहुत बुरा लगता है। वे हमेशा अपने को चर्चा का केन्द्र बनाये रखना चाहते हैं, खासकर तब जब वे भी चर्चा में शामिल हों। उनका सारा जीवन दूसरों से मिलनेवाले ध्यान पर केन्द्रित रहता है। अन्ततः जब ऐसे व्यक्ति सेवानिवृत्त होते हैं तब उनके मनोरंजन का एकमात्र स्रोत अपने अतीत का स्मरण ही होता है। वे अतीत की चिंताओं में ही जीते हैं चूंकि अतीत में ही उन्हें ध्यान व सम्मान मिला था। अवकाश के दिन उनके लिए पीड़ाजनक होते हैं चूंकि अब उनके पास अपने अहं को खुश करने के लिए अपने भूतकाल की स्मृतियों के अलावा और कुछ नहीं रहता। वे अपने अतीत की चर्चा करते रहते हैं या ऐसे घनिष्ठ लोगों को पास रखते हैं जो उन्हें अब भी कुछ महत्व दें और उनके महत्व पर कुछ बताएँ।

“यह रोचक कहानी सुनिए - प्रलय का समय पूरा हो गया था। नई सृष्टि प्रारंभ होने वाली थी। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने कई जीवों की संकल्पना कर ली। अब प्रत्येक की आयु का आवंटन करना था। ब्रह्माजी ने मानव से प्रारंभ किया। उन्होंने मानव को तीस साल की आयु दी।

मगर मानव उससे संतुष्ट न था। उसने और लंबी आयु माँगी। ब्रह्माजी ने उससे कहा, 'सारे जीवों की कुल आयु के वर्ष निश्चित हो चुके हैं। इसलिए यों ही किसी की आयु बढ़ाना संभव नहीं है।' मानव ने लंबी आयु के लिए हठ किया, बहुत अनुनय विनय किया। उसने ब्रह्माजी से बड़ी विनम्रता से प्रार्थना की। आखिर ब्रह्माजी बोले, 'अच्छा, देखूँ कि क्या कर सकता हूँ। मेरे पास खड़े रहो, मैं एक एक करके सब जीवों को बुलाने वाला हूँ। अगर कोई जीववर्ग अपने लिए निश्चित आयु के सारे वर्ष न चाहे तो शेष बचे वर्ष तुम्हें दूंगा।' मानव खुशी से मान गया और विधाता के पास खड़ा रहा। ब्रह्माजी प्रत्येक जीववर्ग को पुकारते चले गये।

"ब्रह्माजी ने बैल को पुकारा और उसे चालीस वर्ष की आयु दी। बैल बोला, 'प्रभु, मैं इतनी लंबी आयु का जीवन सहन नहीं कर सकता। मुझ पर कृपा कर उसे आधा कर दीजिए।' ब्रह्माजी ने ऐसा ही किया और शेष बीस वर्ष मानव को दिए। मानव पचास वर्ष की आयु पाकर खुश हुआ।

"आगे ब्रह्माजी ने गधे को बुलाया और उसे पचास वर्ष की आयु दी। दुःखी स्वर में गधे ने कहा, 'प्रभु! इतने निष्ठुर न हों। मेरी सृष्टि न करते तो बेहतर होता। मैं इतनी लंबी ज़िन्दगी नहीं चाहता। पच्चीस वर्ष भी ज़्यादा हैं। कृपा करें और उससे अधिक न दें।' ब्रह्माजी ने स्वीकार किया और बचे हुए पच्चीस वर्ष भी मानव को ही मिले। यों मानव की आयु की दीर्घता पचहत्तर वर्ष की हो चली। मानव तो अब भी बड़ी उम्मीद से अपनी आयु और बढ़ाने के इंतजार में रहा।

"गधे के बाद कुत्ते की बारी आई। ब्रह्माजी उसे तीस वर्ष के जीवन से अनुगृहीत करने वाले थे कि कुत्ता विरोध में भौंकने लगा। कुत्ते ने निवेदन किया, 'मैं इस धरती पर पंद्रह वर्ष से ज़्यादा रहना नहीं चाहता।' मानव को इस प्रकार और पंद्रह वर्ष बोनस मिले।

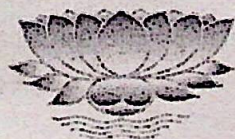
"ब्रह्माजी ने मुड़कर देखा कि क्या मानव अब संतुष्ट है! पर आश्चर्य! उसके मुखमंडल पर असंतोष ही था।

“बुलाए जानेवाला पाँचवां वर्ग कीड़े का था। ब्रह्माजी ने उसे दस वर्ष की आयु दी। यह सुनकर कीड़ा मानो बेसुध हो गया। उसने ब्रह्माजी से प्रार्थना की, ‘हे प्रभु! मुझे इतनी लंबी दीनतापूर्ण जीवन की बात सोचने पर ही डर लगता है। कृपया उसे कुछ दिनों का कर दीजिए।’ मानव को दस वर्ष और मिले। अब उसकी आयु पूरे सौ वर्ष की हो गई। एक सौ वर्ष लंबी आयु पाकर मानव खुश हुआ। प्रसन्नता से नाच उठा। उसने धरती पर अपनी ज़िन्दगी शुरू की।

“बच्चो, तीस साल की उम्र तक जीवन मानव के लिए शिक्षा का समय होता है। उस समय वह सारी चिंताओं, जीवन की ज़िम्मेदारियों से दूर रहता है। वह निश्चिंत रहता है और आनन्दपूर्ण जीवन जीता है। तब उसका विवाह होता है। तब से उसकी ज़िन्दगी बैल की सी बनती है। जैसे बैल कष्ट उठाकर गाड़ी खींचता है, वैसे ही मानव अपने परिवार की भारी गाड़ी खींचता है। इसमें उसे काफी मेहनत करनी पड़ती है। यों वह पचास वर्ष पूरा करता है। फिर भी वह जीवन एवं परिवार का भारी बोझ वहन करता है। उसमें शुरू के जीवन में जो सेहत व फुर्ती थी, वह अब नहीं रहती। वह अधिक सुस्त होता जाता है। इस दौरान उसकी ज़िन्दगी की तुलना गधे के जीवन से हो सकती है। वह गधे से प्राप्त वर्ष जीता है। गधे की आयु के वर्ष पूरे हो जाते हैं, तब तक मानव पूरा शिथिल हो जाता है। उसके सारे अंग जवाब दे देते हैं। अगले पंद्रह वर्ष उसे घर की रखवाली और नाती-पोतों की देखरेख का काम करना पड़ता है। अधिकांश समय वह अकेले में या लेटे-लेटे बिताता है। संतानें और नाती-पोते उसकी बिल्कुल परवाह नहीं करते। अब वह बराबर अपने पुराने दिनों की याद करता रहता है। वह कुत्ते की तरह घर-बार की रखवाली एवं बच्चों की देखरेख करता है।

“कीड़े से मिले आखिरी दस सालों में मानव रेंगता फिरता है। वह बेसहारा रहता है, बुढ़ापा व बीमारी उसे बेबस कर देती हैं। उसका शरीर व दिमाग बिल्कुल कमजोर हो जाते हैं। वह लेटे-लेटे सोचता या बड़बड़ाता ही रहता है। आखिर वह एक कीड़े की भाँति यों गुज़र जाता है। ऐसा जीवन निराशा, पछतावा और दीनता से अंकित रहता है।”

यह रोचक कहानी सुनते सुनते भक्त खूब हँसते रहे। उन्होंने कहानी की सत्यता को पहचाना। अम्मा मुस्कुलाई और बोलीं - "बच्चो, ऐसे जीना सीखो मानो तुम्हारा अस्तित्व ही न रहा हो। तभी तुम्हारा जीवन सत्य में प्रतिष्ठित होगा।"





अध्याय - ३

साक्षीभाव

ब्रह्मचारी और कुछ पाश्चात्य शिष्य आश्रम के अहाते में अम्मा को घेरे बैठे थे। एक पाश्चात्य भक्त ने साक्षीभाव पर, सब बातों का गवाह बने रहने के अनुभव पर, प्रश्न किया।

प्रश्न : “अम्मा, पिछले दिन आप साक्षीभाव की चर्चा कर रही थीं। मैं यह जानना चाहता हूँ कि साक्षी रहना क्या मन का व्यापार है या मन से परे कोई अनुभव है।”

अम्मा : “नहीं, वह मन का व्यापार नहीं है। साक्षीभाव ऐसी स्थिति है जिसमें तुम निरंतर अनासक्त और अस्पृष्ट रहते हो। जो कुछ घटता है उसे मन के दखलंदाजी के बिना चुपचाप देखते रहो। यदि मन की दखलंदाजी रही तो तुम साक्षी नहीं रह सकते। मन विचार-धारा है। वह केवल विचार कर सकता है, संदेह कर सकता है। साक्षीभाव की सर्वोच्च स्थिति में तुम अपने स्वस्वरूप में स्थित रहते हो।

“साक्षीभाव में तुम सबके गवाह बनते हो। सबका अवलोकन मात्र करते हो। कोई आसक्ति या कोई सरोकार नहीं होता। केवल अवलोकन होता है। तुम अपने विचारों तक के सिर्फ साक्षी रहोगे। जब तुम अपनी चिंतन-प्रक्रिया का सचेतना से अवलोकन करते हो, तब तुम चिंतन नहीं करते, कुछ भी नहीं करते। तुम अचल होते हो। तुम केवल अवलोकन कर आनन्द लेते हो, किसी से प्रभावित हुए बिना, निर्लिप्त। ऐसी स्थिति में मन कैसे रह सकता है? मन तो सिर्फ सोच और संदेह कर सकता है। वह किसी का द्रष्टा नहीं बन सकता।

“चिंतन-प्रक्रिया मन की क्रिया है तो साक्षीभाव आत्मतल पर है। साक्षी बनना शुद्ध बोध में स्थित रहना है। मन और उसके विचार असत् हैं।

वह हमारी ही सिरजी हुई कल्पित वस्तु हैं। विचार तुम्हें सहज लग सकता है, परंतु वह सहज नहीं है। वह तुम्हारे स्वरूप का अंग नहीं है। तुम्हारे विचार एवं अहंकार केवल भय और उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। वे तुम्हारे अपने नहीं हैं, जब तक उनका निराकरण नहीं किया जाता तब तक तुम परेशान ही रहोगे।

“पूर्ण सचेतना से देखना ही साक्षीभाव की स्थिति है। उलटे जब तुम मन व विचारों से एकरूप हो, तब तुम सचेत नहीं होते। तुम अंधेरे में रहते हो और तुम कुछ देख भी नहीं पाते। मन केवल बाहरी संसार को देखता है, वस्तुओं का बाहरी ढाँचा देखता है। वह किसी वस्तु को उसके सही रूप में कभी देख नहीं पाता क्योंकि तुम कभी देखते नहीं हो, सिर्फ सोचते हो। और जब तुम सोचते हो तब यथार्थ स्थिति तुम्हारी दृष्टि से छूट जाती है।

“ज्यों-ज्यों अधिक संपत्ति पाने और अधिक सुखभोग करने की प्रवृत्ति होगी त्यों-त्यों मन में अधिक विचार उठेंगे। विचारों का आधिक्य तुम्हें यथार्थ केंद्र से दूर ले जायेगा। साक्षी होने के लिए व्यक्ति का पूर्ण निस्संग होना ज़रूरी है। विषयलिप्त मन साक्षी नहीं बन सकता, वह केवल चिंताओं और वस्तुओं से जुड़ा ही रह सकता है। वह केवल ‘मैं’ और ‘मेरा’ पर ही केंद्रित रहता है। साक्षीभाव में ‘मैं’ और ‘मेरा’ का तनिक भी अहसास नहीं होता। तुम उस तरह के संकुचित और सीमित विचार धारा को पार कर जाते हो।

यथार्थ केन्द्र भीतर है

जब तुम सबके साक्षी बन जाते हो तब तुम कोई दावा नहीं करते। सभी में, ‘मैं’ ‘तुम’, सब में, ईश्वर के ही दर्शन होते हैं, सभी परमचैतन्य की भिन्न अभिव्यक्तियाँ लगती हैं। एक बार तुम उस अवस्था में स्थित हो गए तो फिर तुम निर्लिप्त हो जाते हो, तुम्हें कोई किसी तरह की हानि नहीं पहुँचा सकता। मन व शरीर से तुम्हारा तादात्म्य टूट जाता है। शरीर तो रहता है, मगर वह मृत सा होता है। तुम बाह्य संसार

या लोगों के कथन तुम्हारे लिए महत्वहीन हो जाते हैं। तुम्हें बोध हो जाता है कि वस्तुतः तुम किसी को खुश या नाखुश नहीं कर सकते। कभी-कभी तुम सनकी से पेश आते हो, कभी साधारण व्यक्ति लगते हो। एक क्षण के लिए तुम संसार से आसक्त लग सकते हो और दूसरे ही क्षण तुम पूर्ण निस्संग लगते हो - पूर्ण रूप से निश्चित, अनासक्त होते हो। तुम अत्यधिक स्नेहिल व दयालु लग सकते हो पर दूसरे ही क्षण तुममें प्रेम का चिह्न तक नहीं रहेगा। तुम्हारे विषय में कोई पूर्वकलन संभव नहीं होगा।

“एक बार तुम साक्षीभाव में प्रतिष्ठित हो जाओ तो तुम जिस मनःस्थिति में रहना चाहते हो रह सकते हो, चेतना के किसी भी स्तर तक जा सकते हो - सबसे ऊंचे से सबसे नीचे तक और उल्टा भी, परंतु उस समय भी तुम द्रष्टा मात्र रहते हो। सब एक सुन्दर, आनन्ददायक विनोद हो जाता है, एक अद्भुत खेल। बाह्यतः तुममें भावांतरण दिख सकते हैं, तुम शायद स्थानांतरण करते से दीख सकते हो, तुम भिन्न-भिन्न संवेदनाओं को प्रकट करते से दीख सकते हो भीतर तुममें कोई परिवर्तन नहीं होता, तुम स्थिर रहते हो। अपने यथार्थ केन्द्र से तुम कभी नहीं हटते। वास्तविक केन्द्र भीतर है, वह बाहर नहीं है।

“यथार्थ केन्द्र में प्रतिष्ठित होने पर तुम अचल हो जाते हो। तुम वहाँ नित् प्रतिष्ठित हो जाते हो। परंतु केन्द्र बिन्दु में स्थित होने पर भी तुम बिना किसी सीमा के, अनन्त प्रकार से, मुक्त हो सर्वत्र विचरण कर सकते हो और साथ ही तुम अपने केन्द्र से हटते भी नहीं हो। तुम ईश्वर बन जाते हो और ईश्वर अनन्त रूप में सक्रिय हो सकते हैं। कोई सीमाएँ नहीं रहतीं।

“यदि तुम आत्मकेन्द्रित हो, या अपने अस्तित्व में केन्द्रित हो तो तुम चाहो तो सब को अनदेखा कर सकते हो और चाहने पर सभी कुछ निर्लिप्त हो देखते हुए मुस्कुरा भी सकते हो। अगर सोने या खाने की इच्छा न हो तो उसकी ज़रूरत ही नहीं रहेगी। दूसरी ओर तुम जो भी खाना चाहते हो, खा भी सकते हो। यदि सालभर सोए रहना चाहते हो तो वह भी संभव है। किंतु भीतर से तुम जागृत रहोगे, अत्यंत सचेत।

यद्यपि तुम सोते दिखाई देते हो तो भी तुम निद्रा में नहीं होते। यद्यपि तुम खाते दिखाई देते हो तुम कुछ भी नहीं खाते। अगर तुम अपने शरीर में रहना चाहते हो तो वह भी संभव है और यदि शरीर त्यागना चाहते हो तो वह भी हो सकता है। शरीर त्यागने के पश्चात् जब कभी तुम उस शरीर में प्रवेश करना चाहो तो कर सकते हो। तुम जहाँ हो वहाँ रह सकते हो। तुम जिस कोख में जन्म लेना चाहते हो उसे चुन सकते हो। जिस प्रकार का शरीर पाना पसंद हो वह पा सकते हो। सब कुछ संभव है।

“लोग कहेंगे कि तुम कुछ कर रहे हो, परंतु तुम्हें ज्ञात है कि तुम कुछ नहीं कर रहे हो। तुम तो केवल अवलोकन कर रहे हो, सिर्फ साक्षी हो।

“अतएव साक्षीभाव तभी संभव है, जब तुम मन व विचार की प्रक्रिया से पूर्णतया मुक्त हो जाओ। तब तुम हर वस्तु के विषय में पूर्ण सचेत रहते हो, तुम्हारी विचार प्रक्रिया से भी सचेत रहते हो। साधना के तौर पर साधक हर वस्तु को साक्षीभाव में देखना का अभ्यास कर सकता है।”

पूर्णतः सचेत रहो

प्रश्न - “अम्मा, विचार-प्रक्रिया के विषय में सचेत रहने का तात्पर्य कृपया समझाइए।”

अम्मा - “क्या तुम अपने मन में उठते विचार को देख सकते हो? क्या तुम देख सकते हो कि विचार कैसे सक्रिय होता है और कैसे उसका अंत होता है? अगर तुम एक विचार को स्पष्ट देख पाते हो तो वहीं विचार निष्क्रिय बन जाता है। विचार से तादात्म्य उसे शक्ति देता है और तब विचार, क्रिया में परिणत होता है। जब तुम विचार से तादात्म्य नहीं रखते हो तब उसकी कोई शक्ति नहीं रह जाती, वह कमजोर व निष्क्रिय हो जाता है। जब तुम मन में उठते विचार को देखते हो और साथ ही उससे तादात्म्य भी नहीं जोड़ते तब तुम उसका अवलोकन

कर रहे होते हो, तुम उसके साक्षी हो। जब तुम अवलोकन मात्र करते हो तब तुम पूर्णतः सचेत रहते हो। साक्षी बने रहने में विचार-प्रक्रिया का कोई स्थान नहीं है अतः तुम किसी विचार से एकरूप नहीं होते, तादात्म्य नहीं जोड़ते। साक्षीभाव में केवल सचेतता है।

“तुम दो आदमियों को एक दूसरे से लड़ते देख सकते हो। जब तुम उनकी लड़ाई के साक्षी हो तब तुम उसमें भागीदार नहीं हो, उससे तुम्हारा कोई संबन्ध नहीं रहता। तुम केवल सजगता से घटनाओं को देखते हो। साक्षी होने पर तुम पूर्ण सचेत रहते हो, तुम पूर्ण सजग रहते हो। तुम्हारी चेतना अनावृत्त रहती है, वह स्पष्ट रहती है। तुम्हारे देखे दृश्यों से वह अस्पष्ट रहती है।

“मगर लड़नेवालों की स्थिति क्या है? वे लड़ाई में भागीदार हैं। वे उस दृश्य को स्पष्ट देख नहीं सकते क्योंकि वे गहरी नींद सो रहे हैं। नकारात्मक भावनाएँ - क्रोध, द्वेष, बदले की भावना, आदि, उनके मन को आवृत्त कर लेती हैं और उसे अंधा बनाती हैं। नकारात्मक संवेदनाओं के अधिक सशक्त होने पर तुम यथार्थतः सचेत नहीं रहते। और अतः तुम साक्षी बने नहीं रह सकते।

“तुम्हारा मन ही नकारात्मक है। तुम्हारे विचार और तुम्हारा अतीत नकारात्मक हैं। साक्षी होने का मतलब पूर्ण जागरण है और भीतर-बाहर जो कुछ घटता है उन सब से सचेत होना है। किंतु यथार्थतः बाहर या भीतर की बात नहीं है। द्रष्टा बनने पर तुम उन सबका केन्द्र बनते हो, होने वाले सारे परिवर्तन देखते जाते हो। वे परिवर्तन तुम्हें बिल्कुल प्रभावित नहीं करते क्योंकि तुम सभी का केन्द्र बन जाते हो - हर वस्तु में स्पंदित चेतना। साक्षी की स्थिति में तुम वैश्विक शक्ति से अभिन्न हो जाते हो।”

प्रश्न - “अम्मा, आपने बताया कि हमारे साक्षी हो जाने पर कुछ भी हमें प्रभावित नहीं करता। परंतु इस कथन के विरुद्ध सुना गया है कि महात्मा भी शारीरिक रोगों से पीड़ित होते से लगते हैं।”

अम्मा - “बच्चो, तुम ठीक कहते हो। यह सत्य है कि वह कष्ट उठाते से प्रतीत होते हैं। यह बिल्कुल ठीक है। लेकिन वे कभी कष्ट

से पीड़ित नहीं होते केवल पीड़ित होते से लगते हैं। एक बार तुम साक्षी हो गए तो अपने शरीर की मृत्यु का भी साक्षी बनते हो। तुम अपने शरीर की व्यथा, कष्ट का सिर्फ अवलोकन करते रहोगे।

“यह कहानी सुनो - किसी ज़माने में गंगा नदी के तट पर एक साधु रहते थे। उन्हें ईश्वर साक्षात्कार हो चुका था। वे उस परमावस्था में निरन्तर ‘शिवोऽहम्, शिवोऽहम्’ का उच्चारण करते थे। नदी के दूसरे पार रहते संन्यासी यह जप निरन्तर सुन सकते थे। एक दिन वे नदी किनारे बैठे नियमित ‘शिवोऽहम्’ मंत्र जप रहे थे कि हिमालय के वन प्रदेश से एक शेर निकल आया और साधु की तरफ बढ़ा। नदी के उस पार बसे संन्यासी भयभीत हो देख रहे थे कि वह खूंखार जानवर उस साधु पर झपटने ही वाला था। वे सब उस पार से चिल्ला उठे - ‘शेर से खबरदार! जान बचाकर भागिए’ या नदी में कूद पड़िए।’ जब साधु ने शेर को अपनी तरफ आते देखा तो वे बिल्कुल भयभीत नहीं हुए। उन्होंने होनी को स्वीकार कर लिया चूंकि उनके शरीर त्यागने का समय आ गया था। वे तो सृष्टि से एकात्म थे अतः उन्हें शेर उनसे भिन्न नहीं प्रतीत हुआ। वे और शेर मानो एक थे - शेर के रूप में मानो वे ही गरज रहे थे। वे अपनी जगह पर ही बैठे रहे और शान्ति से ‘शिवोऽहम्, शिवोऽहम्’ जपते रहे। नदी पार के संन्यासियों के देखते देखते शेर वृद्ध साधु पर कूद पड़ा। जब शेर ने साधु को अपने पंजे में लिया तब भी वे बिना डर के निरन्तर मंत्र जप रहे थे। शेर उनके शरीर को चीरने लगा। किन्तु आश्चर्य! साधु निरन्तर जपते रहे ‘शिवोऽहम्, शिवोऽहम्’। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वे ही शेर के स्थान पर अपनी भूख मिटा रहे थे। मृत्यु के इस पूरे प्रसंग में साधु ऐसा व्यवहार कर रहे थे कि मानों उन्हें कुछ हो ही नहीं रहा था।

“बाज़ार में कई जानवरों के आकार के बिस्कुट मिलते हैं। कुछ बिस्कुट चीते जैसे और कुछ खरगोश जैसे लगते हैं। क्या तुम विश्वास करते हो कि चीते के आकार का बिस्कुट अपने खास आकार की वजह से चीता है? जब तुम एक खरगोश बिस्कुट और चीता बिस्कुट एक साथ रखते हो तब क्या उस खरगोश को चीते से कोई खतरा है? क्या

खरगोश के आकार का बिस्कुट यह सोचकर डरता है कि चीता बिस्कुट मुझे मारकर खा जाएगा? नहीं, बिल्कुल नहीं क्योंकि बुनियादी तौर पर उन दोनों में फर्क नहीं है। दोनों की अलग-अलग शक्ल एक ही वस्तु से बनी है। जब तुम यह समझ जाओगे कि तुम आत्मस्वरूप हो, तब यही स्थिति रहेगी। तुम एक निस्संग निर्वैयक्तिक साक्षी हो जाते हो जो पूर्णतः सचेत होकर सारे चराचर जीवों को, जीवन की प्रत्येक स्थिति के सारे तत्त्वों के विभिन्न रूपों को एक ही अन्तर्भूत तत्त्व - परमात्मा से निष्पन्न समझ लेता है।

“मन तुम्हारा अतीत है। अतीत को मरने दो। तब तुम एकाएक पूर्ण सचेत हो जाओगे। अतीत मृत खण्डहर के सिवा कुछ नहीं है। उससे छूट जाओ तो तुम साक्षी होना सीखोगे। जब तुम अपने अतीत के विचारों व स्मृतियों को नष्ट कर दोगे तब तुम पूर्णतः वर्तमान में रहोगे। तब तुम साक्ष्य वहन करोगे। जब तक विचार हैं तभी तक अतीत जीवित रह सकेगा। विचारों को खत्म कर दिया तो अतीत गायब होता है और तुम अपनी आत्मा में वास करते हो। आत्मा केवल साक्ष्य करने के सिवा कुछ कर नहीं पाती। आत्मा कोई व्यक्ति नहीं, वह पूर्ण सचेतता है। वह सारे तत्त्वों से पूर्णतः मुक्त है। वह एक वस्तुस्थिति, तुम्हारे अस्तित्व का मूल तत्त्व है।

“बच्चो, इस समय तुम अबोध जीवन बिता रहे हो। तुम शायद सोचोगे - ‘मैं’ कैसे अबोध हो सकता हूँ? ‘मैं’ तो चलता हूँ, खाता हूँ, सांस लेता हूँ। फिर भी अम्मा कहती हैं कि ‘मैं’ अबोध जीवन बिताता हूँ। ‘मैं’ चेतन तो हूँ। वरना मेरे भीतर और चारों ओर इतनी सारी बातें कैसे घट सकती हैं?’ तुम्हारे पास अपने सचेत होने के कई तर्क हो सकते हैं किंतु सत्य तो यही है कि तुम सचेत नहीं हो।

“बेटे, तुम बोल सकते हो कि मैं सजग हूँ क्योंकि मैं चलता, खाता, सांस लेता और देखता हूँ। हाँ, तुम ये सब तो करते हो, किंतु बेटे, दिन में कितनी बार तुम अपने हाथ-पैर, जीभ, मुँह और सांस लेने की प्रक्रिया के बारे में सजग होते हो? खाते समय भी तुम अपने हाथ या जीभ के विषय में सचेत नहीं रहते - कि तुम्हारा हाथ तुम्हें खिला रहा

है या तुम्हारी जीभ हिल रही है। जब तुम चलते हो तब अपने पैरों के विषय में बिल्कुल सचेत नहीं रहते। क्या तुम सचेतता से सांस लिया करते हो? जब तुम अपनी आँखों से चारों तरफ देखते हो, चारों ओर की खूबसूरती व विरूपता देखते हो तब क्या तुम अपनी आँखों के बारे में सचेत हो? आँखों की खुली रहने पर भी क्या तुम उनके विषय में सचेत हो? नहीं, बिल्कुल नहीं। तुम करते तो सब कुछ हो मगर अबोध होकर। तुम अबोध जीवन बिताते हो। फिर भी तुम दावा करते हो कि सचेत हूँ, सचेत जीवन बिता रहा हूँ। इसलिए जागो और सजग हो जाओ।"

अम्मा ने अपने वचनों को विराम दिया और ध्यानस्थ हो गईं। कुछ समय बाद उन्होंने आँखें खोलीं और ब्रह्मचारी बालु से एक भजन गाने को कहा। उन्होंने गाया - 'नीरकुमिलप्पोल निमिषमात्रम्'

भावार्थ -

समस्त सृष्टि उठती और विलीन हो जाती है

क्षणभर में, एक बुलबुले की तरह।

परंतु यह तथ्य मन के समझ के परे है

जब तक मन ही विलीन नहीं हो जाता!

मन को मायारूप जानने पर,

छायारूप मन लुप्त हो जाता है।

मन को स्वयं मन समझ सकता नहीं

वह अपने ही अंधकार से आवृत्त है।

मन न समझ सकता है मन को

अपने से अपने को छिपाता है मन

परंतु करता है यही मन दावा तुम्हारा

'जानता हूँ मैं' यह जग सारा

मन को शान्त स्थिर बनाकर
तपस्या की ताप में तपाकर
तुम समझ जाओगे कि मन
कुछ नहीं जानता ।

यह तथ्य गर तुम जान लेते हो
मन है नहीं यह सत्य भान लेते हो
मन मन समेत लुप्त हो जाता तभी
शुद्ध चैतन्य ज्योतिरूप प्रकाशित सभी ।

साक्षी भीतर है

जब भजन समाप्त हो गया तब अम्मा ने साक्षीभाव के विषय पर बातें जारी रखीं।

“हमारे दैनिक जीवन में भी हमें साक्षीभाव का अनुभव होता है। बात केवल सजग होने की है। और एक बार वह सजगता आ जाए, तुम एक बार उसका आस्वादन कर लेते हो, जब तुम वह आनन्द अनुभव करते हो तब जानो कि तुम सही पथ पर हो।

“मान लो कि पति-पत्नी आपस में झगड़ा कर रह हैं। वे एक दूसरे को कठोर से कठोर शब्दों का प्रयोग करते गाली दे रहे हैं, अपमानित कर रहे हैं। पड़ोस के दंपति वहाँ आ पहुँचते हैं। वे शोरगुल सुनकर आते हैं, यह जानने के लिए कि क्या हो रहा है। वे झगड़ते दंपतियों को समझाने और शान्त करने के लिए बहुत कुछ करते हैं फिर भी झगड़ालू एक दूसरे पर टूटते बरसते हैं। वे उन्हें सलाह-सुझाव देते हैं। पड़ोसी इस जटिल परिस्थिति में भी शान्त व संयमी रहते हुए झगड़े को निपटाने का श्रम करते हैं। वे समस्या को समझ पाते हैं और अतः उसे निपटाने के लिए सुझाव भी दे पाते हैं। आखिर, वे दोनों में समझौता कराने में सफल होते हैं।

"वे इस कलह के बीच इतने शान्त व संयमी कैसे रह सके? कारण यह था कि वे दृश्य को केवल देख रहे थे, वे उसमें सहभागी नहीं थे। उनके मन झगड़ा करनेवाले लोगों के मन की तरह क्रोध से आच्छादित नहीं थे, उत्तेजित नहीं थे। वे अपेक्षाकृत अधिक शान्त रहे और अतः सलाह दे सके।

"उलटे झगड़ा करनेवाले अपने मन की खलबली में ही उलझ गये थे। वे स्वयं निर्मित नकारात्मक भावनाओं के अधीन हो गये थे। वे उत्तेजित थे। भीतर, बाहर अपने नकारात्मक विचारों के अंधकार में आवृत्त थे। वे कुछ देख ही नहीं पा रहे थे। वे स्थिति के साक्षी न बन सके क्योंकि वे अपनी नकारात्मक चिंताओं से एकाकार हो गए थे। किंतु दूसरे दंपती शान्त थे और अतः परिस्थिति का बेहतर मूल्यांकन कर सके। चूंकि वे परिस्थिति में उलझे नहीं थे वे अधिक विलग रहकर उस घटना के साक्षी बन सके। वे उत्तेजित करनेवाले विचारों के अंधकार से ग्रस्त न थे। झगड़ालू दंपतियों की अपेक्षा उनका मन विचारावेग से कम आवृत्त था। अगर झगड़ा उनमें हो रहा होता तो बात उलटी होती। ऐसी हालत में अब झगड़ा करते दंपती अलग खड़े होकर साक्षी बन सलाह दे पाते।

"इस उदाहरण से स्पष्ट है कि साक्षी होने की शक्ति हर व्यक्ति में है। यह भी स्पष्ट होता है कि साक्षी रहना तभी संभव है जब मन शान्त रहे, जब तुम निस्संग हो।

"यदि साक्षी होना जीवन की किसी-किसी घड़ी में संभव है तो हमारे लिए उसका अनुभव निरंतर रूप से, किसी भी स्थिति में कर पाना संभव होना चाहिए। हम यह हासिल भी कर सकते हैं क्योंकि यही हमारा सहज स्वभाव है।

"जो उदाहरण उपर दिया गया है उसमें मन की उपस्थिति है। वह उन चन्द क्षणों में कुछ शान्त होता है, पर उत्तेजना लौट आएगी। विपरीत परिस्थितियों में साक्षी बने रहना बहुत कठिन है।

"संसारभर में मनोवैज्ञानिक, चिकित्सा विशेषज्ञ, कॉन्सेलर आदि हैं जो लोगों को मानसिक व शारीरिक समस्याओं से मुक्त कराने का श्रम करते

हैं। वे अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होंगे किंतु वे भी एक पेशा करने वाले पेशेवर मात्र हैं। पेशे से और अन्य बातों से वे संबद्ध हैं। तुम्हारा किसी से संबन्ध जुड़ा है तो साक्षी रहना संभव नहीं है। जो व्यक्ति कई नाते-रिश्ते में संबद्ध है वह औरों की कोई वास्तविक मदद नहीं कर सकता। जो व्यक्ति साक्ष्य की कला जानता है, आत्माकेन्द्रित है, अपने स्वस्वभाव में स्थित है वही वस्तुतः दूसरों की मदद कर सकता है। विशेषज्ञ रोगियों की समस्याएँ का विश्लेषण करते हैं और प्रविधियाँ सुझाते हैं जिनसे रोगी की निराशा या उत्तेजना पर विजय प्राप्त की जा सकेगी। यह रोग अधिकतर रोगी के अतीत के अनुभवों से ही उठता है। चिकित्सक की सहायता मांगनेवाला कोई पराया हो तो ठीक है, वह सीमित स्तर तक मदद कर सकेगा। किंतु यदि उसके अपने ही व्यक्तिगत जीवन में कुछ घटे तो क्या होता है? तब तो कोई उपाय काम नहीं देता। विशेषज्ञ दूसरे रोगियों के लिए सुझाये जानेवाले उपाय अपने जीवन में प्रयोग में नहीं ला पाता। उसके जीवन में कोई समस्या खड़ी हो जाए तो आगे वह दूसरों को सफलतापूर्वक उपदेश भी नहीं दे पाता। उसका ज्ञान प्रयोगशून्य हो जाता है। क्यों? क्योंकि जब तक मदद मांगनेवाला और कोई हो तब तक चिकित्सक एक हद तक अलग खड़े रहकर समस्या का निरीक्षण कर सकता है। उसका मन अपेक्षाकृत अनाच्छन्न रहता है। वह दूसरे की समस्या का निरीक्षण कर सकता है। चूँकि चिकित्सक का उस समस्या से कोई संबन्ध नहीं है वह कुछ सहायक प्रणालियाँ सुझा सकता है। किंतु समस्या जब अपने जीवन से जुड़ी हो तब मन समस्त नकारात्मक भावनाओं को उगल देता है। वह आगे साक्षी नहीं रह सकता क्योंकि वह खुद समस्या में उलझा हुआ है, उससे अभिन्न हो चुका है।

“यदि हमारी सारी प्रविधियाँ हमारे अपने जीवन में लागू नहीं की जा सकतीं तो इन प्रविधियों से क्या लाभ? यदि इनका प्रयोग हमारे अपने जीवन में न हो तो यह दूसरों के लिए कैसे कारगर हो सकती हैं?

“बच्चो, साक्षीभावस्थ होना ही जीवन का यथार्थ लक्ष्य है। साक्षीभाव की सर्वोच्च अवस्था वह धुरी है जिसके चतुर्दिक हमारा संपूर्ण जीवन और समस्त संसार ही घूमता है। तुम काम कर सकते हो, अपने मन

और बुद्धि से काम लेते हो, तुम्हारा एक घर हो सकता है, परिवार भी, तुम्हारे अनेक पारिवारिक दायित्व भी हो सकते हैं, तुम्हारे कार्यालयीन दायित्व भी अनेक हो सकते हैं, किंतु एक बार तुम साक्षीभाव में प्रतिष्ठित हो गए तो उस केंद्र से इंचभर इधर-उधर हटे बिना तुम जो भी करना चाहो, कर सकते हो। साक्षीभाव में स्थित रहने का यह मतलब नहीं है कि तुम अपने कर्तव्यों पर ध्यान दिए बिना सुस्त रहोगे। तुम्हें अपने वच्चों की पढ़ाई की चिंता हो सकती है, अपने माँ-बाप के स्वास्थ्य की चिंता हो सकती है, अपनी पत्नी की तबीयत की चिंता हो सकती है, फिर भी इन सब बाह्य समस्याओं के बीच भी तुम उन सबके साक्षी रहते हो। जो कुछ घटता है और तुम जो कुछ करते हो, तुम सभी के साक्षी रहते हो। भीतर तुम पूर्णतः शान्त और अधृष्य रहते हो।

“जब एक अभिनेता चलचित्र में खलनायक की भूमिका अदा करता है तब वह दुश्मन पर गोली चलाता दिखाई देता है, बड़ा क्रोध करता दिखाई देता है, निष्ठुर व धोखेबाज़ प्रतीत होता है किंतु भीतर ही भीतर क्या वह अभिनेता सचमुच क्रोधी या निष्ठुर होता है? क्या वह यह सारे काम अपने हृदय से करता है? नहीं। वह अपने इन कृत्यों का साक्षी होता है। वह अलग खड़ा रहता है, उससे जुड़े या लिप्त हुए बिना सब कुछ देखता है। वह अपने शरीर की बाह्य प्रतिक्रियाओं से एकरूप नहीं रहता। इसी प्रकार जो साक्षीभाव में प्रतिष्ठित है वह भीतर ही भीतर, किसी भी परिस्थिति में अस्पृष्ट व अधृष्य रहता है।”

प्रश्न - “अम्मा, आप कहती हैं कि साक्षीभाव में प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में, चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, शान्त एवं अविचलित रह सकता है। किंतु आप यह भी कहती हैं कि वह ऊपर से एक साधारण व्यक्ति सा व्यवहार कर सकता है। यह परस्पर विरोधी बातें लगती हैं।”

अम्मा - “साक्षी चयन कर सकता है - वह चाहे तो भावनाओं को प्रकट कर सकता है या मौन अप्रभावित भी रह सकता है। किंतु ऐसे लोग ऊपर से सामान्य मानवीय संवेदनाएँ प्रकट करने पर भी अनुपम सौन्दर्य व शालीनता के धनी होंगे। उनमें सहज आकर्षण रहेगा। यद्यपि वे विभिन्न

संवेदनाएँ प्रकट करें तो भी इच्छानुसार वे सभी भावनाओं से मुक्त भी हो सकते हैं। अगर वे शान्त, मौन व निस्संग रहना पसंद करें तो ऐसा सहज ही कर सकते हैं। यदि वे अत्यधिक मात्रा में प्रेम व करुणा प्रकट करना चाहें तो वह भी संभव होगा।”

अम्मा ने इसे और समझाया - “आत्मसाक्षात्कार होने के पश्चात् यदि तुम किसी व्यक्ति या स्थिति से प्रभावित होने की सी प्रतीति बाहर प्रकट करना चाहो तो ऐसा कर सकते हो। इस स्थिति में तुम स्वयं किसी बात को होने या न होने की अनुमति देते हो। तुम्हारा मन तुम्हारे पूरे नियंत्रण में रहता है, वह तुम्हारी अनुमति के बिना कुछ भी न स्वीकार करेगा, न त्यजेगा, न ही कोई प्रतिक्रिया प्रकट करेगा। यदि तुम साक्षी के रूप में स्थिर व निस्संग रहना चाहते हो तो तुम्हारे लिए वह भी संभव है। यदि तुम विराग, त्याग और निस्स्वार्थ प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हो तो उन आदर्शों पर जी सकते हो। अन्य किसी साधारण व्यक्ति की अपेक्षा अत्यधिक दुःख और व्यथा झेलना पड़े तो भी तुम भीतर से अप्रभावित रहोगे।

“यदि तुम्हारे सहानुभूति व शोक प्रकट करने से किसी व्यक्ति के जीवन में बड़ी काया-पलट हो सकती है तुम दुःख ज़ाहिर करते हो। किंतु तुम उस दुःखभाव के साक्षीभर हो। तुम्हारे दुःख प्रकट करने पर वह व्यक्ति तुम्हारे प्रति कृतज्ञता अनुभव करेगा। तुम्हारा गहरा प्यार व चिंता उस पर गहरा असर डालती है, चूंकि तुम जब कोई संवेदना प्रकट करते हो तब उसे पूर्ण रूप से प्रकट करते हो। तुम्हारी कोई अभिव्यक्ति अधूरी नहीं होती। तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व उसमें लीन होता है। तुम किसी भी समय सकारात्मक या नकारात्मक कोई भी भाव प्रकट कर सकते हो। अन्य लोगों का उसका गहरा अनुभव होगा, उनके हृदय उससे प्रभावित होंगे। परंतु महात्मा अपने शरीर से प्रस्तुत मानसिक भावनाओं के साक्षीभर रहते हैं।

“यदि महात्मा चाहें तो क्रोध, व्यग्रता, भय या उत्तेजना प्रकट कर सकते हैं। किंतु ये केवल बाह्य अभिव्यक्ति होगी। उनका मन सदा शान्त रहता है। उनके लिए यह एक मुखौटा पहनना जैसे होता है। महात्मा

क्रोध, हर्ष, दुःख व भय के अलग-अलग मुखौटे पहनते हैं। मगर ये किसी खास उद्देश्यसिद्धि के लिए ही करते हैं। वह मतलब पूरा हो गया तो मुखौटा उतार देते हैं। वे कभी उससे अभिन्न नहीं होते क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि वे मुखौटे से भिन्न हैं।

“हमारी समस्या यह है कि मन के सारे विकारों से हम अपने को अभिन्न मानते हैं। जब हम कुंठित होते हैं तो स्वयं को पस्वरूप बन जाते हैं। भय, उत्तेजना, व्यग्रता, दुःख और आनन्द के विषय में भी यही अनुभव होता है। हम अपने को मुखौटे से अभिन्न मानते हैं।

“मनःस्थिति के नकारात्मक होने पर तुम शायद क्रोध करो और जब मन कुछ विश्राम महसूस करता है तब शायद शान्त रहो, दूसरों के प्रति तुममें प्रेम हो। वस्तुतः तुम इन भावनाओं से पृथक् हो। मान लो कि तुम्हारा एक घर, परिवार, पालतू कुत्ता-बिल्ली हैं। मानो कि कोई तुमसे पूछता है - ‘यह किसका घर है?’ तुम्हारा जवाब क्या होगा? तुम कहोगे - ‘यह मेरा घर है।’ तुम यही बात अपनी गाड़ी, परिवार, बिल्ली और कुत्ते के विषय में कहोगे। ये सब तुम्हारे हैं। किंतु जो भी तुम्हारे हैं, वस्तुतः वे तुमसे भिन्न हैं। घर तुम्हारा है, पर वह तुम नहीं, शरीर तुम्हारा है पर वह तुम नहीं। यही बात तुम्हारे मन, विचार, संवेदनाओं और बुद्धि की भी है। तुम आँखों के माध्यम से देखनेवाले द्रष्टा हो, संवेदनाओं का अनुभव करते साक्षी हो, विचारों के चिंतक हो; तुम महसूस करते हो, सोचते हो, देखते हो, सुनते हो और चखते हो। तुम अनुभव करते हो विषय को, तुम विषयी हो। एक बार तुम प्रत्येक वस्तु के आधारभूत विषयी बन जाते हो तो सारे भेदभाव लुप्त हो जाते हैं, तुम उन सब को तर जाते हो।

“इस सत्य से कि तुम संपूर्ण विश्व के आधारभूत शक्ति हो, कि तुम सब में स्पंदित चेतना हो, कि तुम समस्त शक्ति का संपूर्ण रूप हो, अनभिज्ञ रहकर तुम अपने मन से तादात्म्य जोड़ लेते हो और उसके विभिन्न विचारों, व संवेदनाओं से अपने को अभिन्न मानते हो और कहते हो - ‘मैं फलाना फलाना हूँ, मैं भूखा हूँ, गुस्से में हूँ, वगैरह’। तुम बाह्य पक्ष से एकरूप हो जाते हो, भीतरी पक्ष से नहीं। एक बार तुम अन्तःसत्ता से एकरूप

हो जाते हो तो उसके बाद भीतर या बाहर नहीं रहता क्योंकि तुम दोनों को पार कर लेते हो।

“अपने पूरे जीवन में, जन्म से लेकर अन्तिम क्षण तक भगवान श्रीकृष्ण उनके निजी जीवन में घटित घटनाओं एवं परिस्थिति के केवल साक्षी बने रहे। उनके मुख का मन्दमुस्कान कभी अदृश्य नहीं हुआ, चाहे वे युद्धक्षेत्र में रहे हों, चाहे जीवन की किसी भी अन्य चुनौती से निपट रहे हों। वे सदैव पूर्ण शान्त रहे, उनके मुखमंडल पर सदा मोहक मंदहास खिला रहा। जब उनके अपने वंशज ही आपस में लड़ झगड़ कर मर रहे थे, जब शिकारी ने उनको घातक तीर मारा जिसे कारण बनाकर उन्होंने शरीर त्यागा, तब भी श्रीकृष्ण के चेहरे पर वही मुस्कराहट थी चूंकि वे साक्षीभाव की स्थिति में ही प्रतिष्ठित रहे। वे अपने जीवन के सभी घटनाओं के साक्षी थे। वे सदा परमात्मा भाव में ही रहे।”

अम्मा ने अपने वचनों को विराम दिया और अचानक मानो किसी अन्य लोक में चली गईं। बीच-बीच में उनके मुख से आनन्दपूर्ण अट्टहास की लहर फूट पड़ती। कुछ समय बाद वे अपने दाएँ हाथ को हवा में वृत्ताकार में घुमाने लगीं। उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और ब्रह्मचारियों से एक भजन गाने का कहा।

उन्होंने गाया - ‘परिशुद्ध स्नेहत्तिन’

भावार्थ -

परिशुद्ध प्रेम का पर्याय हो तुम।

परमार्थ तत्त्व के प्रतिबिम्ब हो तुम।

परितप्त हृदय को शीतलता देती

परिपूर्ण शान्ति निर्झरी हो तुम, अम्मा।

वांछित फल प्रदान कर

आश्वासन देती उदारशीले

आश्रितों के मन में ज्ञानामृत बरसाती

आत्मबोध जगाती प्रेमधाम हो तुम।
आत्मस्थ आनन्द शान्तिधाम हो तुम।

साहोदर्य भाव धरा पर प्रसारती हो तुम।
स्वाधीनता का गीत गाती हो तुम।
सायूज्य लोक प्राप्ति के पथ को
स्नेह सद्दीप से प्रज्ज्वलित करती हो तुम।
सारोपदेश देती हो तुम।

अर्पित करता हूँ तुम्हारे चरण कमलों में
मैं एकान्त स्वांतसरोरुह को।
एकान्तभक्ति, ज्ञान और योग
मुझमें एक हो, मुझे आत्मलाभ हो।
ताकि मैं आत्मसौन्दर्य का आस्वादन कर सकूँ।

सर्वसाक्षी अम्मा

अम्मा साक्षीभाव की सर्वोच्च स्थिति का जीवंत उदाहरण हैं। उनके जीवन का नज़दीक से निरीक्षण करने पर यह व्यक्त होता है कि वे उस अवस्था में नित्य स्थित हैं। बचपन में उन्हें सभी दिशाओं से कठोर परीक्षाओं का सामना करना पड़ा एवं अनेकानेक कष्ट झेलने पड़े। वे अनपढ़, अज्ञानी लोगों के बीच रहती थीं इसलिए उन्हें अत्यधिक धीरज और निस्संगता का प्रदर्शन करना पड़ा। वे हिमालय की तरह दृढ़ और अविचलित रहकर भारी विपमताओं और कष्टों का सामना करती रहीं।

भगवद्गीता में कहा गया है -

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

किसी परिस्थिति या व्यक्ति ने अम्मा को प्रभावित नहीं किया। अतीत की चिंताओं से वे कभी दुःखित नहीं हुईं। वे भविष्य के बारे में भी कभी चिंतित नहीं हुईं। शान्ति व साहस से वे जीवन की सभी कठिन परिस्थितियों का सामना मन्दहासपूर्वक करती रहीं। अम्मा सभी परिस्थितियों को स्वीकार करने के लिए हमेशा तैयार थीं। जिन अनन्त कष्टों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनसे कोई भी साधारण व्यक्ति टूट ही जाता अथवा आत्मविश्वास व हिम्मत खो देता।

ऐसी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, किसी से भी कोई मदद पाए बिना, अपने परिवार से भी कुछ सहयोग न पाने के बावजूद अम्मा ने स्वयं एक बड़ा आध्यात्मिक संगठन खड़ा कर दिया है।

उनका जन्म देहात में एक गरीब मछुवारा परिवार में हुआ। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा तक पूरी नहीं की। धन-संपत्ति का भी अभाव था। फिर भी वे जिस ऊँचाई पर पहुँच गई हैं, उसकी कल्पना करना तक कठिन है। यह कैसे संभव हो सका? कैसे इसका विश्लेषण किया जाए?

हाल ही में किसी ने अम्मा से पूछा, “आपके आश्रम और संगठन का जो भारी परिवर्धन हुआ है उसके विषय में आपके क्या विचार हैं? एक समय ऐसा भी था जब लोग आपका अपमान करते थे, आपके जीवन में सौ अड़चनें डालते थे। किंतु अब आप पूरे विश्व में पहचानी जाती हैं और आपका सम्मान हो रहा है। इस पर आपको कैसा महसूस हो रहा है?”

अम्मा ने मंदहास पूर्वक उत्तर दिया, “अम्मा किसी प्रकार का फर्क महसूस नहीं करती। अम्मा सदा एक ही रही हैं। तथाकथित कठिनाइयाँ जब रहीं तब भी मैं आत्मस्थ थी और अब तथाकथित यश व प्रतिष्ठा आ गई हैं तो भी मैं आत्मस्थ ही हूँ।”

हाँ, अम्मा सदा एक ही रही हैं। उनका प्रेम व करुणा कभी नहीं बदलती। उनमें कभी कोई अन्तर नहीं आया। फिर भी वे जब चाहती हैं तब विनोदी रह सकती हैं, बच्चों से खेल सकती हैं, बचकानी हरकतें कर सकती हैं और चाहने पर संसार के सारे संबन्ध छोड़ पूर्णचेतना

के स्तर पर रह सकती हैं। वे पूर्णतः निस्संग रह सकती हैं, बिना भोजन, बिना नींद, जितना समय चाहें उतने समय तक। संसार उन्हें बिलकुल बाधित नहीं करता।

अज्ञानी ग्रामवासियों ने कई बार उन्हें जान से मार डालने की धमकी तक दी। उन्होंने अम्मा को अपमानित किया, उनके विषय में झूठी अफवाहें फैलाई। एक बार तो उनके बड़े भाई सुभगन ने अपने एक रिश्तेदार के साथ मिलकर उन्हें मारना चाहा और उस रिश्तेदार ने छूरा चलाने की चेष्टा भी की। फिर भी अम्मा मुस्कुराती हुई बोलीं - "मुझे मृत्यु का भय नहीं है। तुम इस शरीर को मार सकते हो पर आत्मा अमर है, अविनाशी है। तुम आत्मा को मार नहीं सकते।" अम्मा शान्ति से बैठी रहीं पर वे कुछ कर नहीं सके। यह आत्मा का प्रभाव है। ऐसी परिस्थिति में ऐसी प्रतिक्रिया करना तो साक्षीभाव में प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए ही संभव है, जो सर्वोच्च साक्षीभाव में रहते हुए सब कुछ देख रहा हो।

आत्मा की अनन्त शक्ति

अम्मा ने एक बार कहा - "यदि तुम मन को तर गए तो कोई तुम्हें तब तक कुछ नहीं कर सकता जब तक तुम उन्हें वह करने न दोगे। तुम कुछ होने दे सकते हो, कुछ होने से रोक भी सकते हो। वह चाहे हो या न हो, तुम साक्षी बने रहते हो, बिलकुल अस्पृष्ट, अविचलित, पूर्ण निस्संगता की स्थिति में सदा स्थित। मानो तुम्हें कोई जान से मारना चाहता है। अगर तुम अनुमति न दो तो वह तुम्हारी ओर उंगली तक उठा नहीं सकता। जब तक तुम्हारा संकल्प न हो तब तक वह जो भी करे, तुम्हें छू तक नहीं पाएगा। वह किसी विलक्षण रूप में सदा असफल रहेगा। अन्ततः शायद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि कोई न कोई दैवी शक्ति तुम्हारी रक्षा कर रही है। वह शक्ति आत्मा की असीम शक्ति है, कोई बाह्य शक्ति नहीं है। शक्ति का स्रोत तुम्हारे भीतर है। तुम ही वह असीम शक्ति हो। जब तुम अहंकार विहीन हो जाते हो तब तुम सब कुछ बन जाते हो। संपूर्ण विश्व ज्ञानी के पक्ष में होता है।

जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, पत्थर, नदी-सरिताएँ, सूर्य, चन्द्र व तारे भी आत्मज्ञानी के पक्ष में होते हैं। जब तुम पूर्ण अस्तित्व के सामने पूरी विनम्रता से सिर नवाते हो तब समस्त सृष्टि तुम्हें प्रणाम करती है, तुम्हारी सेवा करती है। मगर तुम उन्हें अपने खिलाफ होने का भी आदेश दे सकते हो चूँकि किसी भी हालत में तुम प्रभावित नहीं होते।

"जब मन या अहंकार नहीं रहता तब तुम संपूर्ण सृष्टि के साथ अभिन्न हो जाते हो। संपूर्ण सृष्टि तुम्हारी हो जाती है। कोई जीव तुम्हें शत्रु के रूप में नहीं देखेगा। वैरी भी निर्वैर हो जायेगा क्योंकि उसमें भी वही जीव-चैतन्य, वही आत्मा स्पंदित है, यद्यपि वह यह तथ्य नहीं पहचानता। तुम शत्रु से अभिन्न हो तो वह तुम्हारा दुश्मन कैसे रह सकेगा? जो कोई भी वस्तु हो, वह चाहे सचेतन हो या अचेतन वह तुम्हारी ही आत्मा के विभिन्न रूप हैं, यह असंभव है कि वे तुम्हें किसी भी तरह हानि पहुँचाएँ। एक बार तुमने अपने अहं को छोड़ दिया तो तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हें कुछ नहीं हो सकता।

"मेवाड़ के राणा ने मीरा को जान से मारना चाहा। उन्होंने मीरा के पास ज़हर का प्याला भेजा। उसके साथ एक पत्र भी भेजा जिसमें उन्होंने बड़े प्रिय व मधुर शब्दों में सारी नितुराई के लिए क्षमा मांगी। पत्र में विशेष रूप से लिखा था कि मीरा के लिए खास पेय भेजा जा रहा है।

"हालांकि मीरा जानती थी कि प्याले में ज़हर है उन्होंने प्याला स्वीकार करके उसे पी भी लिया। कुछ भी नहीं हुआ। राणा ने और कई उपायों से उन्हें मारने का प्रयत्न किया, पर सारे प्रयास व्यर्थ गए। मीरा प्रसन्न और अविचलित रही। यह कैसे संभव हुआ? कारण यह था कि मीरा अहंकारशून्य थीं। वह मन से परे थीं।

"जहाँ तक मीरा का सवाल था, सब कुछ उनके गिरिधर ही थे, उनके प्रिय श्रीकृष्ण थे। उनकी अपनी कोई अभिलाषा नहीं थी, वह अपने लिए कुछ नहीं चाहती थीं। उन्हें तो इसकी भी परवाह नहीं थी कि श्रीकृष्ण उन्हें चाहतें हैं या नहीं, वे तो केवल यही चाहती थीं कि अपनी ओर से वे श्रीकृष्ण को निस्स्वार्थ भाव से प्रेम करें। मीरा के लिए कृष्ण

ही सब कुछ थे। 'हे प्रभु! तुम, केवल तुम' यही भाव था, वहाँ 'मैं' बिलकुल नहीं था। कर्तृत्व की भावना बिलकुल नहीं थी। सभी कुछ भगवान का किया हुआ था। परिस्थिति जैसी भी हो उन्हें कोई शिकायत नहीं थी। वे सब कुछ प्रसादरूप स्वीकार करती थीं। श्रीकृष्ण को समर्पित होकर मीरा पूरे अस्तित्व को समर्पित हुई। मीरा के लिए श्रीकृष्ण एक खास रूप में दृश्यमान सीमित व्यक्ति नहीं थे। उनके लिए संपूर्ण सृष्टि कृष्णमय थी। वह संपूर्ण सृष्टि से एकरूप हो गई थीं। वह श्रीकृष्ण से अभिन्न हो चली थीं। उनका शरीरबोध नष्ट हो गया था। जब तुम्हारा कोई शरीर ही नहीं है तब तुम्हें कोई कैसे मार सकेगा? समस्त सृष्टि तुम्हारे पक्ष में तुम्हारी रक्षा कर रही है तो ज़हर तुमपर कैसे असर डालेगा? सृष्टि का कोई अंग सृष्टि को ही कष्ट कैसे दे पाएगा? तुम उसे अनुमति दो, तभी वह तुम्हारा स्पर्श कर सकेगा। तुम्हारे सहमति देने पर ही वो तुम पर प्रभाव डाल पाएगा। अगर तुम इंकार कर दोगे तो वह बेअसर हो जाएगा। उस उच्चतम स्थिति तक तुम पहुँच गए तो शरीर के पीड़ित और नष्ट होने पर भी कुछ नहीं होगा, क्योंकि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो।

"सारा विश्व तुम्हारा शरीर है। सृष्टि का हर अंग तुम्हारे वैश्विक शरीर का अंग है। सब कुछ जब एक है तब अंग कैसे पूर्ण को कष्ट दे पाएगा? हाथ आँख को कैसे चोट पहुँचाए? वे भिन्न दिख सकते हैं और उनके कार्यकलाप भिन्न हो सकते हैं मगर वे संपूर्ण शरीर से अभिन्न हैं।

"जब तुम आत्मा से अपनी अभिन्नता को पहचान लोगे तब संपूर्ण सृष्टि तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक बन जायेगी। तुम स्वामी बन जाते हो और प्रकृति की हर वस्तु तुम्हारे आदेश की प्रतीक्षा करती है। जब संपूर्ण सृष्टि तुम्हारा पूर्ण समर्थन करती है तब कोई चीज़ तुम्हारे खिलाफ तब तक नहीं होगी जब तक तुम ऐसा नहीं चाहते। तुम जो भी आज्ञा दो प्रकृति पालन करेगी। यदि तुम कहोगे कि ऐसा न हो तो ऐसा नहीं होगा। आत्मसाक्षात्कार ही अस्तित्व की पूर्णता है।"

अम्मा के अपने जीवन की एक घटना हमें याद आती है। अम्मा ने

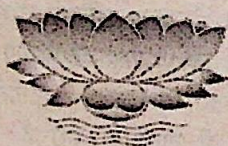
एक बार एक पागल कुत्ते के मुँह में अपना हाथ डाला। जिन दिनों अम्मा घर के बाहर रहती थीं उन दिनों के प्रारंभिक मित्रों में वह कुत्ता भी था। अम्मा उस कुत्ते को बहुत प्यार करती थीं। जब उन्होंने देखा कि उस कुत्ते को पेड़ से बांध रखा है, तब वे उसके पास गई, उसे गले लगाकर और उसका मुँह चूम कर अपना प्यार दिया। उन्होंने कुत्ते को कुछ खिलाने की कोशिश भी की। यों करते स्वयं उन्होंने उसके मुँह में अपना हाथ डाला। वहाँ उपस्थित लोगों ने यह दृश्य देखा तो वे चौंक उठे क्योंकि अम्मा के हाथ पर कुत्ते की लार लग गई थी। वह लार ज़हरीली थी। वे लोग बड़े ही चिंतित थे और उन्होंने सुझाया कि अम्मा को पूर्व सतर्कता के रूप में कुत्ते के ज़हर का टीका लेना चाहिए। अम्मा मुस्कुराई और उन्होंने उत्तर दिया - “कुछ नहीं होगा। चिंता मत करो।” सचमुच हुआ भी कुछ नहीं।

अम्मा कहती हैं, “साक्षात्कार पाने के उपरान्त तुम्हारा मन विश्वमानस् बन जाता है। सारे मन तुम्हारे हो जाते हैं। तुम सभी मनों के एकमात्र नियंत्रक हो जाते हो। मानव मनों के ही नहीं, संपूर्ण विश्वमानस् के। इसका मतलब यह हुआ कि हर मन की बागडोर तुम्हारे हाथ में होती है। तुम सभी बन जाते हो। शरीर भिन्न हो सकते हैं, किंतु प्रत्येक शरीर में तुम ही वास करते हो। तुम्हारा प्रतिद्वंद्वी तुम्हीं तो हो, दूसरा आवरण मात्र ही है। विभिन्न रंगों के कागज़ में लपेटी हुई एक ही स्वाद की मिठाई जैसे। कागज़ अनेक रंगों के हैं - नीले, हरे, लाल या पीले। मिठाइयाँ सोच सकती हैं, मैं नीली हूँ, हरी हूँ, आदि। मगर भीतर क्या है? एक ही वस्तु की बनाई एक ही स्वाद की मिठाइयाँ।”

अम्मा ने एक बार कहा - “तुम्हारे सभी विचार व क्रियाएँ अम्मा से होकर ही प्रवर्तित होती हैं।”

एक महात्मा के तौर-तरीके अनन्त होते हैं, उनके अनन्त पक्ष होते हैं। बाहर जो दिखता है उसी को हम देख सकते हैं। महात्मा हमारे लिए एक अद्भुत शक्ति, अज्ञात तत्त्व ही रहते हैं। जब हम अपनी आत्मा को समझते हैं तभी उस तत्त्व को भी समझ पाते हैं। महात्मा के अनन्त विस्तार, असीम प्रेम और दया हमें विनम्र होने में मदद देते हैं। जब

हम ऐसे महात्मा की सन्निधि में रहते हैं तभी हम अपनी सीमाओं को पहचानते हैं। तभी हम पहचानते हैं कि हम कुछ नहीं हैं। कुछ न होने का अहसास और विनय हमें पूर्णता की स्थिति में, सर्वस्व होने के अनुभव तक पहुँचायेंगे।



अध्याय - ४

आश्रम में ब्रह्मचारियों के लिए कुछ नये कुटीर बनाए जा रहे थे। संध्या के भजन-कीर्तन के पश्चात् अम्मा ने चाहा कि प्रत्येक व्यक्ति समुद्र तट जाए और नये कुटीरों की बुनियाद को भरने के लिए रेत ले आए। घोषणा ज्यों ही हुई त्यों ही हर एक व्यक्ति टोकरा और बेलचा ले समुद्र तट चला। अम्मा आगे आगे चलीं और शीघ्र ही पूरा दल समुद्र तट पहुँच गया। ठण्डी हवा चल रही थी। समुद्र बौखलाया हुआ था। उसके गहरी गर्जन की आवाज़ रात के अंधकार में गूँज रही थी। घनघोर लहरें जल के श्याम वितान से उठतीं और तट से टकराकर बिखर जातीं। रात के अंधेरे में विशाल गरजता सागर विस्मयकारी था और मन में गहन शान्ति का अनुभव कराता था।

'रेत सेवा' शुरू हुई। प्रत्येक व्यक्ति बड़ी लगन से काम कर रहा था। अम्मा भी सक्रिय रूप से योगदान दे रही थीं। कभी वे खुद बोरो में रेत भरने के लिए बेलचा चलाती और कभी अपने कंधे पर रेत का बोरा उठाकर आश्रम तक चलती थीं। यद्यपि आश्रमवासी उन्हें काम करने से रोकने का प्रयत्न करते थे तो भी अम्मा उनकी प्रार्थना नहीं मानती थीं। रेत सेवा दो घण्टों से अधिक समय तक चली। अब ग्यारह बज रहे थे। अम्मा समुद्र के किनारे आश्रमवासियों एवं कुछ गृहस्थ भक्तों से घिरी बैठ गईं।

जितने भी लोगों ने काम किया था उन्हें अम्मा ने केले की चिप्स और काली कॉफी बांटी। एक एक करके ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ अपना हिस्सा लेने के लिए अम्मा के पास जातीं। चिप्स और कॉफी बांटते हुए अम्मा ने कतार में खड़े एक ब्रह्मचारी से कहा - "तुमने काम नहीं किया है। इसलिए तुम्हें कोई प्रसाद नहीं मिलेगा। यह उन्हीं के लिए है जिन्होंने पिछले दो घण्टों तक कड़ी मेहनत की है।"

जब वह ब्रह्मचारी एक शब्द भी कहे बिना कतार छोड़ चलने लगा तब अम्मा का मातृप्रेम उमड़ आया। उन्होंने उसे फिर से पुकारा और कहा - "ठीक है बेटे, दुःखी मत होना। आश्रम को रेत का सिर्फ एक बोरा ले चलना। तुम्हारे लौटने पर अम्मा प्रसाद देंगी।"

ब्रह्मचारी ने अम्मा का आज्ञापालन किया। जब वह कंधे पर रेत उठाकर आश्रम चल रहा था तब अम्मा बोलीं - "उसे एक बोरा ले चलना होगा। क्योंकि अम्मा निःस्वार्थ भाव से अब तक मेहनत करने वाले लोगों से अन्याय नहीं करना चाहती।"

मन झूठ है

जब सभी लोग अम्मा के प्रसाद का आस्वादन कर रहे थे तब एक ब्रह्मचारी ने प्रश्न किया - "अम्मा, कल साक्षीभाव की व्याख्या करते हुए आपने कहा कि मन मिथ्या है। मैंने यह भी पढ़ा है कि जग मिथ्या है। इनमें कौन सा कथन सही है?"

अम्मा - "बेटे, दोनों कथन सही हैं। मन बड़ा झूठ है और संसार उस बड़े झूठ का विकसित रूप है। दोनों मिथ्या हैं। मन के रहने से ही जग रहता है। मन ही तुम्हारी सभी समस्याओं के लिए जवाबदेह है। वह तुममें संदेह उत्पन्न करता है और पीड़ा देता है। तुम्हारे भीतर क्रोध, घृणा और ईर्ष्या जनाता है। तुम्हें अविवेकी कार्य और बुराई तक करने की प्रेरणा देता है। वह अनिवार्यतः तुम्हें बड़ी व्यथा में ढकेल देता है। मन नरक है। वह माया और असत्य है। जब तक मन है तब तक तुम्हारा अस्तित्व झूठा है। मन का नाश ही तुम्हें सत्य और यथार्थ तक ले जायेगा।

"अहंकार मन की उपज है। इसलिए अहं भी झूठ है। वह असत्य है। जब तुम मन और अहं से छूट जाते हो तभी तुम्हारा अस्तित्व पूर्ण बनेगा।"

प्रश्न - "अम्मा आप कहती हैं कि मन व अहं असत्य हैं, नामरूप का जगत हमारे मन का ही प्रक्षेपण है, हमारा स्वस्वरूप परमात्मा या

आत्मा है। आप इस बात को और सरल रीति से जब तक न समझाएँ तब तक इस बात को समझना बहुत कठिन है।”

अम्मा - “बेटे, सब से पहले तुम्हें समझना चाहिए कि ये बात शब्दों में बताई नहीं जा सकती। अम्मा कितने ही सबूत व उदाहरण देती चलीं तब भी स्वयं सत्य अनुभव किए बिना यही प्रश्न करते रहोगे। मन और जगत के असत्य होने का तथ्य तुम्हें स्वयं पहचानना होगा। तपस्या करो तो तुम्हें यह विदित हो जाएगा।

“बच्चो, समझ लो कि मन ही सबसे बड़ी पहेली है। किंतु शुद्ध चैतन्य या आत्मा पहेली नहीं है। तुम एक बार आत्मा को जान सको तो फिर पहचानोगे कि वह पहेली बिलकुल नहीं है। वह तो तुम ही हो, तुम्हारी सहज स्वभाव। वह घनिष्ठ से घनिष्ठ है। मन ही उसे पहेली बनाता है। मन स्वयं एक जटिलता है जो हर बात को बहुत जटिल बनाता है।

“तुम मन नहीं हो। तुम आत्मा हो। तुम उस चेतना के भीतर जन्मे हो। उसी में तुम्हारा विकास होता है। तुम उसमें ही रहते हो। उस चैतन्य में ही तुम मर भी जाते हो। किंतु इस महान तथ्य से तुम बिलकुल अवगत नहीं रहते। क्यों? मन और मन से सिरजा संसार ही इसका कारण है। मन आत्मा को पहचानना असंभव बना देता है। मन तुम्हें मार डालता है। वह तुम्हारी सारी ऊर्जा, सारी शक्ति को बिखेर देता है। मन दुर्बलता है। अतएव उस मिथ्या से बचने का प्रयास करो, उस कपटी मन से, अहं से बाहर निकल आओ।

“बच्चो, तुम हमेशा प्रमाण और स्पष्टीकरण मांगते हो। यह एक ऐसी चीज़ है जिसका सबूत नहीं दिया जा सकता। वैज्ञानिक समाधान का प्रमाण दिया जा सकता है। इन्द्रियगोचर बात को कोई सबूत से स्पष्ट कर सकता है। किन्तु आत्मा विज्ञान से परे है, इन्द्रिय-अगोचर है। उसे तुम अपने ही भीतर अनुभव करते हो। लेकिन समझ लो कि मन ही सबूत माँगता है। मिथ्या मन माँगता है कि तथ्य साबित किया जाए। तुम्हारी शंकाओं और प्रश्नों का स्रोत ही मिथ्या है। तुम्हारी सारी शंकाएँ और भय उस कपटी मन से निकलते हैं।

“एक उदाहरण सुनो - एक मशहूर पहलवान था। कोई उसे पछाड़ नहीं सकता था। वह अजेय था। वह वर्षों से अपने देश का चैम्पियन रहा। देश के सबसे बड़े ताकतवर आदमी होने के कारण सहज ही वह घमंडी व उद्दण्ड हो गया। एक दिन दूसरे शहर का एक पहलवान इस पहलवान से कुश्ती खेलने आया। उसने चुनौती स्वीकार की और तिथि भी तय हुई। दोनों पहलवानों की कुश्ती का काफी विज्ञापन दिया गया। निश्चित दिन आया। दोनों खिलाड़ी अखाड़े में आकर खड़े हो गए। देश का चैम्पियन खिलाड़ी अपनी जीत का पूरा भरोसा रखता था। अपने प्रतिद्वंद्वी की तुलना में वह अधिक सशक्त, सुघड़ शरीर का और अनुभवी था। कुश्ती शुरू हुई। दर्शकगण शोर करते और दोनों को प्रोत्साहित करते - सीटी बजाते, हाथ हिलाते। कुछ लोग चैम्पियन को दाद देते थे। कुछ लोग दूसरे पहलवान के पक्ष में ये सब करते। कुश्ती कुछ समय तक चली। यह फैसला करना मुश्किल रहा कि कौन जीतेगा। मगर अंत में बाहर से आए पहलवान ने चैम्पियन पहलवान को पटक दिया। वह उस साल का चैम्पियन घोषित हुआ। दर्शक जोर से चिल्लाए - ‘नया चैम्पियन जिन्दावाद।’ वह हारे हुए पहलवान का व्यंग्य और हँसी उड़ाने लगे, उसे चिढ़ाने लगे। वह किसी तरह अखाड़े से उठा और वहाँ से सिर झुकाए चला गया। अखाड़े से दूर जाने पर भी लोगों के उपहास की ध्वनि उसके कानों में गूँज रही थी। उसके हृदय में घृणा भरी हुई थी। मन बड़ा अशान्त था। इसी समय वह अचानक जाग उठा!

“हाँ, वह सिर्फ सपना था! लेकिन हमारा चैम्पियन बहुत ही बेचैन था। उसके मन की शान्ति नष्ट हो गई थी। वह अपने कमरे में कटखतों में बंद शेर की तरह तेज़ी से चहलकदमी कर रहा था। उसके मन में बदला लेने की भावना भरी थी। वह सपने में एक दम डूब गया और स्वप्न के प्रतिद्वंद्वी को पकड़ने के उपाय पर सोचने लगा। उसने सोचा - ‘हे भगवान्! मेरा सब कुछ खो गया। मेरा यश नष्ट हो चुका, कैसे चार लोगों के सामने सिर उठाकर चलूँ? आगे कोई मेरी इज्जत नहीं करेगा। उनके व्यंग्य, अपमान को कैसे झेलूँ? यों जीने से मर जाना बेहतर है। मैं उस मूर्ख से बदला लेने का उपाय खोजूँगा।’ उसके मन में ऐसे

विचार भर उठे। वह बुरी तरह विचारों में उलझा पागल सा हो गया। वह ज्यों-ज्यों उत्तेजित होता त्यों-त्यों उसका मन पर कब्जा छूटता। आखिर वह बैठकर विश्राम करने लगा। उसका मन शान्त होने लगा, चिंताएँ थमती गईं। शीघ्र ही उसने अपनी मूर्खता पहचान ली। उसने सोचा - 'हाय! भगवान! मुझे क्या हो गया? कैसा बेवकूफ हूँ? वह तो सिर्फ सपना था। वह बिलकुल सच नहीं था, सब मेरे मन की कल्पना थी। मैं तो उस बात से डर गया, घबराया जो कभी हुई ही नहीं।'।

"बच्चो, देखो - वह पहलवान अपने ही मन से पूरा पूरा वंचित हो गया। वह सपने से तदाकार हो गया और सोचने लगा कि सपने में घटी घटना सच थी। दूसरा पहलवान, उपहास करने वाले इतने सारे दर्शक कहाँ से आए? दोनों खिलाड़ियों के दांव-पेंच किसने बनाए? अखाड़ा, चैम्पियन की पराजय, शर्म, गुस्सा, बदले की भावना - ये सब किसने सिरजे? सब कुछ मन का रचा हुआ था। वह सच नहीं था। फिर भी पहलवान ने विश्वास किया कि वह सत्य था और उसी के अनुसार उसकी प्रतिक्रिया रही। जब तक वह अपने मन के सिरजे सपने से जुड़ा रहा तब तक उसे कष्ट झेलना पड़ा। ज्यों ही उसने पहचाना कि सपना तथ्य नहीं है त्यों ही वह सपने के कब्जे से छूटा और शान्ति पा सका।

"इसी तरह हम सब एक सपने में डूबे हुए हैं। पहलवान छोटे ख्वाब से ही जुड़ा हुआ था। ज्यों ही वह जाग उठा त्यों ही सपने का संसार गायब हो गया। जब उसने विश्राम किया तब सपने से उसका संबन्ध भी लुप्त हो चला। हम तो कहीं अधिक लम्बे सपने से अभिन्न हो गए हैं। वह सपना हमारे विचारों एवं सीमित अनुभवों पर आधारित हैं, मन से प्रक्षेपित है। वर्तमान स्थिति में हम यही मानते हैं कि सपना सच है। मन से सृजित सपने में हम रहते हैं और उससे अभिन्न हो गए हैं। अभी हमें जागना है।

"तुम अधिक स्पष्ट विश्लेषण माँग रहे थे। जब तुम सपना देख रहे हो तब यह कैसे स्पष्ट किया जाए? जब तुम जाग उठो तब सपना अदृश्य हो जाएगा। तभी सब कुछ स्पष्ट होगा। बच्चो, तुम सब सपना देख रहे हो और विश्वास कर रहे हो कि सपना सच है। अधिक से अधिक

स्पष्टीकरण भी उसे तुम्हारे लिए अधिक स्पष्ट नहीं कर पाएगा। जब तक तुम नहीं जागते तब तक और जब तक तुम सपने में लीन रहते हो तब तक वह अस्पष्ट ही रहेगा। जाग उठो और तब तुम पहचानोगे कि सपना देख रहे थे। तब सारी बातें स्पष्ट से स्पष्टतर हों जाएँगी।

मन की दो शक्तियाँ

“मन की दो शक्तियाँ होती हैं। आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति। प्रारंभ में मन किसी तत्त्व की यथार्थ प्रकृति पर आवरण करता है, उसके बाद उसकी गलत व्याख्या करता है। तभी तो अम्मा बताती हैं कि वह झूठा है। वह सत्य को आवृत्त करता है और अन्य किसी के सत्य होने का भ्रम हममें जनाता है।

“एक आदमी देहात के मार्ग से जा रहा था। अंधेरा छाने लगा था और धुंधलके में रास्ता टटोल-टटोल कर आगे बढ़ रहा था। अचानक कोई चीज़ उसके पाँव से लगी। उसने अपने हाथ से पाँव को छूकर देखा तो पाया कि एक छोटी चोट लगी थी। खून रिस रहा था। उसकी बगल की झाड़ में एक साँप कुंडलीमार पड़ा दिखाई दिया। बस, वह सन्न हो गया। मन ने तय कर लिया कि साँप ने उसे डँस लिया है। घबराहट के मारे वह आदमी ऊँची आवाज़ में चीखने लगा - ‘मैं मर रहा हूँ। कोई आए और मुझे डॉक्टर के पास ले चले।’ आदमी एकदम विक्षुब्ध था, वह चिल्लाता रहा। उसका सिर चकरा रहा था। मानो अब उसके प्राण निकल जाएँगे। वह ज़मीन पर बैठ गया और मदद के लिए पुकारता रहा। अंधेरे से एक सज्जन आए। उनके हाथ में एक बत्ती थी। उन्होंने पूछा - ‘मामला क्या है, हुआ क्या?’ वह आदमी बोला - ‘मुझे एक ज़हरीले साँप ने काटा है। मैं मर रहा हूँ। क्या आप मुझे एक डॉक्टर के पास ले चलेंगे?’ उस सज्जन ने कहा - ‘फिक्क मत करो। मैं तुम्हारी ज़रूर मदद करूँगा। पहले बताओ कि किस ज़गह पर यह घटना हुई।’ आदमी ने कहा - ‘यहीं पर। उधर झाड़ी में देखो, वहाँ एक साँप है।’ उस व्यक्ति ने उस तरफ बत्ती का प्रकाश बिखेरा तो क्या देखा? एक

कंटीली झाड़ी में एक रस्सी उलझी हुई थी। उसने कहा, 'गौर से देखो! वह कंटीली झाड़ी है। एक काँटा तुम्हारे पाँव में चुभा होगा। तुमने धुंधलक में उस वक्त रस्सी देखी और उसे साँप समझ लिया। बस, तुम्हें यकीन हो गया कि साँप ने काटा है। अब तुम सत्य समझ गए हो तो मन को शान्त कर लो।' जब वह आदमी सत्य पहचान गया तब बेहोशी और थकान के सारे निशान दूर हो गए और वह शान्त हो गया।

"हमारा मन इसी तरह हमसे चाल चलता है। ऊपर बताए उदाहरण में मन पहले तो रस्सी की सच्चाई को छिपाता है और फिर उसपर साँप को आरोपित करता है। साँप हमारा अतीत है। मन सतत रूप से एकमात्र यही करता रहता है। आत्मा आवृत्त रहती है। उसकी जगह पर अनेकता का संसार प्रकट होता है। आत्मा आवृत्त रहती है और हमारे विचार उस पर चढ़ाए जाते हैं। जब एक यथार्थ गुरु तुम्हें यथार्थ के प्रकाश में ले चलते हैं, तभी यह भ्रम दूर होता है। तब तुम सत्य को पहचानकर शान्ति पाते हो। यथार्थ जागरण होने पर ही यह संभव है। तब तक सत्य अस्पष्ट रहेगा।"

जागो और समझो

थोड़ी देर के बाद ब्रह्मचारी वेणु ने एक प्रश्न किया - "अम्मा, अम्मा ने अभी जिस जागरण की बात बताई वह तथा साक्षीभाव की स्थिति क्या ये दोनों अभिन्न हैं या भिन्न हैं?"

अम्मा - "बेटे, दोनों एक ही हैं। जागरण एवं साक्षीभाव की स्थिति दोनों के लिए सचेत रहना आवश्यक है। यथार्थ आध्यात्मिकता का अर्थ पूर्ण सचेतता है। बहुत से लोग सचेत नहीं रहते, वे अज्ञान के लोक में जीते हैं क्योंकि उन्हें उसी प्रकार जीना सिखाया गया है।

"बच्चा पूर्ण सचेत अवस्था में जन्म लेता है। किंतु समाज उसे अचेत रहने की शिक्षा देता है। चारों तरफ के लोग, माँ-बाप, मित्र, भाई-बहन, समाज सब विभिन्न आदतें सिखाते हैं। वे उसे एक विशेष धर्म में दीक्षित

करते हैं, एक खास संस्कृति, भाषा, भोजन, शिक्षा और अभ्यास - सब देते हैं, एक सांचे में ढालते हैं। वह पूर्णतः आवरण से ढका जाता है और स्वरूप को पूर्णतः भुला देता है। अपने स्वस्वरूप में स्थित होने की बात को छोड़ शेष सब बातें उसे सिखाई जाती हैं। यों वच्चा बढ़ते-बढ़ते अचेत होता है। उसपर थोपे गए सभी बातों से उसकी चेतना धुंधला जाती है। उसकी निश्छलता एवं पवित्रता नष्ट होती है। उसे ज्ञान रहने की शिक्षा कभी नहीं दी जाती।

“सचेत होने के लिए शान्त रहना ज़रूरी है। अगर तुम मन का बन्धन तोड़ने का उपाय नहीं सीखोगे तो विश्राम नहीं मिल सकता। हमारे ऋषि-मुनियों और महात्माओं ने अपने जीवन के उदाहरण से हमें मन, विचार तथा उनके द्वारा सृजित बंधन को नष्ट करने का तंत्र सिखाया है।”

वेणु ने बीच में दखल दिया और भावुकता से टिप्पणी की - “अम्मा, अतीत में बहुत दूर जाने की ज़रूरत क्या है? आप स्वयं हमें सही रास्ता दिखा रही हैं।”

उस टिप्पणी पर ध्यान दिए बिना अम्मा ने बातें जारी रखीं।

“तुम ज़िन्दगी में जो कुछ होना चाहो सीख लो। साथ ही सारी परिस्थितियों में पूर्ण सचेत रहने का तंत्र भी सीखो। एक बार तुम यह कला सीख गए तो तुम्हारे चारों ओर होनेवाली सब घटनाओं को तुम अलिप्त होकर साक्षीभाव से देख सकोगे।

“मान लो तुम्हारे भीतर क्रोध उमड़ आता है। पहले उसकी उपस्थिति को पहचानो, जानो कि तुम्हारे अन्दर क्रोध उठ रहा है। जब तुम उसके बारे में सचेत हो और उसे स्पष्ट देख सकते हो तब ऐसी मानसिक स्थिति में कैसे लीन रह सकते हो? क्रोध सर्वनाशकारी है। सचेत रहते हुए कोई ऐसी स्थिति में प्रवेश नहीं करेगा। क्रोध हर व्यक्ति और हर वस्तु को प्रदूषित व विषाक्त करता है। क्रोध व मन के अन्य सभी विकार नकारात्मक व नाशकारी हैं। वे अनजाने ही उठते हैं। यदि तुम सचेत हो, पूर्णतः सजग और सदा सावधान हो तो वे तुम पर कोई असर नहीं डाल सकते। इसी तरह जब कोई संवेदना तुम्हारे मन को छोड़ जाती है तब भी सचेत

हो देख लो। अब तो सब कुछ हमारी जानकारी के बिना ही घटता है। हम अपने सभी विचारों व संवेदनाओं में बह जाते हैं, मानो हम भीतर ही भीतर गहरी नींद सो रहे हों।

“साक्षीभाव अभ्यास हो सकता है, स्थायी स्थिति भी। जब तुम उस दशा में स्थायी रूप से स्थित हो जाते हो तब वह स्वतःस्फूर्त और तुम्हारे लिए पूर्णतः सहज होगा। उस स्थिति में अतीत के निर्मित स्वप्न की कोई जगह नहीं है। अतीत को नष्ट होना होगा। अगर तुम सदा सजग न हो तो साक्षीभाव नहीं होगा। मन को नष्ट होना होगा ताकि साक्षीभाव संभव हो सके।

“बच्चो, तुम्हारा स्वरूप आकाश जैसा है, न कि मेघ जैसा। तुम्हारा स्वरूप समुद्र का सा है, न कि लहर जैसा। आकाश शुद्ध चैतन्य है। समुद्र शुद्ध चैतन्य है। आकाश बादलों को साक्षी सा देखता है। बादल आकाश नहीं हैं। लहरें समुद्र नहीं हैं। बादल व लहरें आती व जाती हैं। आकाश और समुद्र बादलों और तरंगों के अस्तित्व के आधार हैं, वे बने रहते हैं। बादलों और लहरों की अपना कोई अस्तित्व नहीं है, वे झूठे हैं और नित् बदलते रहते हैं। आकाश और समुद्र की तरह साक्षी आधार होता है। सब कुछ उस साक्षीभाव की स्थिति के भीतर घटित होता है। किंतु साक्षी उससे प्रभावित नहीं होता। साक्षी शुद्ध और अस्पृष्ट रहता है।

“मन और उसके विचार आते व जाते हैं। वे झूठे और अस्थायी हैं। वे आकाश के नश्वर मेघों तथा समुद्र की लहरों के समान होते हैं। वे तुम्हारी चेतना को छू नहीं सकते। उपरी परत के नीचे तुम्हारी चेतना शुद्ध व अस्पृष्ट रहती है। वह शुद्ध चेतना, जोकि सभी घटनाओं को जानती है, गवाह है, हर चीज़ का साक्षी है।

“साक्षीभाव में स्थित रहने का अर्थ सदा सचेत रहना है। पूर्ण सजग न रहोगे तो साक्षीभाव अनुभव नहीं होगा।”

भक्तों में से एक भक्त ने कहा - “श्रीललिता अष्टोत्तरशत नामावलि में कहा है कि देवी जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति की तीनों अवस्थाओं की

साक्षी हैं, 'जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तीनां साक्षिभूत्यै नमः'।"

भक्त ने हाथ जोड़कर कहा - "अम्मा, हम विश्वास करते हैं कि आप ही श्रीललिता परमेश्वरी, सर्वसाक्षी हैं जो मन की तीनों अवस्थाओं की, साक्षी हैं।"

अम्मा एक गीत गाने लगीं - 'उयिरायि ओलियायि'

भावार्थ -

हे देवी उमा!

पृथ्वी के प्राण, ज्योति और शक्ति!

आप कहाँ हैं?

पवन, समुद्र, अग्नि, आदि रूपों में वास करती देवी

क्या मैं तुम्हारी दया की पात्र नहीं?

आप ही परमज्ञान हैं

आपकी अनुपस्थिति में

विश्व का सारा ज्ञान लुप्त हो गया है।

जन्म मरण के फेरों का कोई अन्त नहीं है

मिथ्या ही सत्य हो गया है,

अधर्म बढ़ता ही जा रहा है

मन का मर्कट हाथ में

दम्भ का फल लिए सदा भटक रहा है

अपने स्वरूप का चिंतन किए बिना

वह यमराज का ग्रास हो जाता है।

भजन गाने के बाद अम्मा ध्यानलीन हो गई। स्वस्वरूप में लीन वह शान्त, निश्चल बैठी थीं। वे पूर्णतः निःसंग दिखाई दे रहीं थीं। अभी

अम्मा ने चेतना के उच्चतम भाव की जो व्याख्या दी उसने स्पष्टतः अम्मा का सत्य स्वरूप और बाह्य जगत के बीच का महीन पर्दा हटा दिया था। अम्मा ने कहा है - "इस संसार में, तुम लोगों के बीच रहने के लिए एक महीन पर्दा रचा गया है। जो भी हो, अम्मा जिस क्षण हटाना चाहती हैं, उस क्षण यह पर्दा हटाया जा सकता है।"

अम्मा की उपस्थिति में बैठे उनका निरीक्षण करते हुए व्यक्ति को कभी कभी उनका व्यक्तित्वविहीन पहलू भी अनुभव होता है। ऐसी विशेष घड़ी में व्यक्ति को अम्मा की सर्वोच्च स्थिति की झांकी मिल सकती है। ज्योत्स्नारंजित समुद्रतट पर टकराती लहरों से अपार सागर की और अनन्त प्रकाशमान नक्षत्रों से भरे अनन्त आकाश की पृष्ठभूमि में अम्मा अपनी दिव्य आध्यात्मिक चैतन्य की स्थिति में एक अज्ञेय रहस्य लग रही थीं। पूरा वातावरण आध्यात्मिक ऊर्जा से सिक्त था। हर एक के अन्तःकरण में असामान्य शान्ति का उदय हो रहा था। वे आनन्दपूर्ण क्षण थे। इस प्रकार लगभग पन्द्रह मिनट बीत गए। यद्यपि समुद्र से बड़ी ठण्डी हवा बह रही थी, तो भी किसी ने एक इंच तक हटने की बात नहीं सोची।

करीब बारह बज गए थे। अम्मा के शरीर में हल्की सी कंपन हुई, कुछ समय बाद वे अपनी सामान्य बाह्य चेतना में लौटीं।

कुछ मछुवारे रात की उस वीरान घड़ी में होने वाली बातों को देखने के लिए अपनी झोपड़ियों से बाहर आए। उनमें से कुछ लोग हमारे दल में शामिल भी हुए।

आसक्ति रोग है

अम्मा शीघ्र फिर से बोलने लगीं। उन्होंने कहा - "मानव की दो बड़ी समस्याएँ हैं। जब इच्छा की पूर्ति न हो तब पहली समस्या उठती है। दूसरी समस्या अजीब है क्योंकि वह तभी उठती है जब इच्छा पूरी हो जाती है।"

प्रश्न - "अम्मा, यह बात अजीब लगती है। जब अपनी वांछित वस्तु

मिल जाए तब समस्या क्यों उठे?"

अम्मा - "बेटे, बड़ी सीधी सी बात है। जब कभी तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हों तब वही समस्याओं का सिलसिला खड़ा कर देंगी। इसका कारण प्राप्त वस्तुओं में आसक्ति है। वांछित वस्तु पाने के पश्चात् तुम उस वस्तु की सुरक्षा के प्रयत्न में लगते हो। अपनापन का बोध बढ़ता ही रहेगा। तुम्हें अपनी इच्छित वस्तु मिले या न मिले, मन बड़ा चंचल होता है। प्राप्त वस्तु की क्षेम की चिंता में तुम्हारे मन की शान्ति नष्ट हो जाएगी। तो असली समस्या आसक्ति है जो समस्यात्मक मन के कारण होती है। आसक्ति रोग है। अगर व्यक्ति में आसक्ति बहुत बढ़ जाए तो पागलपन तक होने की संभावना है। तुम संसार में किसी वस्तु पर आसक्त रहते हुए साथ ही मानसिक शान्ति का अनुभव नहीं कर सकते। कारण यह कि आसक्ति मन में तनाव उत्पन्न करती है और उसके फलस्वरूप मानसिक व्यथा होती है। जब तुम किसी पर अधिक आसक्त हो तब उस आसक्ति से उत्पन्न उत्तेजना और व्यग्रता विचार-प्रक्रिया में वेग लाती हैं और मन की उलझन को तीव्र कर देती हैं। ऐसा दबाव पड़ता है कि मन पर नियंत्रण संभव नहीं रह जाता। तुम्हें पता नहीं चलता कि किस दिशा में मुड़ना है, सारी स्पष्टता नष्ट हो जाती है। तुम्हारा मन तूफान के बाद के वन जैसा हो जाता है। अब तक तुम जीवन के अनुभवों को एक हद तक दूर से, तटस्थता से देख सकते थे। परंतु जब आसक्ति चरम तक पहुँच जाती है तब बोझ बहुत भारी हो जाता है और उस बोझ से निपटने का कोई उपाय दिखता नहीं है। जीवन पर तुम्हारी पकड़ खो जाती है। तनहाई और निराशा से ग्रस्त तुम मन का शिकार हो जाते हो। तुम अपनी चिंताओं में गर्क हो जाओगे। वे तुम पर हावी होकर तुम्हें निगल जाएँगी। तुम मन से और उसकी नकारात्मक भावनाओं से एकरूप हो जाते हो। तुम्हारे भावनाओं के बंध टूटते हैं और तुम मन के गहन अंधकार में गिर जाते हो। ऐसे में पागलपन तक होने की संभावना होती है। आसक्ति हमें ऐसी स्थिति में ले जाती है।

"एक सज्जन पागलों के अस्पताल में अपने डॉक्टर मित्र से मिलने गए। डॉक्टर ने मित्र को अस्पताल घुमाया और मरीजों से मिलवाया।

एक कक्ष में एक सज्जन कुर्सी पर बैठे झूल रहे थे। वह बारंबार 'पम्पम, पम्पम, पम्पम' नाम दोहरा रहा था। मित्र ने डॉक्टर से पूछा - 'बेचारा! इसकी समस्या क्या है?' डॉक्टर ने बताया - 'पम्पम इसकी चहेती थी। उसने इसे धोखा दिया और दूसरे आदमी के साथ भाग गई और यह पागल हो गया।' आगंतुक ने लंबी आह भरी। वे आगे बढ़े। जब वे और किसी कक्ष के पास पहुँचे तब वहाँ दूसरा आदमी अपना सिर दीवार से पीट रहा था। वह भी वही नाम रट रहा था - 'पम्पम, पम्पम, पम्पम'। तब मित्र ने डॉक्टर से पूछा - 'यह आदमी कौन है? क्या पम्पम का इससे भी कोई नाता था?' डॉक्टर ने कहा - 'हाँ, इसी आदमी से पम्पम ने आखिर शादी की थी।'

अम्मा ने जब कहानी पूरी की तब सभी श्रोताओं का ठहाका गूँज उठा। रात की नीरवता में एक धड़ाका सा लगा। धीरे से आवाज़ धीमी हुई और सागर की ध्वनि में लीन हो चली। रात को करीब साढ़े बारह बजे अम्मा उठीं और अपने बच्चों के साथ आश्रम को वापस आ गईं। बड़ी प्यारी रात थी। शिष्यों के हृदयों में उन अविस्मरणीय घटनाओं ने गहरा प्रभाव डाला। ये मनन के लिए अमूल्य घटनाएँ थीं। यथार्थ गुरु के साथ जीवन बिताना बड़ा अनुग्रह है। यह सब से दुर्लभ व अमूल्य आशीर्वाद है जिसे मानव पा सके। ये क्षण शिष्य के मन में तीव्र प्रेम और अभिलाषा की अनन्त लहरें उठाएँगे। वे अन्त में गहरी चेतना में निमग्न होने की प्रेरणा देंगे। उसके ज़रिए शिष्य आध्यात्मिक आनन्द की ऊँचाइयों तक पहुँचेंगे। अम्मा जैसे महान सद्गुरु के साथ जो रहते हैं, वे सचमुच धन्य हैं।

जब अम्मा कहती हैं - 'चिंता मत करो'

एक भक्त कह रहे थे - 'जब अम्मा कहती हैं, चिंता मत करो तब चिंता करने का कोई कारण नहीं रहता, समस्या का हल किसी न किसी तरह निकल आएगा।'

कई भक्तों का यह अनुभव है। यह टिप्पणी करनेवाले सज्जन उस

दिन संपूर्ण परिवार सहित अम्मा के दर्शन करने और उनका अनुग्रह पाने के लिए आए थे। उनके यों कहने का एक विशेष कारण भी था।

डेढ़ वर्ष पहले उस भक्त की बेटी का विवाह एक धार्मिक युवक से हुआ था। आरंभिक वैवाहिक जीवन आनन्दपूर्ण था। विवाह के कुछ महीने बाद डॉक्टरी परीक्षण करवाने पर पता लगा कि युवती को गर्भाशय का कैंसर है। यह सूचना पाकर पूरा परिवार चौंक उठा। वह उस समय गर्भवती थी। पांचवाँ महीना चल रहा था। डॉक्टरों की राय थी कि वह कुछ गंभीर व जटिल मामला है। कोख में ट्यूमर था जो संक्रामक माना गया। ऑपरेशन कर उसे निकालना था। डॉक्टरों को ऑपरेशन के परिणाम के विषय में भी आशंका थी। उनको विश्वास नहीं था कि बच्चा ज़िन्दा बचेगा। माँ की जान को भी खतरा था। डॉक्टरों ने उस युवती के माता-पिता से स्पष्ट कह दिया कि ईश्वर ही उनकी बेटी और बच्चे को बचा सकते हैं। दुःखित और चिंतित माता-पिता उनके एकमात्र आशार्केंद्र अम्मा के पास पहुँचे। उन्होंने अपनी बेटी पर आए संकट के बारे में अम्मा को बताया और उनकी कृपा की प्रार्थना की। पूरा परिवार १९८१ से, जब उन्होंने अम्मा के प्रथम दर्शन किए, अम्मा के बड़े भक्त थे। जब कभी कोई समस्या होती तब वे सदा अम्मा की कृपा तथा मार्गदर्शन के लिए उनके पास आते थे।

अम्मा ने उनकी बात ध्यान से सुनी। उन्होंने उनकी बेटी के लिए बड़ी चिंता व्यक्त की। अम्मा ने उनसे कहा - "चिंता मत करो, अम्मा तुम्हारी बेटी व बच्चे की समस्या दूर कर देगी।" उन्हें अम्मा पर पूर्ण भरोसा था। अम्मा के कहने के पश्चात वे चिंतित नहीं रहे, यद्यपि चार मास बाद उस युवती का ऑपरेशन कराना पड़ा। अम्मा पर उनका विश्वास शत-प्रतिशत ठीक निकला। ऑपरेशन किया गया। बच्चे को कोख से निकाला गया। डॉक्टर यह देखकर दंग रह गए कि माँ व बच्चे दोनों सही सलामत थे। डॉक्टरों ने उसकी कोख से चार पौंड वजन का ट्यूमर निकाला। डॉक्टरों की तब भी शंका थी कि कोई उलझन हो सकती है, परंतु कोई जटिलता नहीं आई। सब कुछ बड़े आराम से चला। माँ व बच्चा दोनों तंदुरुस्त रहे।

अम्मा अपने कमरे से बाहर आई तो अम्मा के दर्शनार्थ अधीरता से खड़ा वह परिवार तेज़ी से उनकी ओर बढ़ा। उन्होंने अम्मा को साष्टांग दण्डवत किया और नवजात शिशु को उनके चरणों में रखा। कृतज्ञता के आँसू बहाते हुए बच्चे की माँ ने कहा - "अम्मा, यह बच्चा आपके ही अनुग्रह के कारण पैदा हुआ है।" अम्मा ने बच्चे को उठा लिया और खिलाने लगीं। अम्मा ने कहा - "अरे तूने अपनी माँ को जन्म देने के लिए कितनी तकलीफ दी!"

अम्मा जीने की सीढ़ी पर बैठ गई। शीघ्र ही आश्रमवासियों ने उन्हें घेर लिया। बच्चा ध्यानपूर्वक अम्मा के मुखमंडल को टुकुर-टुकुर देख रहा था। उसका रंग सांवला था। इसलिए अम्मा ने उसे पुकारा - 'कुरुम्बा' (श्याम)। अम्मा ने आगे कहा - "तुम अम्मा की तरह सांवले हो। क्या तुम अपनी माँ की तरह गोरा होना चाहते हो?" बच्चा तुरंत रो पड़ा। अम्मा ने कहा - "लगता है अम्मा का श्याम पुकारना उसे पसंद नहीं आया।" बच्चे के नाना भावाभिभूत खड़े थे। उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने बात का खुलासा किया - "अम्मा, जब आपने उसे श्याम पुकारा तब वह बहुत खुश था। वह यह सुनकर खुश था कि अम्मा सा श्यामवर्ण है। मगर जब आपने पूछा कि क्या वह अपनी माँ की तरह गोरा होना चाहता है तब उसे पसंद नहीं आया। वह उस पर विरोध प्रकट कर रहा है। तभी वह रो रहा है।"

इस मधुर टिप्पणी से सभी प्रसन्न हुए। वे इसे सराहते हुए हँस पड़े। अम्मा भी उनके हँसी में शामिल हुई। उन्होंने बच्चे को माँ के पास लौटा दिया।

तपस्या की आवश्यकता

अम्मा ने बगल में बैठे आश्रमवासियों की तरफ मुड़कर कहा - "जन्म के लिए कठोर तपस्या ज़रूरी है। एक बच्चे के जन्म की बात ही लो, माता गर्भकाल में अक्षरशः तपस करती है। उसे अपने हर क्रियाकलाप में सावधान रहना पड़ता है। काम करने, लेटने का ढंग, चलने तक में

सावधानी बरतनी पड़ती है। वह कुछ चुनी हुई चीजें खा नहीं सकती। हृद से ज्यादा परिश्रम करके वह अपने को थका नहीं सकती। तनाव या घबराहट लानेवाली परिस्थितियों से उसे बचकर रहना पड़ता है। चिंतित होना या किसी मामले पर सिर खपाना उसके हित में नहीं है। डॉक्टर के दिए निर्देश अगर माँ पालती है, तभी वह एक स्वस्थ व प्रतिभाशाली बच्चे को जन्म दे सकती है। यदि वह कोई भूल करे तो बच्चे को हानि हो सकती है। गर्भिणी माता अपने गर्भ में पलते बच्चे के बारे में निरंतर सोचती रहती है। वह उस बच्चे की बात क्षणभर भी भुला नहीं सकती। इसी तरह हमें भी हममें होनेवाले आध्यात्मिक जन्म के प्रति अपनी ही प्रतिबद्धता होनी चाहिए। यह प्रतिबद्धता 'तप' कहलाती है। किसी के भी जन्म लेने, चाहे राष्ट्र का हो, चाहे व्यापार का, चाहे संस्था का, अत्यधिक तप की आवश्यकता होती है। तप से ही कोई व्यक्ति अपने चुने हुए क्षेत्र के शिखर पर पहुँच सकता है, वह क्षेत्र कोई भी हो। चाहे तुम आध्यात्मिक व्यक्ति हो, चाहे मुख्यतः भौतिकवादी हो, यदि तुम अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करना चाहते हो तो तपस्या अनिवार्य है।

"आध्यात्मिक सिद्धि की खोज का मतलब है मरना और दोबारा जन्म लेना। अहंकार के मरने पर ही तुम सचमुच पुनर्जन्म पा सकते हो। प्रत्येक जन्म-प्रक्रिया की तरह तुम्हें गहरी तपस्या करनी पड़ेगी। किसी भी रूप में तपस्या अनिवार्य है। वांछित वस्तुलाभ के लिए तुम्हें वह पीड़ा झेलनी ही पड़ेगी। आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अधिक तप ज़रूरी है। आध्यात्मिक लक्ष्य और अन्य अभिलाषाओं का अन्तर केवल तप की मात्रा में है। आत्मसाक्षात्कार प्राप्य सर्वोच्च प्रकार का आनन्द है। अतएव उसके लिए तुम्हें उतनी बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ेगी।

"यह तो सामान्य विवेक की बात है। बाह्य संसार से हमें प्राप्त होने वाला आनन्द नश्वर है। वह चिरकाल तक नहीं रहता। एक क्षण में वह रहता है तो दूसरे क्षण में वह नष्ट भी हो जाता है। किंतु आध्यात्मिक आनन्द उस प्रकार का नहीं है। एक बार यह अन्तिम बंधन टूट जाए यानी, शरीर, मन व बुद्धि की सीमाओं को तुम पार कर गए तो फिर वापसी की बात नहीं उठती। वह आनन्द नित्य और अनन्त है। मगर

यह पाने के लिए तुम्हें उचित मूल्य चुकाना पड़ेगा। आंशिक त्याग पर्याप्त नहीं है, तुम्हें अपना सर्वस्व देना होगा। अपना पूरा जीवन देना पड़ेगा।

"तुम्हें कुछ भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए, उच्चतर पद पाने के लिए या नाम-प्रसिद्धि पाने के लिए बहुत कुछ न्योछावर करना पड़ता है। तुम्हें अध्ययन करना पड़ता है, उचित शिक्षा से प्रशिक्षण पाना होता है, जो भी योग्यताएँ आवश्यक हो, पाना पड़ेगा। अनेक लोग समाज में ऊँचा पद पाने या अधिक लाभदायक व्यापार पाने के लिए पारिवारिक जीवन का तक आनन्द निछावर करते हैं। उस लक्ष्य के लिए बहुत सारा समय एवं ऊर्जा केंद्रित करनी पड़ती है। तुम जितना अधिक आनन्द पाना चाहते हो, उतना ही परिश्रम ज़रूरी है, तदनुसार मूल्य चुकाना पड़ता है।

"भौतिक दृष्टि से तुम कितने ही बड़े हो जाओ, दर्द व तनाव बना रहेगा। वह खतम नहीं होता। मगर आध्यात्मिक क्षेत्र में, एक बार उच्चतम शिखर पर पहुँच गए तो सारे दर्द व तनाव लुप्त हो जाते हैं। तुम पूर्णतः स्वतंत्र हो जाते हो, पूर्ण विश्राम पाते हो।

"यदि तुम अपने ही गाँव में रहते हुए, अपना छोटा सा कामकाज करते हुए परिवार के साथ रहने का आनन्द अनुभव करना चाहते हो तो वह भी ठीक है। उसमें कम तकलीफ रहेगी, कम समय और ऊर्जा व्यय होगी। तुम्हें जो कष्ट या पीड़ा झेलनी पड़ेगी वह तुलना में कम रहेगी। यदि तुममें महत्वाकांक्षा हो, तुम अधिक धन कमाना चाहते हो और इस धन-संपत्ति से तुम अधिक खुशी पाओगे ऐसा तुम्हारा विश्वास हो तो तुम्हें अधिक तप करना पड़ेगा। अगर तुम किसी विदेश में जैसे अमरीका में वैज्ञानिक बनना चाहते हो तो उसके लिए आवश्यक तपस्या की तीव्रता बढ़ेगी।

"अतः यदि एक व्यक्ति संसार में सब से खुश रहना चाहें तो सबसे उच्च आनन्द पाने का एकमात्र उपाय कठोर तप करते हुए आध्यात्मिक जीवन बिताना है, यह सीधी सी बात है। थोड़ी सी वस्तुओं के लिए एक घर, मोटर या ज़मीन का एक टुकड़ा पाने के लिए तुम्हें बहुत कुछ देना पड़ता है। उसमें बड़ा त्याग शामिल है। किंतु आत्मसाक्षात्कार संपूर्ण विश्व का स्वामी होने के समान है। पूरा संसार तुम्हारा, तुम्हारा सेवक

हो जाता है और तुम मालिक। अंदाज़ा लगा सकते हो कि संपूर्ण विश्व का मालिक होने के लिए, उतना धनी होने के लिए, हमेशा के लिए आनन्दित होने के लिए कितना तप करना पड़ेगा?

"हाँ, बच्चो, वह एक नया जन्म है। यथार्थतः आध्यात्मिक होने के लिए तुम्हें फिर से जन्म लेना पड़ेगा। तुम्हारे मरने पर ही यथार्थ 'तुम' का जन्म होगा।

"बीज का ऊपरी छिलका जब नष्ट होता है तभी अंकुर फूटता है। क्रमशः वह छायादार वृक्ष बनता है, फलफूलों के ढेर देता है। इसी प्रकार बाहरी छिलका, मन और अहं को नष्ट होना चाहिए ताकि हम आत्मा के रूप में विकसित हो सकें।

"जैसे एक माँ बच्चे को जन्म देने के लिए प्रसव-पीड़ा सहने के लिए तैयार है वैसे ही एक यथार्थ साधक को तप की पीड़ा, बड़े कष्ट सहन करने के लिए सचेतता से तैयार होना चाहिए। तभी वह एक दिव्य, सुन्दर एवं सुगंधी पुष्प के रूप में खिल उठेगा। कली फूल होने के लिए अपने को खोलती है। जब कली विकसित होना चाहती है तब कुछ दर्द होता है। इस स्थिति में तुम्हारा हृदय कली की तरह है। तुम्हारे हृदय के खिलने के लिए, विकसित होने के लिए तप की व्यथा और ताप अनिवार्य हैं। तपस का शब्दार्थ है ऊष्मा। तप से उत्पन्न ऊष्णता, उससे उत्पन्न पीड़ा व त्वरा ही मन को विचारों समेत समूल जलाकर राख कर सकती है। उसकी वासनाएँ तथा अहंकार को नष्ट कर सकती हैं। खिलने की प्रक्रिया व्यथा से भरी है किंतु एक बार खिल गया तो हृदय के दिव्य पुष्प का सौन्दर्य व मोहकता अवर्णनीय एवं शाश्वत है।

नौसिखिया बनो

प्रश्न - "यह विकास पाने के लिए सबसे उत्तम मार्ग क्या है?"

अम्मा - "बेटे, क्या तुम हमेशा के लिए नौसिखिया रह सकते हो? यदि तुम एक नौसिखिये का निश्छल भाव बनाए रख सकते हो तो वही

विकास का सबसे उत्तम तरीका है।”

एक ब्रह्मचारी कह उठा - “नौसिखिया! उससे आपका क्या मतलब है, अम्मा?”

अम्मा - “बेटे, जब तुम अपने अज्ञान के बारे में जानते हो तभी तुम नौसिखिया का भाव बनाए रख सकते हो। नौसिखिया अज्ञानी है और उसे ज्ञात है कि वह अज्ञानी है। इसलिए वह ध्यान से सुनता है। वह खुले मन से बातों को स्वीकार करता है। एक बार तुममें यह भाव आ जाए कि मैं जानता हूँ तो उसके बाद तुम कुछ ध्यान से नहीं सुनते। सिर्फ बोलोगे। तुम्हारा मन व बुद्धि भरे रहते हैं। तुममें ज्ञान होने का भाव है तो आगे नौसिखिया नहीं बन सकते। वस्तुतः जानकार व्यक्ति अन्यो से अधिक अज्ञानी होता है क्योंकि वह पूर्णतया बन्द रहता है। कुछ स्वीकार करने की, कुछ जानने की क्षमता तक वह खो बैठता है। वह जानकार हो सकता है, पर उसे वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जानकार होने से यथार्थ ज्ञानी होना कुछ भिन्न है। ज्ञान के लिए खुलापन आवश्यक है, नौसिखिया का भाव आवश्यक है।

“नौसिखिया विनम्रता से नतमस्तक हो सकता है, स्वीकार सकता है और इसलिए यथार्थ ज्ञान उसमें प्रवाहित होता है। जानकार व्यक्ति जानकारी से भरा रहता है और उसमें घमंडी होने का रुझान रहता है। वह न तो विनम्र हो सकता है न ही सिर झुका सकता है। यथार्थ ज्ञान उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता, उसके मन में उसके लिए जगह नहीं रहती अतः ज्ञान बाहर छलक जाता है।

“एक महात्मा घने वन में रहते थे। एक दिन एक बड़े पंडित उनसे वन में मिलने आए। पंडित बड़ी जल्दी में थे और उन्होंने महात्मा से कहा - ‘महाराज, कृपया मुझे ध्यान के बारे में कुछ बताइए?’ महात्मा उसे देख मुस्कराए और बोले - ‘आपको इतनी जल्दी क्या है? बैठिए, आराम कीजिए, एक कप चाय पीजिए। उसके बाद हम इस विषय पर चर्चा करेंगे। काफी समय है।’ पंडित बड़े बेबस थे, वे बोले - ‘अभी क्यों नहीं बता सकते? मुझे ध्यान के बारे में कुछ बताइए।’ जो भी हो, महात्मा ने इस पर जोर दिया कि बातचीत के पहले पंडित को

बैठना, आराम करना और एक कप चाय पीना होगा। आखिर पंडित को राजी होना पड़ा। अपनी प्रकृति के कारण वे चैन से बैठ नहीं पाए। वे मन ही मन बात करते रहे। महात्मा अपने समय के अनुसार चला। उन्होंने चाय बनाई और पंडित के पास आए जो बड़ी अधीरता से इंतज़ार कर रहे थे। महात्मा ने पंडित के हाथ में प्याला और तश्तरी दी और प्याले में चाय उड़ेलने लगे। प्याला भर गया, छलकने लगी। फिर महात्मा ने चाय डालना बंद नहीं किया। पंडित चिल्ला उठे - 'यह क्या कर रहे हैं? प्याला भर गया है। बंद कीजिए।' महात्मा फिर भी उड़ेलते रहे। चाय प्याले से तश्तरी में भरी और धीरे से धरती पर टपकने लगी। पंडित ऊंची आवाज़ में चिल्लाए, 'अजी, क्या अंधे हो? क्या आप नहीं देखते कि प्याला भर गया है और आगे एक बूंद भी नहीं समाएगा?' महात्मा मुस्कुराए और उन्होंने चाय डालना बंद किया। वे बोले - 'तुम सही बात कही, प्याला भर गया है एवं उसमें आगे और एक बूंद तक नहीं डाला जा सकता। तो तुम्हें जानते हो कि भरे प्याला में एक बूंद तक अधिक नहीं डाल सकते। तो तुम्हारे भीतर इतनी अधिक जानकारी भरी है तो ध्यान पर मेरी कही बातों पर कैसे ध्यान दे पाओगे? वह असंभव है। पहले मन को खाली करो और उसके बाद मैं तुमसे बात करूंगा। जो भी हो, ध्यान अनुभव है, बातों से वह समझाया नहीं जा सकता। मन व विचारों से छूटने पर ही ध्यान संभव होगा।' "

अम्मा ने बात जारी रखी - "जानकार व्यक्ति या बुद्धिवादी व्यक्ति केवल बोलना जानते हैं। वे सुन नहीं सकते। जिसमें यह भाव है कि मैं नौसिखिया हूँ, मैं अज्ञानी हूँ, वही श्रद्धा व प्रेम से सुन सकेगा। अन्य सुन नहीं सकते। यदि तुम दो पंडितों की बातचीत सुनोगे तो पता लगेगा कि दोनों एक दूसरे की कही बातों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। परंतु तुम यह भी देखोगे कि एक आदमी के बोलते समय दूसरा चुप रहता है और दूसरे के बोलने पर पहला मौन है। तुम शायद सोचोगे कि वे दोनों एक दूसरे की बात ध्यान से सुन रहे हैं। असल में वे ऐसा नहीं करते। वे ध्यान से सुन नहीं सकते। एक व्यक्ति के बोलते समय बाह्य रूप से प्रथम व्यक्ति न बोले परंतु वह मन ही मन बोलता होगा। वह अपने

विचारों व व्याख्याओं को रूपायित कर रहा होता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रतीक्षा में रहता है कि दूसरा कब बोलना बंद करे और वह शुरू कर सके। दोनों के परस्पर वार्तालाप में कोई संबन्ध नहीं रहता। एक व्यक्ति 'अ' के बारे में बोलता होगा तो दूसरा 'क्ष' पर बोलेगा। दोनों में कोई ध्यान से नहीं सुनता, वे केवल बातचीत ही करना जानते हैं।"

श्रवण की कला

"अगर तुम अच्छे शिष्य बनना चाहते हो तो तुम्हें आस्था और प्रेम से भरा अच्छा श्रोता होना पड़ेगा। तुममें हमेशा नौसिखिया होने का भाव होना चाहिए ताकि तुम उचित ढंग से सुन सको। ऐसा प्रारम्भिक साधक पूर्णतः खुला और शिशु की तरह निश्छल होगा।"

प्रश्न - "अम्मा, मुझे तो लगता है कि अम्मा के बोलते समय मैं ध्यान से सुनता हूँ। आप जब बोलती हैं, तब मैं अपने आप से बात करने का अनुभव नहीं करता। क्या मैं ऐसा करता हूँ?"

अम्मा - "बेटे, अम्मा नहीं कहती कि तुम ध्यान से नहीं सुन रहे हो। तुम ध्यान से सुन रहे हो, मगर आंशिक रूप से। तुम मन से सुन रहे हो। तुम्हारा श्रवण विभक्त है, अविभक्त नहीं है।

"उदाहरणार्थ क्रिकेट या फुटबाल की प्रतियोगिता देखते लोगों की तरफ देखो। तुम पाओगे कि वे कभी-कभी अपने को ही भूल जाते हैं। जिस समय उनका प्रिय खिलाड़ी गेंदबाजी करता है या किक मारता है तब वे दर्शक भी अपने हाथ या पाँव अनजाने ही हिलारेंगे। कभी उनके चेहरे पर अजीब हावभाव देख सकोगे। वे खेल में सशरीर भाग ले रहे हैं। परंतु वे अपने को पूरा-पूरा नहीं भुलाते। उनका अपना अस्तित्व रहता है, वे खेल में डूबे रहते हैं, पर आंशिक रूप से ही।

"जब कोई निपुण गायक गायन प्रस्तुत करता है, तब श्रोता भी उसमें भागीदार हो जाते हैं, वे अपने सिर झुमाते और ताल बजाते हैं। किंतु ये भी आंशिक भागीदारी है, केवल भावनात्मक सहभाग है। तुम्हारा पूरा

अस्तित्व उसमें लीन नहीं होता।

“जब तुम कोई गीत सुनते हो तब तुम्हारी उपस्थिति वहाँ है जब कि यथार्थ सहभागिता में तुम पूर्णतः अनुपस्थित रहते हो, अपने को पूर्णतः भूल जाते हो। तुम्हारा पूर्ण अस्तित्व, शरीर का हर कोश मानो स्वीकार करने के लिए खुल जाता है और तुम पूर्ण रूप से ग्रहण करते हो, एक बूंद तक नष्ट होने नहीं देते। जब तुम अपने विचार या ध्यान के विषय को इस प्रकार ग्रहण करते हो तो तुम उससे अभिन्न हो जाते हो। ऐसी सहभागिता में तुम पूर्णतः अनुपस्थित रहते हो। मानो खिलाड़ी हाज़िर न हो, सिर्फ खेल हो। श्रोता न हो, केवल गीत हो।

“जब मीराबाई गाती और नाचती थीं तब उनका पूर्ण अस्तित्व गाता, नाचता था। वृन्दावन की गोपियाँ जब श्रीकृष्ण से मिलने के लिए आतुर थीं तब उनका पूरा अस्तित्व श्रीकृष्ण दर्शन के लिए तरसता था। वे अपने को भूल जाती थीं। वे कृष्णमय हो जाती थीं।

“तुम्हारा श्रवण तभी पूर्ण होता है जब तुम्हारा समग्र अस्तित्व शामिल होता है। तभी यथार्थ ज्ञान तुममें प्रवाहित होगा। जब तुम गुरु के वचन समग्रता से श्रवण करना सीख लोगे तब ‘तुम’ नहीं रहेगा। ऐसे श्रवण में तुम उपस्थित रह ही नहीं सकते, तुम्हारा मन या अहं उपस्थित नहीं रह सकता। तुम अपने गुरु से, अनन्त चेतना से एकरूप हो जाते हो और तुम सब कुछ बन जाते हो।

“एक बार श्रीकृष्ण और अर्जुन टहलने चले। आनन्द से वे टहलते रहे। बातों-बातों में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, ‘तुम कहते हो कि तुम्हें विश्वास है कि मैं भगवान हूँ। तो मेरे साथ चलो, आज मैं तुम्हें कुछ खास दिखाना चाहता हूँ।’ वे देहात से चल रहे थे। थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण रुके और उन्होंने एक खेत में अंगूर की बेल की ओर संकेत किया। उन्होंने पूछा - ‘तुम्हें वहाँ क्या दिख रहा है?’ अर्जुन ने कहा- ‘मैं अंगूर की बेल देख रहा हूँ। वहाँ अंगूर के गुच्छे हैं।’ प्रभु बोले - ‘अर्जुन, तुम्हें भ्रम हो गया है। न वह अंगूर की बेल है न वे अंगूर हैं। और ध्यान से देखो।’ तब अर्जुन ने और ध्यान से देखा तो वह चकित हो गया, वहाँ अंगूर की बेल नहीं थी, अंगूर के

गुच्छे भी नहीं थे। वहाँ तो श्रीकृष्ण के रूप से श्रीकृष्ण के अनन्त रूप लटके हुए थे।

“जब पूर्ण रूप से शामिल होते हो तो तुम सब कुछ बन जाते हो, तुम अखिल विश्व के साथ एकरूप हो जाते हो। तुम्हारे सामने एक नया लोक उद्घाटित होता है और तुम उसी स्थिति में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो जाते हो।”

शिष्यों के तीन प्रकार

शास्त्रों में तीन प्रकार के शिष्यों के बारे में कहा गया है। उत्तम शिष्य गुरु की बातों को अपने समग्र अस्तित्व से सुनता है। अगर गुरु उससे कहें - ‘तत्त्वमसि’ तो वह तुरंत ही उसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाता है। यह कैसे होता है? वह पूर्णतः सुनता है - उसका पूरा अस्तित्व उस श्रवण में भाग लेता है। वह अविभक्त आस्था एवं अहैतुक प्रेम से सुनता है। ऐसे शिष्य में अशमनीय ज्ञानपिपासा होती है इसलिए वह गुरु के वचनों का अक्षरशः पान कर लेता है या यों कहिए कि वह गुरु को ही पी जाता है। ‘तत्त्वमसि’ महावाक्य सीधे उसके हृदय में प्रवेश करता है और वह आत्मसाक्षात्कार कर लेता है।

“ऐसा शिष्य नौसिखिया का भाव रखता है, एक निश्छल नौसिखिया का भाव। उसने सारे वेद सीखे हों पर तब भी उसका भाव वही रहता है - एक प्रारम्भिक छात्र का, वह शिशु सा निश्छल रहता है। वह अत्यंत विनम्र होता है अतः यथार्थ ज्ञान उसमें स्वयमेव प्रवाहित होता है। जब तुम पूर्ण रूप से शामिल होना सीख लोगे, समस्त सृष्टि के सम्मुख विनय से नतमस्तक हो जाओगे तभी इस गहनतम ज्ञान को पा सकोगे।

“दूसरे प्रकार का शिष्य केवल आंशिक रूप से सुनता है। सत्य के साक्षात्कार में उसे कई अधिक समय लगता है। वह सुनता तो है, पर भावनात्मक रूप से, वह पूर्णतः नहीं सुनता। उसका ध्यान विभक्त रहता है, उसकी आस्था और प्रेम विभक्त रहते हैं। इसलिए गुरु को उसके साथ बड़े धीरज से काम लेना पड़ता है। ताकि वह पूर्णतः सुनना सीख ले।

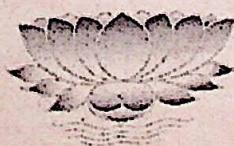
सब कुछ भूलने और पूर्णरूप से शामिल होने की कला अभी उसे नहीं आती। यथार्थ ज्ञान उसमें तभी प्रवेश करेगा जब गुरु के वचनों में उसका ध्यान इतना प्रगाढ़ हो कि वह स्वयं अपने को भी भूल जाए। शंकाएँ और चंचल मन उसे नौसिखिये का भाव अपनाने नहीं देता। कभी-कभी वह ऐसा करने में सफल होता है परंतु शीघ्र ही उसका मन पुनः प्रकट हो जाता है। मन उसको उसी स्थिति में रहने नहीं देता। जब मन दखल नहीं देता, प्रश्न नहीं पूछता तब ही पूर्ण श्रवण संभव हो सकेगा। तब तक शिष्य केवल आंशिक रूप से सुनेगा। किंतु यथार्थ गुरु, जो कि धीरज और करुणा के मूर्त रूप हैं, लक्ष्य तक पहुँचने में उसकी सहायता करेंगे।

“तीसरे प्रकार का शिष्य वह है जिसका बुद्धि की ओर रुझान होता है। उसके मन में इतनी सारी जानकारी भरी रहती है कि वह ध्यान से सुन ही नहीं पाता, मन ही मन वह बोलता ही रहता है। ऐसा शिष्य अत्यंत अहंकेन्द्रित रहता है। उसमें ‘मैं’ और ‘मेरा’ का भाव प्रबल होता है। ऐसे शिष्य को ज्ञान के प्रकाश में लाने के लिए गुरु को अनन्त धैर्य रखना पड़ता है। ऐसे शिष्य की श्रवण क्षमता अत्यल्प होती है चूँकि वह नौसिखिये का भाव बनाए रखने में सफल नहीं होता। यद्यपि गुरु उसे निरन्तर बारंबार बताते हैं, ‘तुम ईश्वर हो, तुम ईश्वर हो, तुम ब्रह्म हो, पूर्ण हो, ...।’ तथापि शिष्य मन ही मन निरन्तर प्रश्न करता रहेगा - ‘कैसे’ ‘क्यों’ ‘क्या’ ‘कब’ आदि। कारण यह कि उसकी बुद्धि अपने विचारों और पुस्तकों से अर्जित जानकारी से लदी रहती है। ऐसे शिष्य को सही पथ पर लाने के लिए गुरु को अत्याधिक क्षमाशील होना पड़ेगा। सद्गुरु अंत में शिष्य के अहं को तोड़ने के लिए यथार्थ ज्ञान का सुदर्शन चक्र काम में लाएँगे। वे शिष्य को अपने सीमित ज्ञान के भण्डार के भारी बोझ का अहसास करा कर उसकी बुद्धि को खाली करा देंगे। इसके बाद वे शिष्य के हृदय को यथार्थ ज्ञान और ईश्वर प्रेम व ज्योति से भर देंगे। यह बड़ा कठिन काम है जो एक यथार्थ सद्गुरु ही कर सकते हैं।

अम्मा एक ऐसे व्यक्ति का जीवंत उदाहरण हैं जो अपने सभी कार्य समग्रता से करती हैं, सभी कार्यों में उनकी पूर्ण उपस्थिति रहती है -

जब वे दर्शन देती हैं, जब भजन गाती हैं, आश्रम अंतेवासियों के साथ काम करती हैं, वर्तमान क्षण में अम्मा पूर्णतः उपस्थित रहती हैं। जब अम्मा अपने बच्चों को दर्शन देती हैं तब वे अपने आप को पूर्णतः अर्पित करती हैं और अपने आप को भूल जाती हैं। अम्मा अपने शरीर का तक बिलकुल ख्याल नहीं रखतीं, अपने शारीरिक सुख सुविधाओं पर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। वे अपने भक्तों के लिए सुलभ हैं, उनके सुख-दुःख में, उनके हार-जीत में सहभागी होती हैं। वे पूर्ण रूप से उपस्थित रहती हैं, उनमें अहं का लेशमात्र भी नहीं है, वे आलोचना नहीं करती, उनकी अपनी कोई राय नहीं होती।

वे पूर्णरूप से वर्तमान में ही रहती हैं। हम तो केवल उनके बाह्य रूप को ही देख पाते हैं, परंतु अम्मा वह बाह्य रूप नहीं हैं। वे शुद्ध चैतन्य हैं। उनकी उपस्थिति और सहभाग परिपूर्ण होते हैं और इसीलिए उनकी उपस्थिति अत्यंत प्रेरणादायक होती है। अम्मा कोई भी काम अनमना होकर नहीं कर सकती। यह पूर्णता ही अम्मा की उपस्थिति को हमारे जीवन में अविस्मरणीय बनाती है। यही संपूर्णता उनके हर आचरण को विशेष आकर्षण और लावण्य देती हैं। वह ध्यान बन जाता है। अम्मा का मन्दहास, उनके चलने का ढंग, उनकी आवाज़, उनका दृष्टिक्षेप, उनका स्पर्श और अम्मा जो कुछ करती हैं वह सब परिपूर्ण होता है, कारण यह कि अम्मा पूर्ण हैं, वे संपूर्णतः परिपूर्ण हैं।





अध्याय - ५

अम्मा कुछ दिनों के लिए कालीकट में थीं। राज्य के उस क्षेत्र में यह पहली यात्रा थी। वे एक भक्त के घर पर ठहरी थीं। प्रातःकालीन दर्शन उसी घर में संपन्न होते थे। अम्मा के दर्शन पाने के लिए प्रतिदिन भक्तों का प्रवाह लगा रहता था। अम्मा अपने कमरे में एक खाट पर बैठी थीं। कमरा काफी बड़ा था। भक्त एक-एक करके दर्शनार्थ अम्मा के पास आते थे। अम्मा का कमरा मकान की ऊपरी मंज़िल पर था। उसके बाहर लोग लम्बी कतार में खड़े थे, वे अपनी बारी की धीरज से प्रतीक्षा कर रहे थे। कतार घर के मुख्य द्वार से बाहर बढ़ती, सड़क तक जा रही थी। अम्मा के कमरे के भीतर कुछ लोग ध्यान कर रहे थे तो कुछ विस्मय से अम्मा की ओर देख रहे थे। ब्रह्मचारीगण भजन गा रहे थे। एक गायक ने अम्मा के बारे में अपने रचे गीत गाने की इच्छा प्रकट की। 'परवशमात्रेन हृदयं' गीत की टेक थी -

भावार्थ -

मेरा मन परवश है

असंख्य चिंताओं से आकुल है।

हे अम्मा! और विलंब न कीजिए

इस अनाथ की रक्षा कीजिए।

मैं असहाय हो गिर रहा हूँ

सागर की अथाह गहराइयों में।

अम्मा! आप युगों से हमारे लिए ज्ञात हैं।

क्या आप नहीं आएँगी, मेरे आंसू नहीं पोंछेंगी?

मेरे मन में उथल-पुथल मची है

चिंताओं की लहरें उठती-गिरती हैं।

मैं अग्नि सागर में तड़प रहा हूँ

कूल किनारा नहीं लग रहा है,

आपके चरण कमलों को देख नहीं पा रहा हूँ।

पराशक्ति के रूप में अम्मा के दर्शन

जब गीत समाप्त हो गया तब एक स्त्री दर्शन पाने के बीच एकाएक उठी और 'ॐ पराशक्त्यै नमः' मंत्र का उच्चारण करती नृत्य करने लगी। वह अपनी हथेलियाँ जोड़े हुए हाथ सिर के ऊपर उठाए हुए थी। उसकी आँखें बन्द थीं और गालों पर आँसू बह रहे थे। वह आनन्दमग्न लग रही थी। उसके मुख पर ध्यानलीन व्यक्ति की सी शान्ति और आनन्द था।

उस आनन्दावस्था में वह बोल उठी - "आज मैं धन्य हो गई हूँ। आपके पवित्र चरणों के स्पर्श से मैं अनुगृहीत व पावन हो गई हूँ। आज मैंने पराशक्ति के दर्शन किए हैं। अम्मा! मेरा साथ कभी न छोड़िए।" कुछ भक्त उस औरत को कमरे से ले चलने की कोशिश करने लगे। अम्मा ने उन्हें रोका और कहा, "नहीं, नहीं, सब ठीक है। वह आनन्द में है। उसे स्पर्श न करो। उसे गाने और नाचने दो।" अम्मा का आदेश पाकर भक्तों ने उस स्त्री को उठाकर ले जाने का विचार छोड़ दिया। वह कुछ देर गाती नाचती उसी प्रसन्न भाव में रही।

बाद में वह अपने अनुभव के बारे में कह रही थी, "जब मैं अम्मा के सामने दर्शन की प्रतीक्षा कर रही थी तब उन्होंने मेरी तरफ देखा और बड़े प्रेम से मुस्कुराई। एक आनन्दमय विद्युत तरंग सा मेरे शरीर में दौड़ा, मैं रोमांचित हो गई। शरीर की चेतना नष्ट होती सी प्रतीत हुई और मैंने अम्मा के चरणों पर साष्टांग प्रणाम किया। मैं प्रार्थना करने

लगी - "अम्मा, मायामोहिनी मेरी रक्षा कीजिए। अम्मा मुझे बचाइए। ओ पार्वती, शिव की अर्धांगिनी, मुझे शरण दीजिए।" अनन्त प्रेम व ममता से अम्मा ने मुझे समेट लिया, अपनी ओर बढ़ाकर मेरा सिर अपनी गोदी में रख लिया। उन्होंने मेरा सिर अपनी गोद से उठाया और मेरी भौंहों के बीच भ्रूमध्य में चंदन-लेपन किया। यह दिव्य स्पर्श दूसरा अत्यंत हर्षदायक अनुभव रहा। मेरी आँखें खुली रहीं। शून्याकाश का सा अनुभव था। मैं दिव्य अनुभूति में पूर्णतः मग्न थी। उसका अनुभव पूर्ण और स्पष्ट था। मुझे लगा कि मैं हवा में बह रही हूँ। पूर्णता के अनुभव में तिर रही हूँ। अपने सामने जो कुछ देखा वह अविश्वसनीय था। वह न स्वप्न था न भ्रम। मैं आप लोगों को जिस प्रकार देख रही हूँ उसी प्रकार सत्य था, स्पष्ट था।"

वह स्त्री भावावेश में थी। वह आगे कुछ बोल नहीं सकी, गला रुंधा था। उसकी आँखों में आँसू भरे थे और वह हर्षोन्माद में थी। एक श्रोता जो उसकी बातों का अंतिम भाग सुनना चाहता था पूछ बैठा - "कृपया मुझे बताइए कि आपने कैसा दृश्य देखा?"

उस स्त्री ने अपने भावावेश को किसी तरह संभाला और कहा, "मैंने अपनी आँखों के सामने देवी का सुन्दर और मोहक, दैदीप्यमान, गौरवशाली रूप देखा। वे पद्मासनस्थ थीं, सारे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित। अपने अनुभव का मैं शब्दों में बयान नहीं दे सकती। मेरा मन आनन्दविभोर था। केवल आनन्द था, आनन्द, आनन्द, आनन्द - मैं परमानन्द में डूबी जा रही थी।" अनुभव सुनाती उसकी आवाज़ भी आनन्द से ओतप्रोत लग रही थी।

कालीकट का चार दिनों का अनुभव अविस्मरणीय था। अम्मा का अनुग्रह पाने के लिए भक्तों का अन्तहीन प्रवाह रहता। सवेरे साढ़े नौ बजे प्रारंभ होता प्रभात दर्शन शाम को चार या साढ़े चार बजे ही समाप्त होता। संध्या का कार्यक्रम विभिन्न सार्वजनिक स्थानों पर होता था। सभी क्षेत्रों के लोग अम्मा से मिलने आते थे। बच्चे, वृद्ध, गरीब, अमीर, संन्यासी, बुद्धिवादी, छात्र, वकील, डॉक्टर, मजदूर, राजनीतिक और पत्रकार भी आते थे। प्रभात दर्शन के समय अम्मा के कमरे में रत्ती भर भी

जगह नहीं होती। भक्तों को अम्मा जिस ढंग से दर्शन देतीं वह अवर्णनीय है। जिस तरह कोई दर्पण में अपनी परछाई देखता है उसी तरह लोग अम्मा में अपनी यथार्थ प्रकृति, अपना ही स्वरूप देखते हैं। अम्मा उनकी अभिलाषाएँ भी पूरी कर देती हैं, अम्मा जानती हैं कि उनमें से प्रत्येक व्यक्ति क्या चाहता है। अम्मा अपने अक्षय भंडार से उन सब की माँगें पूरी करती हैं।

क्या वर्तमान संघर्षों के लिए धर्म उत्तरदायी है?

अम्मा की कालीकट यात्रा में एक पत्रकार उनके दर्शनार्थ आया था। अम्मा से उसका निम्नलिखित संवाद हुआ -

प्रश्न - "अम्मा, धर्म और अध्यात्म से आशा की जाती है कि वे जनता को उचित पथ पर मार्गदर्शन करें और उन्हें मानसिक शान्ति दें। धार्मिक और आध्यात्मिक लोगों को समाज एवं जनता के मध्य में समन्वय व एकता लानेवाले प्रेरक होना चाहिए, हैं न? किंतु लगता है वे ही समाज में बहुत सारी समस्याएँ, संघर्ष और विघटन लाते हैं। क्या आप इसकी कोई व्याख्या दे सकती हैं?"

अम्मा - "बेटे, समस्या धर्म या अध्यात्म में नहीं है, वह तो मानव-मन में है। सभी धर्मों के मुख्य सिद्धांत प्रेम, शान्ति और समन्वय सिखाते हैं। आध्यात्मिक गुरुओं ने कभी स्वार्थ नहीं सिखाया न ही वे लोगों को आपस में लड़ने की प्रेरणा देते हैं।

"वर्तमान युग में धर्म के नाम पर जो संघर्ष व समस्याएँ विद्यमान हैं वह धार्मिक सिद्धांतों को सही ढंग से न समझने के कारण हैं। आधुनिक युग के लोग अपने हृदय से बढ़कर बुद्धि से काम लेते हैं। मन संशयात्मक है, संदेहजनक है। वह स्वार्थ और दुष्टता का डेरा है। मन शंकाओं का घर है और बुद्धि अहं की बुनियाद। जब तुम मन और अहं में अधिक रहते हो तब तुम्हारी अकेली चिंता धन, यश और सत्ता पर केंद्रित रहती रहती है। तुम दूसरों के बारे में चिंतित नहीं रहते। तुम अपनी और अपने पद-प्रतिष्ठा की बात ही सोचते हो। तुम्हारे हृदय उदात्त भावों से

रिक्त रहता है। बुद्धि 'मैं और केवल मैं ही' पर केंद्रित रहती है। मन सभी तरह की शंकाओं, संदेहों और ममता-बन्धनों में तुम्हें व्यस्त रखता है। विश्वास, प्रेम और करुणा के अभाव में तुम्हारे भीतर, मन नरक का सृजन करता है।

"बुद्धिवादी व्याख्या, विश्लेषण करते हैं और लोग इन विकृत व्याख्याओं में विश्वास करके आपस में लड़ते-झगड़ते हैं। हमारे समाज में भी यही हो रहा है। हर धर्म में बुद्धिवादी रहते हैं और उनकी बातें सुनने व उनमें विश्वास करनेवाले भी होते हैं। वे वेदों की तथा धर्माचार्यों के उपदेश की व्याख्या करते हैं और सामान्य लोग उनके वाक्जंजाल में फँस जाते हैं और उन्हीं के बातों को सत्य मानकर वे आपस में संघर्ष करते हैं, लड़ाई करते हैं। बुद्धिवादी लोग नेता बन जाते हैं, पथप्रदर्शक बन जाते हैं, उपदेशक बन जाते हैं। उनके चेले उनको आदर्श मानते हैं और उन्हें ईश्वर सा समझते हैं। यथार्थतः परमात्मा को पूर्णतः भुला दिया जाता है। सत्य को एवं धर्म के सार तत्त्वों को पूर्णतः भुला दिया जाता है। धर्म एवं धार्मिक आचरणों के मुख्य ध्येय को अनदेखा कर दिया जाता है।

"दुर्भाग्यवश अधिकांश धर्मों का नेतृत्व बुद्धिवादी ही करते हैं। हृदय ही व्यक्ति को पथ दिखा सकता है परंतु हृदय को भुला दिया गया है। केवल सद्गुरु ही, जो हृदय में स्थित रहते हैं, धर्म के पथ पर प्रकाश डाल सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही लोगों को धर्म व धार्मिक तत्त्वों का यथार्थ संदेश समझा सकते हैं।

"कोई भी व्यक्ति जिसे यथार्थ धर्म का किंचित भी ज्ञान है, धर्म के नाम पर आजकल होनेवाली समस्याओं के लिए धर्म और यथार्थ धार्मिक आचार्यों को दोषी नहीं ठहरायेगा, उनकी निंदा नहीं करेगा। इसका दोष तथाकथित बुद्धिवादियों पर है न कि निरीह अनुयायियों का। पूरी जिम्मेदारी कपटी धर्माचार्यों की है, इन तथाकथित धर्ममार्तंडों की, क्योंकि वे ही लोगों को बहकाते हैं। वे अपने विचारों और दुरुद्देशों को अन्यो पर थोपना चाहते हैं। वे अपने ही विचारों व व्याख्याओं से भरे होते हैं और वे चाहते हैं कि दूसरे भी उनकी बात सुने। उनका अहं अपनी ओर ध्यान

आकर्षित करने को लालायित रहता है और मान-सम्मान के इस मोह में वे सरल जनता को भी बहका देते हैं।

“उनके निरीह अनुयायी उनके शब्दों तथा उनकी झूठी व्याख्याओं पर पूरी आस्था रखते हैं। हाँ, अहंकार मन से ज़्यादा सशक्त है। मन स्वभावेन दुर्बल है। अहं दृढ़ है जबकि मन हमेशा शंकालु, विचलनशील और चंचल रहता है। प्रायः धर्मों की ऐसी बौद्धिक व्याख्या करनेवालों को दूसरों को भी उनके दृष्टिकोण में विश्वास दिलाने की दृढ़ लालसा होती है। उनकी इस लालसा एवं उनके सशक्त अहंभाव के कारण वे आसानी से किसी भी धर्म के दुर्बल मन के अनुयायियों को अपने वश में कर लेते हैं और वे अनुयायी अन्ततः इनके विचारों और कपटी आदर्शों के लिए लड़ते-मरते हैं।

“ऐसे बुद्धिवादियों में न कोई आस्था होती है न ही करुणा या प्रेम। उनका तो एकमात्र मंत्र धन, सत्ता और प्रसिद्धि है। इसलिए धर्म और आध्यात्मिकता को या यथार्थ गुरुओं को आजकल की समस्याओं के लिए उत्तरदायी मत ठहराओ। आध्यात्मिकता या धर्म की कोई गलती नहीं है। समस्या मानव-मन की है।”

पत्रकार स्तब्ध रह गया। वह थोड़ी देर मौन रहा। उसके बाद उसने अगला प्रश्न किया।

धर्म और अध्यात्म

प्रश्न - “अम्मा, क्या अध्यात्म और धर्म दो भिन्न बातें हैं या एक ही हैं?”

अम्मा - आध्यात्मिकता धर्म का यथार्थ नाम है। धर्म बाह्य पक्ष है तो आध्यात्मिकता भीतरी। धर्म की तुलना किसी फल के बाहरी छिलके से हो सकती है और आध्यात्मिकता असली फल या उसका गूदा है। आध्यात्मिकता धर्म का वास्तविक सार है। दोनों एक ही हैं। तुम धर्म और आध्यात्मिकता में अन्तर नहीं कर सकते। किंतु बाहरी छिलके के

भीतर पैठने व असली सार के गहराई में प्रवेश करने के लिए सूझ-बूझ और विवेक आवश्यक हैं।

“लोग गलती से यह विश्वास कर बैठते हैं कि धर्म और आध्यात्मिकता दोनों भिन्न-भिन्न हैं। किंतु धर्म और आध्यात्मिकता शरीर और आत्मा की तरह परस्पर आश्रित हैं।

“यदि मन और बुद्धि (अहं) से मूल्यांकन किया जाए तो दोनों भिन्न-भिन्न दिखाई देंगे। अगर थोड़ी गहराई में जाएं तो पता चलेगा कि दोनों एक हैं। यदि यथार्थ धर्म और धार्मिक ग्रंथों की तुलना समुद्र के ऊपरी तल से की जाए तो आध्यात्मिकता जल के नीचे गहराई में पड़े मोती और अमूल्य निधियों के समान है। यथार्थ निधि भीतर गहराई में है।

“धर्म के बाह्य तत्त्व, धार्मिक ग्रंथ और शास्त्र बुद्धि को तृप्त करते हैं। आध्यात्मिकता जोकि धर्म का भीतरी तत्त्व है, यथार्थ सुख और मानसिक शान्ति देती है क्योंकि वह मन को शान्त बनाती है। खोज हमेशा बाहर से शुरू होती है परंतु उसका अन्त भीतर ही होता है। वेद, उपनिषद् और अन्य धर्मग्रंथों के अध्ययन के ज़रिए व्यक्ति एक हद तक बौद्धिक संतोष पा सकता है। परंतु बाह्य अध्ययन मात्र से अहं का पोषण होता है और मन पूर्ववत् उत्तेजित ही रहता है। फिर भी यह धीरे से बाहरी धर्म से आन्तरिक धर्म की ओर हमें मोड़ सकता है। जब बाहरी धर्म की खोज रुकती है तब हम अपने अन्दर की ओर मुड़ते हैं और यही आध्यात्मिकता है। बाहरी तत्त्व हमें कभी पूर्ण आनन्द नहीं दे सकता। एक न एक दिन हमें यथार्थ स्रोत की ओर मुड़ना ही पड़ेगा। बौद्धिक आनन्द कभी हमें यथार्थ आनन्द नहीं दे सकता। क्षणभर के लिए तुम मान भी लो, पर फिर से संदेह, प्रश्न और बहस शुरू होगी।

“मान लो तुम्हें एक नारियल मिलता है। तुमने पहले कभी नारियल नहीं देखा है। तुम जानते हो कि वह बहुत स्वास्थ्यकारी भोज्य वस्तु है और उसका पानी प्यास बुझाने के लिए उत्तम है। नारियल ऊपर से हरा व मोहक दिखता है। तुम उसके बाहरी अंश को असली छिलका समझकर उसे दाँत से काटने लगते हो। परंतु कोई लाभ नहीं होता। वह छिलका इतना कड़ा होता है कि तुम्हारे जबड़े से खून रिसने लगता

है और दाँतों में दर्द होता है। तुम उसे फेंकने की सोच ही रहे होते हो कि एक राहगीर तुम्हारे असमंजस को देखता है और तुम्हें आकर बताता है - 'उसे मत फेंको, मीठा पानी भीतर है। उसे तोड़कर देखो तो मिलेगा।' वह आदमी चला जाता है। तुम किसी तरह नारियल का रेशे वाला बाहरी छिलका निकालते हो। अब तुम्हें रेशों का गुच्छा और कड़ा छिलका मिलते हैं। रेशे को फल समझकर उसे चबाने लगते हो। वह बाहरी छिलके की अपेक्षा नरम तो है, मगर उसका स्वाद विचित्र लगता है। भीतरी तह और कड़ी है। उसे काटने की बात ही नहीं उठती। तुम रेशे को थूक देते हो और निराशा में नारियल को फेंक देने की बात पुनः सोचते हो। इस वक्त और एक सज्जन आते हैं। वे तुम्हारी सारी परेशानियाँ देख रहे थे। वे तुम्हारे हाथ से नारियल लेकर उसे तोड़ते हैं। तुम उसका ताज़ा मीठा पानी पीते हो, गरी खाते हो और पूर्ण संतोष पाते हो। आखिर तुम्हारी प्यास बुझ जाती है और भूख भी शान्त हो जाती है।

"आध्यात्मिकता तथा धर्म के विषय में यही हुआ है। तुम बाहरी तत्त्व को भीतरी तत्त्व समझ बैठे हो। किंतु बाहरी तत्त्व भीतरी भाग का अंग है। दोनों एक दूसरे से अलगाए नहीं जा सकते। बाहर धर्म है, भीतर आध्यात्मिकता। इसे दूसरे ढंग से भी समझा सकते हैं। नारियल की बाहरी चमकदार शकल की तरह मानव शरीर सुन्दर दिखाई देता है। लोग शरीर को आत्मा समझ बैठते हैं। शरीर से एकदम संबद्ध होने के कारण वे अपना ध्यान उसी पर केंद्रित करते हैं। मानव को आत्मा को जानने के लिए शरीर के पार जाना पड़ेगा। शरीर के भी पार सूक्ष्म और जटिल मन रहता है। सही ज्ञान के अभाव में लोग समझ बैठते हैं कि मन ही आत्मा है। मन एवं उसके भ्रामक विचारों को तरना अधिक कठिन है। मन के भीतर और अधिक कठिन छिलका है, यह बुद्धि और अहं - 'मैं' और 'मेरा' के भाव का बना है। जब इसे भी पार करते हैं तभी यथार्थ फल की गरी तक - सार तक पहुँच पाते हैं। एक सद्गुरु ही तुम्हें जीवन के उस अन्तरतम रहस्य तक ले जा सकते हैं। अधिकतर लोग शरीर, मन अथवा अहं से तादात्म्य जोड़े रहते हैं। जब कोई भीतर

प्रवेश करके इन सतहों को पार करता है तभी वह आनन्द के यथार्थ धाम तक पहुँच सकता है, यथार्थ धर्म का सार यानी अध्यात्म पा सकता है। नारियल के बाहरी आकार की तरह धर्म का बाह्य सौन्दर्य व वैभव भी आकर्षक हो सकते हैं किंतु तुम्हें उससे कुछ मिलेगा नहीं, तुम धोखे में भी पड़ सकते हो। यदि तुम बाह्य परत से अधिक बंध गए तो पीड़ा और समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

"परंतु अधिकांश लोगों में सत्य को देखने की दृष्टि नहीं होती। वे सत् से अधिक असत् से आकर्षित होते हैं, अन्तःसत्ता से अधिक बाह्य प्रकटन से आकर्षित होते हैं। लोग अपने ही विचारों से जुड़े रहते हैं और इसे छोड़ अन्य कुछ ग्रहण करने की क्षमता तक नहीं रखते। धर्म के विषय में उनके अपने विचार होते हैं जो वास्तविक धर्म के विचारों के विपरीत होते हैं।

"पर्यटकों का एक दल देहात से गुजर रहा था कि उनकी बस खराब हो गई। वहाँ के निवासियों ने उन्हें कुछ खाने को दिया। मगर उन पर्यटकों को अनजान व्यंजनों से बना भोजन कुछ अजीब लगा। मन में तो यह ख्याल तक आया कि खाना बासा हो सकता है। यद्यपि वे बहुत भूखे थे तो भी खाने से हिचकिचा रहे थे। उसी वक्त एक कुत्ता उधर से गुजरा। पर्यटकों ने खाने का एक हिस्सा कुत्ते को दिया तो कुत्ते ने झट से उसे निगल लिया। वे कुत्ते की प्रतिक्रिया का निरीक्षण करते रहे। मगर कुत्ता मजे से खा रहा था। कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। दूसरे दिन सवेरे उन पर्यटकों ने सुना कि वह कुत्ता मर गया। उन्होंने उसका यही मतलब निकाला कि खाना ज़रूर खराब रहा होगा। पर्यटक चौंक उठे। कुछ क्षणों में उनमें से कई लोग एकाएक सख्त बीमार हो गए। भोजन से विषाक्तिकरण के लक्षण दिखने लगे। वे एक डॉक्टर के पास गये। पूरी वारदात की सूचना पाने के बाद डॉक्टर भी कुत्ते के बारे में जानकारी लेने लगे। वे उसके मौत के कारण की वस्तुस्थिति जानने के लिए निकले। उस मुहल्ले के एक व्यक्ति को स्थिति की जानकारी थी, उसने डॉक्टर से कहा, 'मैंने ही उस कुत्ते के शव को फेंका था, वह एक मोटर के नीचे दब कर मर गया था।'

“धर्म की सच्चाई भी उसके विषय में लोगों की धारणा से कई अलग होती है। सारे धर्मों के तथाकथित बौद्धिक नेताओं ने लोगों को अपने बनाए धर्मों के बारे में ही सिखाया है, उनके अपने विचारों के अनुसार बना एक धर्म। पर यथार्थ धर्म और उसके मूल तत्त्वों से उसका कोई संबंध नहीं होता। वे लोगों को धर्म के बाहरी तत्त्वों का अनुसरण कराके मूर्ख बनाते हैं, उन्हें कभी धर्म के आन्तरिक तत्त्वों से अवगत नहीं कराते। यदि सभी धर्मों की आन्तरिक एकता प्रकट हो जाए तो उनकी अपनी महत्ता एकदम नष्ट हो जाएगी और लोग उन पर ध्यान नहीं देंगे। इसलिए वे केवल बाहरी अन्तर को बढ़ा चढ़ा कर दिखाते हैं। अगर वे ऐसा न करें तो उनका अहं दूसरों के ध्यान एवं आराधना से वंचित हो जायेगा, भूखा रह जायेगा और यह उनके लिए असहनीय होता। इसके अलावा वे केवल अपनी बुद्धि से चिपके रहते हैं और अतः वे यथार्थ आध्यात्मिक तत्त्वों को पचा नहीं सकते। यदि उन्होंने स्वयं उन तत्त्वों को नहीं अपनाया है तो वे अन्यो को आध्यात्मिकता कैसे सिखा सकेंगे?

“एक बार लोग धर्म के भीतरी तत्त्व को समझ लें तो वे झूठे धार्मिक नेताओं का संग छोड़ देंगे। वे उनका मार्गदर्शन आगे नहीं लेंगे। उन्हें विदित होगा कि जो अहं पार कर चुके हों वे ही उन्हें जीवन के यथार्थ लक्ष्य का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

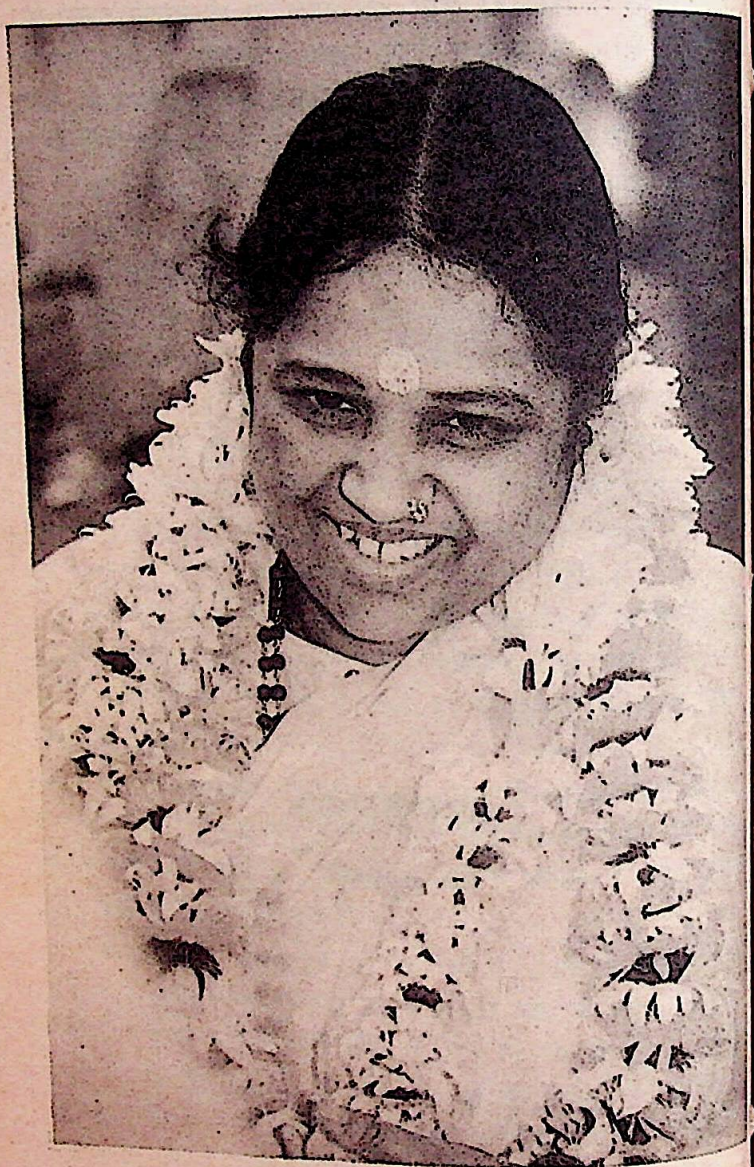
“विश्व के सारे धर्मों का सार आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिक सिद्धांतों से रहित धर्म मोम के बने नकली फल के समान होता है। ऐसा धर्म जीवन चेतना या शक्ति से रहित कृत्रिम अंग के समान है। वह गूदे से रहित फल का छिलका भर है।

“आध्यात्मिकता सारे धर्मों की बुनियाद है। यदि किसी धर्म की बुनियाद के रूप में आध्यात्मिक तत्त्व न हों तो वह धर्म बहुत दिनों तक टिक नहीं सकेगा। ऐसा धर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

“यह ब्रह्म के समान और भौतिक जगत के समान है। विश्व का ब्रह्म के अलावा अन्य कोई अस्तित्व नहीं है चूंकि ब्रह्म ही विश्व का आधार है। किंतु जगत के अभाव में भी ब्रह्म का अस्तित्व रहता है। उसी प्रकार धर्म आध्यात्मिकता के बिना नहीं रह सकता लेकिन आध्यात्मिकता

धर्म के बिना भी रहती है। शरीर और आत्मा से भी उसकी तुलना हो सकती है। शरीर के रहने के लिए आत्मा आवश्यक है किंतु आत्मा का कोई शरीर नहीं है। धर्म और आध्यात्मिकता तत्त्वतः अभिन्न हैं। यदि सही दृष्टि और विवेक से देखा जाए तो दोनों में कोई भेद नहीं है।"





अध्याय - ६

कृष्णभाव की समाप्ति

१८ अक्तूबर १९८३ को अम्मा ने घोषणा की कि वे कृष्णभाव में दर्शन देने का क्रम समाप्त करने वाली हैं। इस निश्चय ने अनेक कृष्ण भक्तों के मन में बड़ी व्यथा जनाई। अम्मा ने अपने ही कारणों से यह निश्चय किया। अम्मा ने कहा - "अम्मा कृष्णभाव के दौरान पूर्णतः निःसंग भाव में रहती हैं। उस समय अम्मा को किसी प्रकार की करुणा का अनुभव नहीं होता, करुणा का अभाव भी अनुभव नहीं होता। अम्मा अस्पृष्ट रहती है, न तो किसी से प्रभावित होती है, न ही किसी से लगाव होता है। सभी चेतना का खेल होता है। परंतु देवीभाव के दौरान अम्मा अपनी सभी संतानों के प्रति ममता रखती माँ हैं। अम्मा देवीभाव के दौरान प्रेम व करुणा को छोड़ और कुछ अनुभव नहीं करती।"

अम्मा ने स्वयं कई बार व्यक्त किया है कि वे बाह्य माँ एवं भीतरी माँ दोनों हैं। बाहरी माँ बड़ी करुणामय और प्रेमपूर्ण हैं जो अपने बच्चों का पूरा ध्यान रखती हैं। किंतु भीतरी माँ ऐसे भावों से परे हैं, अनन्त शून्याकाश की तरह। अम्मा कहती हैं - "अगर अम्मा चाहे तो उस परा अवस्था में, पूर्णतः अस्पृष्ट व असंग दशा में रह सकती हैं। परंतु वह स्थिति दुखी जनों और समाज के सुधार के लिए बिल्कुल उपयोगी नहीं है इसलिए अम्मा प्रेममयी व करुणामयी माँ का पहलू अपनाती हैं।"

कृष्णभाव समाप्त करने का अम्मा के निश्चय की खबर शीघ्र ही आश्रमवासियों एवं भक्तों के बीच फैल गई। वह अनेक भक्तों के लिए चौंकाने वाली सूचना थी। यद्यपि वे अम्मा के दिव्यभाव की घड़ियों में और दूसरे समय भी अम्मा की दिव्यता का अनुभव करते थे तो भी भक्त लोग अम्मा के कृष्णभाव व देवीभाव से बहुत ही घनिष्ठ हो चुके थे।

प्रारंभिक दिनों में अम्मा कृष्णभाव के दौरान विनोदप्रिय और शरारती हुआ करती थीं। वे कृष्ण की ही तरह व्यवहार किया करती थीं जिससे भक्तों को बड़ा हर्ष हुआ करता था।

एक महात्मा की दृष्टि में यह संसार एक आनन्ददायी नाटक है। वे पूर्णतः निस्संग होते हैं और संसार की बहुमुखी एवं परस्पर विरोधी प्रकृति से अप्रभावित भी होते हैं।

ऐसे नाटक की ज़रूरत ही क्या है? जब भगवान ही पूरी सृष्टि के नियमक हैं तो उनकी इस लीला का ध्येय क्या होगा?

अम्मा ने एक बार कहा, "परमात्मा ने लीला का आनन्द उठाने के लिए ही यह लीला रची है। वे सर्वनियंता एवं सर्वज्ञ हैं। परंतु लीला तभी लीला हो सकती है जब अधिकार प्रदर्शन के बिना की जाए, जब अधिकार भुला दिया जाए। जिस क्षण तुम अपना अधिकार दिखाओ उस क्षण खेल समाप्त हो जाता है, खेल खेल नहीं रहता।

"इसकी दूसरी व्याख्या यों है कि संसार के प्रति हमारी आसक्ति के कारण ही यह संसार यथार्थ प्रतीत होता है। आसक्ति संसार में सत्य की प्रतीति जनाती है जबकि निस्संगता उसे आनन्दमय लीला बना देती है। निस्संग दशा में अधिकार की भावना ही नहीं है। जब तुम अपनी आसक्ति त्याग देते हो तब तुम पहचानते हो कि सब कुछ एक नाटक है और तुम नाटक का आनन्द ले सकते हो।

"एक छोटा राजकुमार कुछ बच्चों के साथ राजमहल के क्रीडांगण में आँख-मिचौनी खेल रहा था। राजकुमार अपने दोस्तों को दूँढ़ने में व्यस्त था। वह खेल में पूरा-पूरा डूबा हुआ था। राजकुमार किसी को दूँढ़ न सका और इधर-उधर उनकी खोज में दौड़ रहा था, वह उन्हें देखने के लिए बड़ा उतावला था। एक बुजुर्ग ने राजकुमार को रोका और बोला - 'आप अपने दोस्तों का पता लगाने के लिए इतनी तकलीफ क्यों उठा रहे हो? आप आज्ञा दें तो वे स्वयं आपके सामने आ जाएँगे।' राजकुमार ने बुजुर्ग को सहानुभूति से देखा मानो उन्हें कुछ बीमारी हो और बोला - 'मगर ऐसा करने पर तो खेल समाप्त हो जाएगा, मज़ा

ही नहीं आयेगा।'

"कृष्णभाव के दौरान अम्मा पूर्णतः निस्संग रहती है। उस निःसंग दशा में सब कुछ लीला ही है। कृष्णभाव के दौरान कोई अधिकार नहीं जताया जाता, जबकि देवीभाव में अम्मा अपने अधिकार का उपयोग अपने बच्चों की रक्षा के लिए करती हैं।"

कृष्णभाव के दौरान अम्मा की विनोदशील स्वभाव भक्तों के मन में अम्मा के कृष्णरूप में बड़ी गहन लगाव पैदा करता था, यद्यपि उस समय अम्मा अत्यंत निस्संग रहती थीं।

कृष्णभाव की सबसे संतोषजनक घड़ियों में से एक वह थी जब अम्मा भक्तों को प्रसाद देतीं। वे अपनी हथेली से उनको पंचामृत पिलाती थीं। कभी-कभी कोई भक्त प्रसाद के लिए अपना मुंह खोलता, तो अम्मा विनोदपूर्वक अपना हाथ खींच लेती। कुछ भक्तों के साथ वे ऐसा कई बार करतीं, खासकर कृष्ण भक्तों के साथ।

कभी अम्मा कृष्णभाव में विनोदपूर्वक किसी भक्त के हाथों को बांधती थीं क्योंकि उस भक्त ने कोई भूल की होती, यद्यपि उसके बारे में अम्मा को उसने बताया नहीं होता। उस व्यक्ति ने शायद अपनी पत्नी से झगड़ा किया होता, या उसने अम्मा के निर्देशों का पालन नहीं किया होता। भक्त ने शायद उसके बारे में किसी से कुछ कहा न हो परंतु जब वह दर्शन के लिए आता अम्मा उसे पकड़ लेती थीं।

अम्मा के दर्शन पाने के उपरान्त एक युवक ने धूम्रपान छोड़ दिया। किंतु एक दिन धूम्रपान करनेवाले दोस्तों की संगति में उस युवक को भी सिगरेट पीने की अदम्य इच्छा हुई। उसने सिर्फ एक कश ली। परंतु कश लेने के बाद उसे पश्चात्ताप हुआ और उसने फिर कश नहीं ली। अगले कृष्णभाव में वह दर्शन करने आया तो अम्मा उसकी तरफ शरारती दृष्टि से देखती मुस्कुरा उठीं। उन्होंने अपनी मंझली और छोटी उंगलियाँ उठाईं मानो यों लगा, अम्मा ने हाथ में सिगरेट उठा ली है। वे उस कल्पित सिगरेट को अपने होंठों तक ले आईं। युवक बहुत शर्मिदा था और उसने अम्मा के सामने प्रतिज्ञा की कि वह आगे कभी सिगरेट नहीं पियेगा।

एक अन्य अवसर पर अम्मा ने अपनी दादी अचम्मा का मुँह एक कपड़े के टुकड़े से बाँध दिया क्योंकि अचम्मा बहुत बोलती थी। अन्य एक प्रसंग में अम्मा ने एक भक्त की आँखों पर पट्टी बांधी और उससे मंदिर की तीन बार परिक्रमा कराई क्योंकि वह बहुत फिल्म देखता था।

एक सरल वृद्ध भक्त थे। उनसे अम्मा कृष्णभाव में बहुत विनोद करती थीं। वे श्रीकृष्ण के परम भक्त थे और अम्मा के प्रति उनकी भक्ति गहन थी। अम्मा इस बाल हृदय वृद्ध से बाल सुलभ शरारत करते आनंद पाती थीं। उनकी आयु सत्तर वर्ष से अधिक थी। उन्हें कम दिखाई देता था। अपने चश्मे के बिना वे कुछ नहीं देख पाते थे। जब कभी वे अम्मा के दर्शनों के लिए आते तब अम्मा उनका चश्मा हटा लेतीं। अम्मा का ऐसा करते ही वृद्ध दिल खोलकर हँसते। जब तक अम्मा चश्मा न लौटातीं तब तक यह विनोद चलता। अपना चश्मा ठीक पहनने के बाद वे वृद्ध अम्मा की तरफ उनके दर्शनार्थ बढ़ते। अचानक फिर अम्मा उनका चश्मा आँखों से उठा लेतीं। कभी-कभी कई बार वह यह विनोद दुहरातीं। सरल वृद्ध हँसते रहते। कभी वे कहते - "हे कृष्ण, यह कैसा मज़ाक है? मैं आपको चश्मे के बिना कैसे देख सकूँगा?" इसके बाद वह कहता - "अच्छी बात है। आप चश्मा रख लीजिए। आप यह बाहरी चश्मा रखिए और अपनी इच्छानुसार बाहरी दृष्टि को धुंधला बना लीजिए। किंतु आप मेरे मनःचक्षु से ओझल नहीं हो सकते, मेरे हृदय से भाग नहीं सकते। आप उसमें हमेशा के लिए बंदी हैं।"

कभी कृष्णभाव के दौरान अम्मा उन वृद्ध को पंचामृत पिलातीं। तब वह उसे बिना रुके पिलाती ही जातीं। वे कभी 'बस' नहीं कहते। वह बराबर निगल जाते। अम्मा कभी उन्हें पूरा निगलने की फुरसत तक दिए बिना खिलातीं। जब अम्मा देखतीं कि उस भक्त का दम घुट रहा है और वह थक गया है तब वे बड़ा मधुर मंदहास करतीं। परंतु वह कभी रोकता ही नहीं था। जब अम्मा उसको पंचामृत पिलाना बंद करतीं तो वह भक्त निश्छल भाव से विरोध प्रकट करता - "क्यों आपने बंद कर दिया? मुझे पंचामृत बहुत पसंद है, मुझे और चाहिए। पूरा का पूरा मुझे दीजिए।" कभी वह कहता, "हे कृष्ण, क्या आप जानते हैं, मैं किसी

पंचामृत की मिठास से बढ़कर आपके हाथ की मिठास अधिक चाहता हूँ। इसलिए आपके खिलाते समय मैं इनकार नहीं कर पाता। हे भगवन! आपके हाथ बड़े मधुर हैं।" वह वृद्ध अम्मा के दर्शनों के लिए आते समय मधुराष्टकम् गाता था।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं
नयनं मधुरं हसित मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥

वचनं मधुरम् चरितं मधुरं
वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः
पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥

गीतं मधुरं पीतं मधुरं
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥

करणं मधुरं तरणं मधुरं
हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥

गुंजा मधुरा माला मधुरा
यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा
युक्तम् मधुरं भुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥

गोपा मधुरा गावो मधुरा
यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

प्रत्येक कृष्णभाव के अन्त में अम्मा जब आनन्दपूर्वक नर्तन करतीं तब ब्रह्मचारीगण एवं भक्त निम्नलिखित भजन गाते - कृष्णा कृष्णा राधेकृष्णा, राधे गोविन्द गोपी और श्याम सुन्दर, इत्यादि।

अम्मा का दिव्य कृष्णरूप अत्यंत मधुर व मोहक होता था। कृष्णभाव के अंत में वे मंदिर के द्वार पर आकर खड़ी होतीं। वे भक्तों की ओर देखतीं उन पर मंदहास करती, बड़ी देर तक खड़ी रहतीं। जब वे वहाँ

खड़ी रहती तब ब्रह्मचारी बड़े ऊँचे स्वर में कृष्ण भजन गाते। अम्मा तब धीरे से मंदिर से बाहर निकल कर बरामदे पर आ जातीं। वे अपनी बाहें ऊपर उठा, हाथों से दिव्य मुद्राएँ प्रदर्शन करतीं नर्तन करने लगतीं।

वह आनन्दनृत्य बड़े शान्त गति से किया जाता और दर्शकों के मन में प्रेम व भक्ति का संचार करता। वह नृत्य भक्तों को वृन्दावन ले चलता जहाँ श्रीकृष्ण गोपों और गोपियों के साथ रासलीला करते थे। भक्तों के लिए अम्मा, केरल के इस छोटे से मछुवारों के ग्राम में ठीक वही वातावरण और भावतरंग उत्पन्न करती थीं।

भक्तजनों को अम्मा के कृष्णभाव से अत्यंत लगाव था क्योंकि वही अम्मा का अभिव्यक्त प्रथम दिव्य भाव था। सभी के मन में कृष्णभाव की कितनी ही मधुर स्मृतियाँ थीं, भक्तों के लिए यह सब भुला देना कठिन था। उनकी आँखों में, चाल में उनकी मानसिक व्यथा दिखाई देती थी।

आश्रम में जहाँ कहीं कोई जाता लोगों के मुँह से कृष्णभाव के अपने अनुभवों के वर्णन सुनने को मिलते। पहले जिस वृद्ध की चर्चा की गई है वे अनेक कथाएँ कहते और निरंतर स्मरण कराते कि कैसे कृष्णभाव प्रारंभ हुआ और अम्मा समुद्रतट पर भावदर्शन देने लगीं। वे प्रारंभ में झेले हुए अम्मा के अपार कष्टों का बयान करते थे।

भक्तजन इतने व्याकुल हो उठे कि अधिकांश भावदर्शन के दिनों में रोने लगते। पहले तो कृष्णभाव के समय वे श्रीकृष्ण के कंधे को आँसुओं से सींचते और फिर देवीभाव के अंतर्गत वे देवी की गोद में पड़े रोते। वे अम्मा से प्रार्थना करते, विनती करते कि कृष्णभाव न रोकें। इसलिए आखिर अम्मा, महीने में एक दिन कृष्णभाव में दर्शन देने के लिए तैयार हुईं। अपने भक्तों के प्रति अथाह करुणा के कारण अम्मा उनकी प्रार्थना को आसानी से ठुकरा नहीं सकती थीं। किंतु अंत में कृष्णभाव को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। यह तभी हुआ जब अम्मा के भक्तों में आध्यात्मिक ज्ञान की वृद्धि हुई और वे समझ पाए कि चाहे अम्मा कृष्णभाव में हों या देवीभाव में - अम्मा एक ही हैं। उनकी अनन्त प्रकृति अधिक विस्तार से भक्तों पर प्रकट होती गई।

अम्मा के कृष्णभाव से अत्यंत लगाव रखने वाला एक भक्त ब्रह्मचारी बालु को अपना अनुभव बता रहा था, "हर दिन शाम को मैं (कृष्णभाव स्थित) अम्मा के चित्र के सामने एक गिलास गरम दूध रखा करता हूँ। एक दिन मेरी पत्नी और मैं भावदर्शनों के लिए जाने की जल्दी में थे। दूध ठण्डा करने के लिए फुरसत नहीं मिली। वल्लिकावु के लिए बस पकड़ने का वक्त हो गया था। मैंने घर के पूजाकक्ष में चित्र के सामने खौलता गरम-गरम दूध रखा और बस स्टॉप को दौड़ पड़ा। जब हम आश्रम पहुँचे तो कृष्णभाव प्रारंभ हो चुका था। हम दोनों अम्मा के पास गए। वे कृष्ण के दिव्यभाव में थीं। छोटे नटखट बच्चे की तरह कृष्ण हमें देखकर मुस्कुराए और बोल उठे - 'देखो! गरम दूध पीने से मेरे होंठ जल गए।' यकीन मानिए अम्मा के होंठों पर जलने का निशान था।" यह बात सुनाते समय उस भक्त की आँखों से आँसू बह रहे थे। उसकी आवाज़ रुंध गई। भावविभोर हो वह आगे कुछ बोल नहीं सका।

श्रीकृष्ण के वृन्दावन छोड़ने का सा दृश्य अम्मा के आश्रम में बन रहा था। किंतु अम्मा बता रही थीं, "कभी यह कृष्ण है तो कभी देवी है। दोनों हमेशा इस सनकी लड़की के भीतर हैं।" इस कथन में एक गहरा तत्त्व निहित है। जब अम्मा, जोकि कृष्ण और देवी दोनों हैं, हमारे बीच हैं तब हमें चिंता करने की ज़रूरत ही क्या है? अम्मा के विभिन्न रूप या भाव, पृथक् एवं भिन्न हस्तियाँ नहीं हैं वे सब एक ही सार्वलौकिक सत्ता की अभिव्यक्तियाँ हैं। और वह सर्वोच्च सत्य, अम्मा, जिनसे सारे नाम-रूपों का आविर्भाव होता है, यहाँ हमारे बीच हमारी रक्षा करने, मार्ग दिखाने के लिए हैं। इसलिए हमें चिंता नहीं करनी चाहिए।

किंतु भक्तों की निराशा और हानि की भावना अधिक दिनों तक नहीं बनी रही क्योंकि अम्मा के प्रति उनका लगाव इतना गहरा था कि अन्य बातें अधिक समय अपना प्रभाव नहीं डाल पातीं।

इस सब के बढ़कर, अम्मा ने स्वयं सभी को प्रत्यक्ष दिखाया था कि वे इन सभी देव रूपों से अभिन्न हैं और केवल इच्छामात्र से वे किसी भी समय उनमें से कोई भी भाव प्रकट कर सकती हैं। उदाहरणार्थ उस समय जब अम्मा महीने में केवल एक बार ही कृष्णभाव प्रकट करती थीं

तब एक दिन अम्मा, नीलू, बालू, वेणु और गायत्री, नीलू की कुटिया में बैठे थे। अम्मा और नीलू बातचीत कर रहे थे। नीलू ने एकाएक कहा - "अम्मा, आप मेरे लिए सर्वस्व हैं। आप कृष्ण, देवी और सारे देवी-देवता हैं। आप कृष्ण हैं, राधा भी और देवी भी। आप ब्रह्म हैं। फिर भी कभी-कभी अम्मा को कृष्णभाव में देखने की तीव्र इच्छा होती है।"

अम्मा ने नीलू को देख शरारतभरी मुस्कान फेरते हुए पूछा, "नीलू बेटे, क्या तुम सचमुच अम्मा को कृष्णभाव में देखना चाहते हो?"

नीलू ने उत्तर दिया, "हाँ, बड़ी इच्छा है।" और कोई शब्द कहे बिना अम्मा ने नीलू का सूती शाल ले लिया और अपने सिर पर पगड़ी सा बांधा। नीलू की तरफ देख अम्मा बोलीं, "देखो!" वहाँ जितने भी लोग उपस्थित थे वे अम्मा को कृष्णभाव में बैठे देखकर आश्चर्यचकित हो उठे। कृष्णभाव में वे जैसी मुद्राएँ दिखातीं - मुख पर जैसा भाव होता, ज्योतिर्मय नेत्र और मंदहास, सब वही थे। ब्रह्मचारी और गायत्री तुरंत उनके चरणों पर गिर पड़े। परंतु वह दिव्य दृश्य केवल कुछ क्षणों तक ही रहा और अम्मा ने नीलू से अपना वार्तालाप जारी रखा।

एक बार एक ब्रह्मचारी अम्मा को एक विशेष मुद्रा में देखना चाहता था। उसे उस रूप से खास लगाव था, वह अम्मा के उसी रूप पर ध्यान करता था। उसके पास अम्मा के कुछ चित्र थे। उनमें देवीभाव का एक चित्र एवं एक कृष्णभाव का चित्र था। उसे इन चित्रों से लगाव तो था परंतु वह चाहता था कि अम्मा का उसकी मनचाही मुद्रा में तस्वीर उसे मिले। अब तक ऐसा फोटो नहीं निकाला गया था। वह अम्मा को देवीभाव के 'पीठम्' पर श्वेत वस्त्रों में और जूड़ा बांधे, बिना मुकुट के देखना चाहता था। साथ ही वह चाहता था कि अम्मा अभय और वरद मुद्रायें भी प्रकट करें। किंतु वह अम्मा से कैसे कह सकता था कि उसकी इच्छानुसार अम्मा फोटो खिंचवाने के लिए खास मुद्रा प्रदर्शित करतीं, कहीं बैठें? उसने किसी से उसके बारे में कुछ नहीं कहा।

एक दिन उस ब्रह्मचारी से रहा नहीं गया। वह इसके बारे में सोचते हुए दुःखी होकर बड़ी देर तक रोया। अचानक अम्मा उसकी तरफ आईं। वे मुस्कुराईं और बोलीं, "बेटे, अम्मा को तुम्हारी इच्छा का पता है।"

अम्मा तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगी।" अम्मा ने उस ब्रह्मचारी से मंदिर में अपने साथ आने को कहा और मंदिर के भीतर गई। अम्मा देवीभाव 'पीठम्' पर उस ब्रह्मचारी की मनचाही मुद्रा में बैठीं।

जिस क्षण अम्मा देवीभाव के पीठम् पर बैठीं उसी क्षण उनका भाव ही बदल गया। वे यथार्थ देवी सी हो गईं। वही दिव्य मुद्राएँ प्रकट करने लगीं जो देवीभाव के दौरान प्रकट करतीं। ब्रह्मचारी श्रीकुमार ने एक फोटो ले लिया और उस ब्रह्मचारी की चिराभिलाषा पूरी हो गई। यहाँ ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि अम्मा किसी भी समय इच्छित रूप - कृष्ण का हो या देवी का या कोई भी दिव्य रूप धारण कर सकती हैं। यह किसी समय या स्थान तक सीमित भी नहीं है। जब कभी और जहाँ भी वे इस भाव को प्रकट करना चाहें, वही उसका योग्य समय और स्थान होता है।

आश्रम के प्रारंभिक दिनों में, वे ब्रह्मचारी जो आश्रम में रह रहे थे, वे अम्मा को एक विशेष 'पीठम्' पर, जो इसी एक कार्य के लिए बनाया गया था, आसीन कर श्रीललिता सहस्रनाम का पाठ करते थे। कभी-कभी अम्मा देवीभाव के पीठम् पर बैठना पसंद करती थीं। कई बार ब्रह्मचारियों की अभिलाषा पूरी करने के लिए श्रीललिता सहस्रनाम पाठ के समय अम्मा देवीभाव के पीठम् पर बैठतीं ही नहीं, देवी की वेश-भूषा और किरीट तक धारण करतीं। ब्रह्मचारी अम्मा के सामने अर्धवृत्ताकार में बैठ कर नामार्चन करते। इसमें डेढ़ से दो घण्टे तक लगते। पूरे पाठ के दौरान अम्मा समाधि में लीन रहतीं। उनका रूप बिल्कुल देवीभाव का सा रहता। ऐसे भी प्रसंग रहे जब जप और अर्चना के समाप्त होने पर भी अम्मा समाधि में ही लीन रहीं।

ऐसे अनेक प्रसंग थे जब अम्मा ने ईश्वर से अपना ऐक्य प्रकट किया और कभी अपने वचनों से भी उन्होंने यह स्पष्ट बताया। इन अभिव्यक्तियों एवं अन्य गहन अनुभवों से ब्रह्मचारियों और भक्तों को अम्मा की यथार्थ प्रकृति की झाँकी मिलती और इससे उनके आध्यात्मिक ज्ञान और समय में भी वृद्धि होती।

अंतिम कृष्णभाव दर्शन की रात अविस्मरणीय थी। भक्तजन, एक-एक

कर कृष्ण के दर्शन के लिए आते और अनिवार्यतः अश्रु बहाते रहे। उस रात को केवल कृष्ण भजन गाए गए। अंत में जब कृष्ण भजन समाप्त हो गए तब वे ऐसे देवी भजन गाने लगे जिनमें देवी दर्शन की व्याकुलता प्रकट थी, पर उन्होंने इन सभी भजनों को कृष्ण भजन में परिवर्तित कर दिया। ब्रह्मचारी वेणु, संपूर्ण कृष्णभाव के दौरान अश्रु बहा रहे थे। अंत में वे गा नहीं सके तो उठकर मंदिर के भीतर गए। अम्मा ने उसे अपने बगल में बिठाया।

उस रात को भक्तों ने जो भजन गाए उनमें से एक गीत उन भक्तों की मानसिक व्यथा का भाव बताएगा। वह गीत था - 'पोवुकयायो कण्णा' (कृष्ण क्या आप जा रहे हैं?)

भावार्थ -

हे कन्हैया, क्या जा रहें हैं आप
हर किसी ने दिया है मुझे छोड़
क्या आप भी मुझे ठुकरा रहे हैं?

हे कन्हैया!

मैं अपने हृदय के अन्तर में
तुम्हें एक मरतक रत्न सा
स्थापित करना चाहता हूँ
और प्रतिदिन पूजना चाहता हूँ।

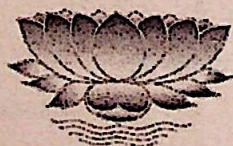
हे कन्हैया!

मैं नील सागर की गहराइयों से
जो कि आपका स्वरूप है-
प्रेम के मोती इकट्ठा करूँ

जब आप मेरे पास
 हर्षभरे पक्षी के रूप में आएँगे
 तब मेरे जीवन का विलाप करता पक्षी
 आप में लीन होना चाहेगा, ओ कन्हैया!

अम्मा का नियमित कृष्णभाव उस रात को समाप्त हुआ। किंतु जैसा कि पहले लिखा गया है, अम्मा अपने भक्तों के लिए प्रतिमास एक दिन कृष्णभाव में प्रकट करती थीं। यह नवम्बर १९८५ तक चला। कृष्णभाव का अंतिम दिन वही था।

हम यह अध्याय अम्मा के कुछ शब्दों का स्मरण करते हुए समाप्त करें - "भक्त अपनी आस्था के अनुसार इसे कृष्ण, देवी, शिव, माँ या गुरु पुकारते हैं। अम्मा इनमें से कुछ भी नहीं हैं परंतु अम्मा सब कुछ हैं। अम्मा उनसे परे भी कुछ हैं। पूरा विश्व उनके भीतर एक बुलबुले की तरह है।"



अध्याय - ७

आश्रम से चार किलोमीटर दूर रहनेवाले एक भक्त ने अम्मा को अपने घर पर निमंत्रित किया था और अम्मा जाने को मान गई थीं।

एक रात करीब दस बजे संध्या के कीर्तन के बाद अम्मा, कुछ ब्रह्मचारियों (बालु, श्रीकुमार, वेणु और राव) तथा दमयंती अम्मा, हर्षन, सतीश और पड़ोस की अन्य दो स्त्रियों को साथ लेकर समुद्र तट से होकर उस भक्त के घर की तरफ चल पड़ीं। बड़ी मनोहारी रात थी। आकाश में पूर्ण चंद्र विराजमान था, चांदनी में अरब सागर दमक रहा था। उसकी लहरें ॐकार के पवित्र नाद से प्रतिध्वनित हो रही थीं। बीच-बीच में बादल कुछ क्षणों के लिए चांद को ढक लेते और अचानक अंधेरा छाता। किंतु शीघ्र ही, धरती चांद की रजत ज्योति से प्रकाशमय हो उठती।

हमारा दल धीरे से दक्षिणी दिशा में बढ़ता गया। दाईं तरफ सागर था। यात्रा के प्रारंभ में सब मौन चलते रहे। आधा किलोमीटर आगे बढ़ने पर अम्मा एकाएक समुद्र के बिल्कुल पास गई जहाँ लहरें किनारे को चूम रही थीं। वे वहाँ पश्चिमी क्षितिज की तरफ अपलक दृष्टि से देखती खड़ी रहीं। लहरें उनके पावन चरणों को बारंबार धोती रहीं, मानों अम्मा के चले जाने से पूर्व वे जितनी बार हो सके उतनी बार अम्मा के श्रीचरण धोना चाहती हों।

समुद्र की तरह विशाल और गहरा

अम्मा के होंठों से कुछ शब्द निकले। वे बोलीं, "यह सागर विशाल तो है, साथ ही गहरा भी है। तुम इसके विस्तार को एक हृद् तक

देख सकते हो, अनुभव भी कर सकते हो किंतु इसकी गहराई अदृश्य है, दृष्टिगोचर नहीं है। उसे जानने के लिए उसमें गोता लगाना होगा। परंतु उन गहराइयों में गोता लगाने के लिए तुममें आत्मसमर्पण, धीरज और साहस होना चाहिए।”

इतना कहकर अम्मा मौन हो गई और सब पुनः दक्षिणी दिशा में चलने लगे। रास्ते में एक ब्रह्मचारी ने अम्मा से प्रश्न किया, “अम्मा, समुद्रतट पर खड़ी होकर आप जो बोलीं उसका मतलब क्या है?”

अम्मा ने उत्तर में कहा, “बच्चो, तुम एक महात्मा का प्रेम, करुणा, स्वार्थत्याग और अन्य दिव्य गुणों का अनुभव कर सकते हो। तुम एक महात्मा की सन्निधि में बड़ी मात्रा में इन गुणों का अनुभव कर सकते हो। उसकी तुलना समुद्र की विशालता देखने से की जा सकती है। तुम एक हद तक विशालता देख सकते हो, पर पूरा देख नहीं पाओगे। तुम उसकी झांकी पा सकोगे, एक छोटा सा खण्ड, मगर वह तो कुछ भी नहीं, किनारे से सागर को देखना तो कुछ भी नहीं है। यदि तुम उसका एक छोटा सा अंश भी देख लोगे तो उससे यह तो समझ सकते हो कि सागर असीम है।

“सागर गहरा है, विशाल भी। गहराई भीतर है और विस्तार बाहर। एक महात्मा का जो प्रेम और करुणा हम अनुभव करते हैं उसकी तुलना सागर के विस्तार से हो सकती है। महात्मा का प्रेम व करुणा बाहरी अभिव्यक्ति है जो भीतरी तत्त्व का स्पष्ट अनुभव देती है। लेकिन हममें बच्चों का सा निष्कपट भाव नहीं है, हम पूरी तरह खुल नहीं पाते इसलिए एक महात्मा हम पर जो प्रेम व करुणा करते हैं हम उसका आंशिक अनुभव ही करते हैं। हम महात्मा के आलौकिक गुणों का एक अंश ही अनुभव कर सकते हैं। परंतु जो भीतर है, अथाह गहराई है, सागर की गहराई जैसा है। वह हमारे लिए दृष्टिगोचर नहीं है। उस गहराई का अनुभव करने के लिए व्यक्ति को उपरी तल को भेद कर भीतर प्रवेश करना होगा। बाह्यतः प्रकट प्रेम के पार देखना होगा।

गोता लगाओ और गहराई को समझो

एक महात्मा का बाहरी रूप अवश्य सुन्दर और मोहक होता है। बाहरी पक्ष से संबन्ध जोड़ना अपेक्षाकृत सरल है, जबकि भीतरी संबन्ध उतना आसान नहीं है। उसकी तुलना तैरने और गोताखोरी से हो सकती है। समुद्र के ऊपरी तल पर तैरना बड़ा आनन्ददायक अनुभव है। किंतु गोताखोरी इससे कहीं अधिक गहन अनुभव हो सकता है। वह एक खोज है। जब तुम गोता लगाते हो तब बिलकुल भिन्न अनुभव तल में प्रवेश करते हो। तुम सागर के अज्ञात और अद्भुत प्रदेश में अन्वेषण करने लगते हो। इसके लिए ऊपरी तल पर तैरने से अधिक प्रयत्न ज़रूरी है। तुम जल में प्रवेश करते हो तो तुम्हें सांस रोकना पड़ता है, तुम्हें समर्पण करना पड़ता है। तैराक समुद्र को अपना समर्पण करता है। जब तुम समर्पण करते हो तब रत्नाकर तुम्हें अपने छिपे हुए खज़ाने दिखाता है। अभी तुमने बाहरी सुन्दर तल ही देखा है। तुमने कभी नहीं सोचा था कि आगे और भी सुन्दर स्थान खोजने लायक है। तुम ज्यों-ज्यों अधिक गहराई में पैठते हो त्यों-त्यों तुम अधिकाधिक देखना चाहोगे, तुम उसमें अधिकाधिक गहरे उतरना चाहोगे। तुम्हें अधिकाधिक जानने की तीव्र इच्छा होगी। यों तुम तब तक गहराई से गहराई में गोता लगाते हो जब तक तुम सागर की निचली सतह तक नहीं पहुँचते।

“इसी प्रकार एक महात्मा के प्रेम व करुणा का बाह्य प्रकटन अनुपम व सुन्दर है। इस धरती पर उसके समान कुछ भी नहीं। परंतु इससे भी कई अधिक है अन्तस्थ आत्मा का सौन्दर्य, उसका वर्णन शब्दों में किया नहीं जा सकता। उस अंतर्निहित सौन्दर्य का अनुभव करने, अगम्य गहराइयों के सौन्दर्य का अनुभव करने के लिए एक व्यक्ति को महात्मा के शरीर के पार भी देखना होगा, प्रेम व करुणा की ऊपरी अभिव्यक्ति के पार जाना होगा। उस अवर्णनीय तक पहुँचने के लिए व्यक्ति को अभिव्यक्तियों के सारे रूपों को पार करना होगा। ऊपरी सतह को भेदने, एवं महात्मा के बाह्य रूप एवं अभिव्यक्तियों के पार जाने के लिए उनके सम्मुख नतमस्तक होना होगा, पूर्ण विनय से उनके प्रति समर्पित होना आवश्यक है। यह सागर में गहरा गोता लेने के समान है। यदि तुम

पूर्णतः आत्मसमर्पण करो तो महात्मा अपनी भीतरी प्रकृति प्रकट करेंगे।

“महात्मा के प्रेम का वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता। बाहर से जो तुम प्यार देखते व अनुभव करते हो वह अवश्य गहरा व घनिष्ठ है किंतु उसकी गहराई और तीव्रता तो उनके वास्तविक स्वरूप का अंशभर है। उनका स्वरूप तो अनन्त है। जब कोई चीज़ अनन्त हो तब तुम उसके बारे में अनन्त रूप से लिख या पढ़ तो सकते हो परंतु उसकी कोई संतोषजनक व्याख्या नहीं हो सकती क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं है। वह सृष्टि से भी विशाल है।

“प्रेम व करुणा के मूर्तिमंत रूप होने के कारण महात्मा पृथ्वी जैसे क्षमाशील होते हैं। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि महात्मा का क्रोध भी उतना ही गहरा होता है जितना कि उनका प्रेम, करुणा एवं क्षमा होती है।”

अम्मा ने अपने वचनों को विराम दिया। रात के करीब ग्यारह बजे थे। कुछ मछुआरे समुद्र के किनारे टहल रहे थे तो दूसरे जहाँ तहाँ रेत पर लेटे सो रहे थे। चांदनी रात में मछुआरों का एक दल समुद्र तट पर बैठा बातचीत में मशगूल था। जिन क्षणों में चाँद को बादल ढक लेते थे उन क्षणों में उन लोगों की जलती बीड़ियों की नोक ही दीख पड़ती थी। घूमने वाले लोगों में कुछ लोग समुद्र तट से इस बेवक्त की घड़ी में चलते लोगों के छोटे दल को देखने नज़दीक आए। जब उन्होंने हमारे चेहरे पहचान लिए तो वे चुपचाप चले गए।

उनमें से एक व्यक्ति अम्मा का भक्त था। जब उसने पहचाना कि अम्मा और शिष्यगण यों पैदल जा रहे हैं तब वह बहुत ही भावावेश में आया। वह बोल उठा, “ओह! क्या अम्मा हैं? इस ढलती रात को आप कहाँ जा रहीं हैं?” वह अपनी पत्नी और बच्चों को झोपड़ी से बाहर पुकार ले आया, “आओ, आओ देखो कौन आए हैं?” उसकी पत्नी व बच्चे क्षणभर में बाहर आ गए। वे सब अम्मा को देख कर बड़े खुश हुए। उन्होंने अम्मा को अपनी झोपड़ी में पधारने का निमंत्रण दिया। अम्मा ने शिष्टता व प्रेम से उस निमंत्रण को अस्वीकार किया।

और कहा, "बच्चो, अभी बड़ी देर हो गई। हम लोग चलते भी धीरे हैं क्योंकि बीच में दार्शनिक बातों की चर्चा करते हैं तथा रास्ते में कुछ समय समुद्र तट पर खड़े भी रहे थे। अम्मा को अफसोस है। अगली बार कभी अम्मा आएगी।" अम्मा को ऐसे अनौपचारिक ढंग से निमंत्रित करने के कारण उस भक्त ने अपनी पत्नी को दुतकार दिया। उसने कहा, "यह क्या कर रही हो? क्या अम्मा को अपने घर पर निमंत्रण देने का तरीका यही है? अम्मा अपने व्यवहार व रीति में बड़ी सादगी रखती हैं तो भी हमें उन्हें परंपरागत रीति से ही निमंत्रण देना चाहिए। ऐसे निमंत्रण नहीं देते जैसे एक मामूली पड़ोसी या दोस्त को घर बुलाते हैं।"

वह औरत घबरा गई और विनम्र स्वर में बोली, "मैं अनपढ़ हूँ। मुझे रीति रिवाज़ नहीं मालूम। अम्मा यह जानती हैं और अगर मैंने गलती की है तो ज़रूर मुझे माफ करेंगी।"

अम्मा ने उसके पति की ओर मुड़कर कहा, "बेटे, ठीक है। जहाँ सच्चा प्यार है, वहाँ आचारों की ज़रूरत नहीं है। उसका निमंत्रण निश्छल था। प्रेम से बड़ा कोई आचार नहीं होता।"

अम्मा उस स्त्री की ओर मुड़ीं। उन्होंने उस स्त्री को गले लगाया और बोलीं, "बेटी, चिंता मत करो। अम्मा फुरसत पाने पर तुम्हारे घर पर अवश्य आएगी। मगर आज अम्मा नहीं आ सकती।"

अम्मा उनकी बच्चियों को प्यार करना भी नहीं भूलीं। जब अम्मा आगे जाने लगीं तब वह आदमी बोल उठा, "अम्माजी, क्या मैं भी साथ चलूँ?"

अम्मा ने उससे कहा, "हाँ, बेटे तुम भी आ सकते हो।" साफ कपड़ा तक पहनने की परवाह किए बिना वह आदमी अम्मा के पीछे हो लिया।

अम्मा और दल आगे बढ़ा। गरजता सागर और पश्चिम से चलती ठंडी हवा उनका साथ दे रहे थे। अम्मा सागर की तरफ देखते हुए कदम बढ़ा रही थीं। सागर चाँदनी रात में घनश्याम वर्ण का लग रहा था।

प्रलयाग्नि के समान

चलते चलते और एक प्रश्न पूछा गया - “अम्मा, आपने कहा कि महात्माओं का क्रोध उनकी क्षमा, प्रेम व करुणा की ही तरह गहरा होता है। इसका मतलब समझ में नहीं आया।”

अम्मा कुछ समय सागर की तरफ अपलक देखती रहीं और फिर उन्होंने उत्तर दिया, “बच्चो, महात्मा का क्रोध प्रलय जैसा है। प्रलय जैसा भयंकर है। महात्मा अनन्त से अभिन्न है अतः उनका क्रोध भी अनन्त है। उसकी तीव्रता की कल्पना भी तुम नहीं कर सकते। एक ही समय में कई अणुबम गिरने के समान हैं। उसकी लपटें सारे विश्व को निगल सकती हैं।

“जब जगज्जननी, जो प्रेम व करुणा की मूर्ति हैं एवं सभी जीवजालों को प्यार करती हैं, को क्रोध आया तब वे काली बन गईं। उनका क्रोध प्रलयाग्नि सा भीषण हो गया। यदि देवतागण बीच में न पड़ते तो पूरा विश्व मुट्ठी-भर राख में बदल जाता।

“जब जगज्जननी क्रुद्ध होती हैं तब वह दृश्य आँखों को चौंधिया देनेवाला होता है। एक ही समय में कोटि सूर्यों की ज्योति सा लगता है। इसे कौन सहन कर सकेगा? केवल वह सह सकता है जो अहंकारातीत हो गया हो, जो पूर्ण समर्पित हो। काली के क्रोध की अनन्त शक्ति का वहन केवल वही कर सकता है जो शरीर बोध को लौंघ चुका हो। जगज्जननी का क्रोध चेतना का तूफान कहा जा सकता है। उसका प्रतिसंतुलन पूर्ण निश्चल ऊर्जा से ही हो सकता है, केवल धराशायी शिव से ही हो सकता है। इसलिए जब काली अपना सारा क्रोध नृत्य में उतारती हैं तब वे निश्चल पड़े रहते हैं।

“काली का क्रोध रजोगुण की परिसीमा है। वह अपने संपूर्ण तेज व कांति में विश्वशक्ति का विस्फोट है। वह लाख अणु बमों के विस्फोट के समान है। यह उपमा तक अपर्याप्त है। इस ऊर्जा के विकास का प्रतिसंतुलन शुद्ध सात्त्विक ऊर्जा से ही हो सकता है। वही शिव है।

“जब सागर श्रीरामचन्द्र की प्रार्थना मानने के लिए तैयार नहीं हुआ

तब प्रभु कितने भीषण हो गए। समुद्र पार करने का उपाय पाने के लिए श्रीराम समुद्र तट पर बैठे तीन दिनों तक व्रत-पूजा, अनुष्ठान करते रहे ताकि सागर प्रसन्न हो जाए। किंतु सागर हठी था। वह भीषण लहरें उठाता पहले से अधिक दुर्द्धर्ष दिखाई दिया।

“श्रीराम तो साक्षात् भगवान थे, संपूर्ण सृष्टि के स्वामी थे। श्रीराम को अपनी ही सृष्टि के प्रति विनय करने की ज़रूरत नहीं थी, श्रीराम को सागर के सामने इतना विनम्र होने की आवश्यकता नहीं थी। किंतु उन्होंने विनय से व्यवहार किया क्योंकि वे अपने व्यवहार से एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे। जो भी हो, रामायण बताता है कि जब श्रीरामचंद्र प्रार्थना कर रहे थे तब समुद्र घमंडी हो गया और तब श्रीरामचंद्र बड़े क्रोध में आए, उन्होंने क्रोध को उनमें प्रकट होने का आदेश दिया। प्रभु ने धनुष लेकर उस पर बाण का संधान किया। वे उठे और बोले, ‘मैं प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए विनय और क्षमाशील रहने का प्रयत्न करता रहा। मगर उसे मेरी दुर्बलता मत समझो। अकेले बाण से तुम्हें सुखा सकता हूँ और तुम्हारे भीतर वर्तमान सभी जीवों को नष्ट कर सकता हूँ। क्या मैं यह करूँ या तुम मेरी बात मानने को तैयार हो?’ समुद्र मान गया और तरंगों को शान्त कर दिया।

“श्रीराम सर्वोच्च क्षमा और उदारता की मूर्ति थे। उन्होंने विमाता कैकेयी को तक क्षमा किया था, जिन्होंने उनके प्रति बड़ा निष्ठुर व्यवहार किया था। किंतु अब वे क्रुद्ध हो गए तो उनका क्रोध भी क्षमा जितना ही गहरा था। रामायण कहता है कि जब रामचंद्र अपने हाथों में धनुष व तीर लिए समुद्र पर तीर चलाने तैयार खड़े हो गए तब वे प्रलयकाल के मृत्युदेव जैसे दिखाई दे रहे थे।

मानव अस्तित्व का उच्चतम शिखर

अम्मा की बातें जारी थीं, “आत्मसाक्षात्कार मानव अस्तित्व का सर्वोच्च शृंग है। वही एकाग्रता का अंतिम बिन्दु है। इससे परे कुछ नहीं है। उस एकाग्रता की गहराई में बेधने की अवर्णनीय शक्ति है। आत्मसाक्षात्कार

पाई हुई आत्मा ने विश्व के गहनतम रहस्य को बेधने, अर्थात् ब्रह्मानुभूति प्राप्त करने के लिए एकाग्रता की इसी शक्ति का उपयोग किया है। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में वह ध्यान में निपुण होता है और पूर्ण एकाग्रता से वह जहाँ और जब कभी चाहे, अपनी ऊर्जा को केंद्रीकृत और नियुक्त कर सकता है। एक यथार्थ गुरु अपनी शक्ति को किसी विनाशकारी ध्येय के काम नहीं लाएँगे। वे उसका प्रयोग हमेशा विश्व की भलाई और समाज के उद्धार के लिए करेंगे। किंतु याद रखो कि वह पूरी मानव जाति को शिक्षा देने के लिए भी उसका उपयोग कर सकते हैं। आत्मसाक्षात्कारी गुरु वैश्विक ऊर्जा से अभिन्न हैं और वह ऊर्जा अनन्त है। वे अपनी इच्छानुसार जो भी करना चाहते हैं, कर सकते हैं। वे उस शक्ति का सकारात्मक या नकारात्मक ढंग से उपयोग कर सकते हैं। यदि बाह्य रूप से उनकी प्रवृत्ति निषेधात्मक लगे तो भी अन्ततः उससे संसार की भलाई ही होगी, वे किसी को शिक्षा देने के लिए ही ऐसा करते हैं।

“अतएव चाहे शक्ति विनियोग सकारात्मक हो या नकारात्मक उसका अभिप्रेत फल सिद्ध होगा। जैसे महात्मा के दिव्य प्रेम और करुणा शब्दातीत हैं, वैसे ही उनका क्रोध भी शब्दों से परे है। एक महात्मा की गहराइयों को मापा नहीं जा सकता।”

अम्मा के शब्दों से एक गीत याद आता है - ‘अनन्त सृष्टिवाहिनी’। यह भजन अम्मा के एक शिष्य ने अम्मा के अनन्त मानसिक भावों के विषय में रचा है।

अनंतसृष्टि वाहिनी अनंतभाव शालिनी
अनंतते नटेश्वरी महेश्वरी नमो नमः

गुरुस्वरूपिणी शिवे विरागमार्गदायिनी
मृदुस्मिताभशोभितास्य पंकजे नमो नमः

मनोमयी मनोन्मनी जगन्मयी सुधामयी

सतांगती सतांमती सदाशिवे नमो नमः

स्वर्ग मुक्तिदायिनी निसर्ग सर्ग कारिणी
चिरंतनी किरीटिनी प्रकाशिनी नमो नमः

प्रेमवर्षिणी महाघनाशिनी सुहासिनी
मूलमंत्र रूपिणी सरस्वती नमो नमः

श्रीकरी चिदंबरी शिवंकरी कृपाकरी
लयंकरी महेशि भद्रकालिके नमो नमः

चराचरात्मिके समस्तविश्वकारणी नमो
शिवात्मिके कलात्मिके भवात्मिके नमो नमः

निर्मले निराकुले निरंकुशे निरंजने
निर्गुणे गुणाश्रये निरामये नमो नमः

त्रिकोणगे त्रिलोचने त्रिशूलिनी कपालिनी
भवानि भाग्यदायिनि श्मशानवासिनी नमः

अखंडज्योति चंद्रिके अलंघ्यशक्ति शंकरी
समस्त योग मार्ग संप्रदायिके नमो नमः

चंडमुंड खंडनप्रचंड खंडिकारवे
निशुंभ शुंभ घातिनी भयंकरी नमो नमः

झनल् झनल् प्रघोष खड्ग चालिनी महाबले
प्रवर्द्धित प्रभावरौद्र चंडिके नमो नमः

ब्रह्मरूप शक्तिरूप सर्वरूप धारिणी
 परात्परे परेश्वरी महेश्वरी नमो नमः
 सत्य धर्म शान्ति प्रेम मूल्य संविधायिके
 नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त मंडले नमो नमः

अम्मा और दल उस भक्त के घर पर सवा ग्यारह बजे पहुँचे। पूरा परिवार अम्मा के आगमन की अधीरता से प्रतीक्षा कर रहा था। अम्मा के आने पर वे अत्यधिक आनन्दित हुए। परिवार के बुजुर्ग और उनकी पत्नी ने परंपरागत रीति से पाद्यपूजा व आरती उतारकर अम्मा का स्वागत किया। इसके बाद सबने अम्मा को साष्टांग प्रणाम किया। अम्मा ने उस घर के प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वाभाविक रीति में प्रेम और आशीर्वाद दिया। सभी प्रसन्न थे। उस परिवार का सबसे छोटा बच्चा, जो करीब चार साल का ही था, खुशी से नाच रहा था और ज़ोर से कह रहा था - "अम्मा आई हैं। हमारे घर पर अम्मा आई हैं।" अम्मा ने उस बालक को अपने पास बुलाया और चुमकारों की वर्षा की। अम्मा की चुमकार पाकर बच्चा और खुश नज़र आ रहा था।

आधी रात को पूजा प्रारंभ होकर दो बजे को समाप्त हुई। पूजा के बाद अम्मा बाहर चलीं और पिछवाड़े में समुद्र की तरफ देखती बैठीं रहीं। सारा अंतरिक्ष मौन था। सिर्फ सागर गर्जन की उँकार ध्वनि थी। श्वेत वस्त्र पहनी अम्मा, चाँदनी रात में बैठे-बैठे ही धीरे से झूम रही थीं।

जब अम्मा उधर बैठी, तब पूरा परिवार और आश्रम का भक्तदल थोड़ी सी दूरी पर बैठ गया। वहाँ से वे अम्मा को देख सकते थे। कोई अम्मा के बिल्कुल पास नहीं बैठना चाहते थे, उन्हें मालूम था कि अम्मा अपनी एकांत दुनिया में कई आनन्द में खोई हुई हैं।

करुणामयी अम्मा

वापसी की यात्रा ढाई बजे प्रारंभ हुई। यात्रा में बातचीत कम रही।

पर अम्मा कुछ भजन गाती चलीं। उनके साथ आए भक्त के घर पहुँचे तो वह विदा लेने अम्मा के पास गया। उसको आश्चर्यचकित करते हुए अम्मा उसके घर की तरफ मुड़ीं और बोलीं, "अम्मा तुम्हारे साथ आ रही है।" वह क्षणभर मूर्तिवत स्तब्ध रह गया। वह भावावेश में पूछ बैठ, "क्या! आप मेरे घर आ रहीं हैं?" तुरन्त वह तेज़ी से अपने घर की ओर दौड़ा। उसने दरवाज़ा ज़ोर-ज़ोर से खटखटाया, पत्नी व बच्चों के नाम पुकारता रहा। उसे मालूम नहीं हो रहा था कि वह क्या करे। वह अपने घर के ही सामने दाएँ-बाएँ दौड़ रहा था, बच्चों एवं पत्नी को बार-बार आवाज़ दे रहा था। क्षणों के भीतर पूरा परिवार जग गया। वे एकदम चौंक उठे। वे समझ नहीं सके कि वह ढलती रात में इतना शोर क्यों मचा रहा है। पत्नी ने एक ही सांस में पति पर सवाल की बौछार की। "आपको क्या हो गया है? क्यों इस प्रकार चिल्ला रहें हैं? क्या आप अम्माजी के साथ नहीं गए?" शोरगुल सुनकर पड़ोसी भी जग गया। उसने अपने घर के बरामदे से पूछा, "अरे भाई! क्या बात है? क्या मैं आऊँ?" तब तक अम्मा दालान पर पहुँच गई। भक्त की पत्नी ने जब अम्मा को अपने सामने मुस्कराते हुई खड़े देखा तो वह ताकती रह गई। बच्चे भी स्तब्ध रह गए। पहले तो वह स्त्री बोल तक नहीं सकी। क्षणभर बाद वह फूटफूट कर रो पड़ी और उसने अम्मा के कंधों पर अपना सिर टेका। वह आदमी तो अम्मा के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर लेटा, बच्चे की तरह सुबक रहा था। अम्मा ने उसे उठाया और उसका सिर अपने दूसरे कंधे पर रखा। अपने आँसुओं के बीच वह स्त्री किसी तरह बोली, "क्या मैं सपना देख रही हूँ, अम्माजी! हे भगवान! यह कैसी लीला है? आप अपनी वापसी में हमारे घर आने की बात कह सकती थीं। मैं सब कुछ तैयार करके आपकी राह देखती। अब घर में कुछ भी नहीं। दिया तक नहीं जलाया है। ओ अम्मा! आप यह कैसी लीला कर रहीं हैं।"

वह स्त्री अपना रुदन रोक नहीं पा रही थी। अम्मा ने उसे समझाने की कोशिश की और कहा, "बेटी, अम्मा कोई मेहमान नहीं है। अम्मा तुम्हारी माँ है। उसके स्वागत की बड़ी तैयारी की ज़रूरत नहीं है। उसके

लिए तुम्हारा प्रेम ही बहुत है। चिंता की कोई बात नहीं। तुम अपने हाथ से जो भी दोगी वह अम्मा के लिए अमृत है। रोना मत।" किंतु वह निश्छल महिला रोना बंद नहीं कर सकी। अंत में अम्मा ही आगे बढ़ीं। उसे अपने आगोश में लिए उसके कंधे पर बांह डाले हुए उसे भी साथ ले घर के भीतर चलीं।

वह झोपड़ी छोटी थी। छोटे से दो कमरे और एक रसोई। अम्मा सीधे रसोई घर गई। वह स्त्री, पति और उनकी तीन बच्चियाँ साथ गए। शेष लोग बाहर प्रतीक्षा करते रहे। अम्मा ने रसोई घर में पूरा ढूँढा पर सब खाली। अम्मा जब ढूँढ रही थीं वह स्त्री कह रही थी, "कितने अफसोस की बात है! आज घर में खाने को कुछ भी नहीं है।" आखिर अम्मा ने एक कोने में कसावा कंद का एक टुकड़ा देखा। "अरे, यह बहुत है।" उन्होंने उसे उठा लिया। अम्मा वह कंद खाती हुई रसोई से निकलीं।

संयोग से हर्षन एक थैले में कुछ तले हुए पकवान ले चल रहा था, जो उन्हें पहले घर से मिले थे। अम्मा ने उससे कुछ लिया और उस परिवार के सदस्यों को अपने हाथ से खिलाने लगीं। उनके हर्ष और कृतज्ञता की सीमा नहीं रही। वह स्त्री आँखों में आँसू भरे एक भजन की कुछ पक्तियाँ गाने लगी - 'अम्मयल्ले एन्डम्मयल्ले'। शीघ्र पूरा परिवार साथ गाने लगा -

क्या तुम मेरी माँ नहीं?

क्या तुम मेरी प्यारी माँ नहीं जो मेरे आँसू पोंछती है।

क्या तुम चौदहों भुवनों की जननी नहीं,

हे माँ, क्या तुम इस सृष्टि का कारण नहीं?

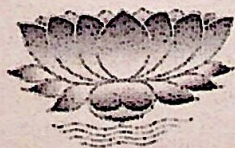
कितने अरसे से पुकार रही हूँ तुम्हें

हे शक्तिस्वरूपिणी, क्या तुम नहीं आओगी?

हे इष्टदान प्रिये, सृष्टि, स्थिति और लय
 सभी तुम्हीं में समाए हुए हैं
 पंचभूत और समस्त भूतजाल,
 माता-पिता सभी तुम्हीं हो न!
 कितने अरसे से पुकार रही हूँ तुम्हें
 हे शक्तिस्वरूपिणी, क्या तुम नहीं आओगी?

वेद और वेदांतवेद्य तुम ही हो
 आदि, मध्य और अन्त तुम्हीं में हैं
 कितने अरसे से पुकार रही हूँ तुम्हें
 हे शक्तिस्वरूपिणी, क्या तुम नहीं आओगी?

उस परिवार के साथ कुछ और समय बिताने के बाद अम्मा आश्रम
 को लौटीं।





अध्याय - ८

विरसता को जीतना सीखो

एक भक्त हमेशा प्रश्न पूछने का आदी था। उसने अम्मा से पूछा - "अम्मा, अधिकतर लोग रोज़ एक ही काम करते-करते ऊब जाते हैं। इसलिए लोग अपने जीवनक्रम को बदलना चाहते हैं। वे एक नया काम करना, अलग-अलग चीज़ें खरीदना आदि चाहते हैं। आप तो रोज़ एक ही काम करती हैं, लोगों से मिलती हैं और उन्हें दर्शन देती हैं। इसी एक काम को बारंबार करते क्या आपको विरसता महसूस नहीं होती?

अम्मा - "बेटे, विरसता मानव को ही अनुभव होती है न कि ईश्वर को। ईश्वर कभी ऊबते नहीं। महात्मा मानवरूप में ईश्वर ही हैं, वे ब्रह्म में चिरप्रतिष्ठित हैं।

"ईश्वर सदा अपनी दृष्टि और कार्यों में एक प्रकार का विस्मय और नवीनता अनुभव करते हैं। वे हर वस्तु में प्रकाशमान एवं हर वस्तु से प्रकाशित सर्वव्यापी चैतन्य हैं। अतएव वे कभी ऊब नहीं सकते।

"विरसता और शुष्कता तभी आते हैं जब तुममें द्वैत भाव हो, 'मैं' और 'तुम' हो, जब तुम समझते हो कि तुम्हारा अपना भिन्न अस्तित्व है। अगर तुम सर्वस्व हो तो ऊब कैसे सकते हो? संपूर्ण विश्व से ऐक्य ऐसी संवेदनाओं को दूर करता है। जब तुम अपने आप से संतुष्ट हो तब विरसता अपने आप लुप्त हो जाती है।

"एक महात्मा स्वच्छ स्फटिक जैसे जल से पूर्ण सरोवर जैसे हैं, जिसकी थाह में ठोस चट्टान है और जिससे कभी बंद न होता जल का सोता फूट निकलता हो। इसकी बुनियाद ठोस व अचल है। साथ ही वह निरंतर साफ व स्वच्छ जल देता है। जल का स्रोत कभी खतम नहीं होता। वह कभी नहीं सूखेगा। वह पूर्णतः संपूर्ण रहता है। वह हर व्यक्ति को

अपना जल पिलाता है।

“महात्मा जानते हैं कि वे अपरिवर्तनशील और अविनाशी आत्मा या ब्रह्म हैं, संपूर्ण विश्व की बुनियाद हैं और यह ज्ञान उन्हें दृढ़ और भीतर से अपरिवर्तनीय बनाता है। वे प्रेम और करुणा के अक्षय भण्डार हैं।

“जब तुम्हारा अस्तित्व शुद्ध प्रेम पर आधारित हो तब तुम कैसे ऊब सकते हो? विरसता तभी आती है जब आप प्यार नहीं करते। यथार्थ प्रेम में वियोग की भावना की गुंजाइश नहीं है। प्रेम तो प्रवाहमान है। जो भी प्रेम की धारा में डूबने व गोता लगाने के लिए कृतसंकल्प है उन्हें स्वीकार किया जाएगा। दूसरी कोई शर्त या व्यवस्था नहीं है। अगर तुम गोता लेने के लिए तैयार हो तो तुम्हें स्वीकार किया जाएगा। अगर तुम तैयार नहीं हो तो प्रेम क्या कर सकता है? वह प्रवाह जहाँ हो वहीं रहता है। वह कभी मना नहीं करता। वह तो नियमित रूप से कहता है - हाँ, हाँ, हाँ, ...।

जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखो

हर किसी बात से ‘हाँ’ कहना ही उसे स्वीकार करना है। तुम्हारे जीवन में हर चीज़ बिगड़ सकती है परंतु फिर भी तुम यही कहते हो - ‘मैं स्वीकार करता हूँ।’ नदी हर किसी से ‘हाँ’ कहती है। मानव को छोड़ समस्त प्रकृति ‘हाँ’ कहती है। मानव ‘हाँ’ और ‘ना’ दोनों कह सकता है। कभी तो वह ‘हाँ’ कहता है लेकिन ज्यादातर वह ‘ना’ ही कहता है। वह जीवन को भगवद् देन नहीं समझता, वह उसे अपना हक मानता है, जीवन की खुशियों को भी अपना हक मानता है। जब तुम जीवन को बहुमूल्य भेंट समझो तब तुम हर संदर्भ में ‘हाँ’ कह सकोगे, सब कुछ स्वीकार कर सकोगे। उल्टे यदि तुम हर चीज़ को अपना हक मानो तो तुम ‘हाँ’ नहीं बोल सकते, तुम केवल ‘ना’ ही बोल पाओगे। वहीं पर हर बात बिगड़ती है। यदि तुम हमेशा जीवन से ‘ना’ कहोगे, जीवन तुम्हारे सम्मुख जो भी अनुभव प्रस्तुत करता है उन सबसे ‘ना’ कहोगे तो तुम दुःखी रहोगे और तुम ऊब भी जाओगे। किंतु यदि हमेशा

‘हाँ’ कहना सीखो तो तुम जीवन और प्रत्येक अनुभव को भेंट के रूप में देख सकोगे, न कि बोझ के रूप में। विरसता तुम्हें कभी नहीं सताएगी।

“जब तुम्हारे दिल में प्रेम व करुणा भरे हों तब तुम किसी से ‘ना’ नहीं कह सकते, केवल ‘हाँ’ कह सकते हो। अम्मा केवल ‘हाँ’ ही कह सकती हैं। वह कभी ‘ना’ नहीं कहती। इसलिए वह ऊबती नहीं है। ‘हाँ’ स्वीकृति है। केवल स्वीकृति के होने पर ही विरसता का लोप होगा।

“जहाँ द्वैत हैं वहीं नकारने की प्रवृत्ति होगी। जब तुम जीवन से ‘ना’ कहते हो तब नाखुश और असंतुष्ट अनुभव करते हो। तुम हर चीज़ का विरोध करोगे और अपने से कभी प्रसन्न नहीं रहोगे। तुम सदा हीन भावना से ग्रस्त रहोगे और तुम सदैव असंतुष्ट रहोगे। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि तुम्हारे मन में हमेशा किसी न किसी वस्तु की चाह रहती है, मन अतृप्त रहता है। तुम धन पाना चाहते हो, यशस्वी होना, एक नया घर बनाना; नई मोटर गाड़ी खरीदना चाहते हो और यह सूची तो बढ़ती ही जाती है। अतः तुम असंतुष्ट हो जाते हो, दिल ऊब जाता है और जीवन भी रूखा लगता है। तुम हर बात पर शिकायत करते हो, किसी से संतुष्ट नहीं होते। क्यों? क्योंकि तुम बराबर ‘ना’ कहने पर ज़ोर देते हो। स्वीकृति की कमी के कारण तुम जीवन की दी हुई हर चीज़ से ‘हाँ’ नहीं कह पाते।

“लोग हमेशा वस्तुओं का पीछा करते हैं। तभी सारी शिक्षा और बौद्धिक ज्ञान के बावजूद लोग असंतुष्ट रहते हैं और वे अपने आप को परिस्थितियों का यथोचित अभिमुखीकरण करने में अपर्याप्त महसूस करते हैं। सबसे धनी व्यक्ति भी असंतुष्ट रहते हैं। वे बिना कारण ही ऊब जाते हैं और वे सदैव इच्छाओं के गिरफ्त में रहते हैं क्योंकि वे असंतुष्ट हैं। उन्हें अपूर्णता का अहसास होता है।

“जीवन अमूल्य उपहार है। किंतु हम अपने विवेक का उपयोग कर सही मार्ग का चयन नहीं करते। हम गलत चीज़ें चुनते हैं और अंत में असंतोष अनुभव करते हैं। इसलिए समस्या हमारे भीतर ही है। हमारी गलत दृष्टि ही हमें असंतोष और विरसता देती है। हम गौण बातों को अधिक महत्व देते हैं और सबसे महत्वपूर्ण बातों को बिलकुल अनदेखा

कर देते हैं।

अम्मा ने उस बात को समझाने के लिए एक कहानी सुनाई।

"एक आदमी को दो भिन्न-भिन्न शिकायतें थीं। उसको आँखों का कष्ट था और बदहजमी का भी। वह डॉक्टर के पास गया तो उन्होंने आँख में डालने की दवा और पेट की दवा दी। आँख के रोग के लिए दवा की दो चार बूंदें आँखों में डालना था और बदहजमी के लिए पेट की दवा के कुछ चम्मच पीना था। परंतु अपने संभ्रमित अवस्था में रोगी ने डॉक्टर के निर्देश में कुछ गड़बड़ी कर दी। वह घर जाकर आँख की दवा लेकर पी गया और उसने पेट की दवा आँख में डाली। नतीजा यह हुआ कि उसकी दोनों शिकायतें और बढ़ गईं।

"इसी तरह हमारे जीवन भी उलझे हुए हैं। हमें आत्मा को, आत्मसाक्षात्कार को कहीं अधिक महत्व देना चाहिए ताकि हम यथार्थतः संतुष्ट व आनन्दमय जीवन बिता सकें। हमें अपने शरीर को कम महत्व देना चाहिए। किंतु हम उलटा काम कर रहे हैं, हम दवा की दोनों शीशियों में अदला बदली कर रहे हैं। हम अपनी बीमारी के लिए गलत दवा लेते हैं। जो ऊर्जा, जो शक्ति हमें आत्मा की ओर केन्द्रित करनी थी उसे हम अपने शरीर पर गँवा देते हैं, हमारा ध्यान शरीर को अधिकाधिक खूबसूरत बनाने एवं शारीरिक सुखों के वर्धन में ही लगा रहता है। अपनी उलझी हुई दशा में हम परिप्रेक्ष्य की चेतना खो चुके हैं। फलतः हमारी सोच और क्रियाएँ नकारात्मक होती हैं। हम ऊब जाते हैं और असंतुष्ट रहते हैं।

"जब तुम आत्मा में स्थित हो तब तुममें निरंतर देने की मानसिकता होती है। जब तुम निरंतर देना चाहते हो, किसी से कुछ लेना नहीं चाहते तब तुम ऊब नहीं सकते। अम्मा केवल देना चाहती हैं। वे किसी से कुछ नहीं चाहतीं। किसी से वह किसी चीज़ की आशा नहीं रखती। अम्मा के जीवन में जो कुछ भी घटता है उसे अम्मा केवल स्वीकारती हैं। अम्मा कभी विरसता महसूस नहीं करती।

"भेदभाव के लोप होने पर ही तुम एक ऐसे व्यक्ति बन सकते हो जो निरंतर देते ही रहता है। द्वैतभाव पूर्णतः नष्ट होना चाहिए, अर्थात्

मन नष्ट होना चाहिए। तभी तुम एक यथार्थ दाता बन सकते हो जिसे किसी से कुछ लेने या प्राप्त करने की ज़रूरत नहीं है। विरसता स्वार्थी व अहंकेंद्रित होने से ही आती है। जब तुम आत्मकेंद्रित हो जाते हो, जब केंद्र जीव से परमात्मा में स्थानांतरित हो तभी तुम विरसता से पूर्णतः मुक्त हो जाओगे।

“राधा के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम में कभी कोई कमी नहीं आई, मीरा का भी अपने गिरिधर के प्रति प्रेम कभी नष्ट नहीं हुआ। दोनों ने अपने प्रेम के बदले में कुछ पाने की आशा नहीं की। दोनों केवल देना ही जानती थीं इसीलिए दोनों ने कभी विरसता का अनुभव नहीं किया - वे सदा आनन्दित एवं संतुष्ट थीं। उन्हें जो भी मिलता, चाहे अच्छा हो या बुरा, वे उसे पूर्ण हृदय से स्वीकार करतीं। इसलिए वे अब भी लोगों के हृदय में निवास करती हैं। वे अमर हुए क्योंकि उन्होंने अपना सब कुछ दे दिया। जब तुम्हारे अहं की, तुम्हारे मन की मृत्यु होती है तभी तुम यथार्थतः जीने लगते हो। मीरा ने कहा, ‘ओ मेरे गिरिधर तुम मुझे प्यार नहीं करते हो तो ठीक है पर तुमसे प्यार करने के मेरे अधिकार को छीन न लेना।’ राधा और मीरा पूर्णतः निःस्वार्थ थीं। उनका प्रेम शुद्ध था, अहं और स्वार्थ-भावना से निर्लिप्त था।

“जब तुम अपने संकुचित ‘अहं’ से तादात्म्य बनाए जीते हो, मन की ही आज्ञा मानते हो, उसकी इच्छा, अनिच्छा के अनुसार व्यवहार करते हो तब तुम ‘तुम’ नहीं हो, तुम मन हो। यह एक प्रकार का पागलपन है। यह तुम्हारे मृत होने के समान है चूंकि तुम अपने आप को केवल मन एवं शरीर मानकर ही जीवनयापन करते हो, तुम अपने यथार्थ अस्तित्व के बारे में सजग नहीं हो, तुम अपनी आत्मा को भूल गए हो। यदि तुम अपने को केवल शरीर मानकर जीवनयापन करते हो तो तुम्हारा जीवन भ्रम मात्र है। असत्य को सत्य समझना, असत्य को सत्य पर आरोपित करना क्या पागलपन नहीं है? जब तक तुम मन के तल पर रहोगे तब तक विरसता रहेगी।

“मन एवं उसका निरंतर शोर बड़ा भारी बोझ होता है। उसका वजन बढ़ गया है, इतना भारी हो गया है कि उसे वहन करना तुम्हारे लिए

कठिन है। दुःख की बात तो यह है कि इतना भारी वज़न ढोते हुए भी तुम उसके भार को नहीं पहचानते।

“तुम समझते हो कि विरसता बाह्य परिस्थितियों और अन्य लोगों के कारण उत्पन्न होती है अतः तुम एक जगह से दूसरी जगह दौड़ते रहते हो, अधिकाधिक वस्तुओं का भोग कर परीक्षण करते हो और अन्ततः तुम शक्तिहीन हो गिर जाते हो। क्या तुम्हें अपने मन का बोझ उतारकर स्वतंत्रता एवं शान्ति का अनुभव नहीं करना है? अधिकांश लोगों का उत्तर है - ‘हाँ, मैं ऐसा करना चाहता हूँ।’ किंतु वे अपने पास रखे हुए बोझ पर अपनी पकड़ छोड़ना भी नहीं चाहते। वे उसी को अपना कवच मानते हैं, वे सोचते हैं कि यदि वे उसे छोड़ दें तो वे असुरक्षित होंगे।

“एक छोटा बच्चा तक ऐसा महसूस करता है। अगर बच्चा माँ या बाप के साथ नहीं रहता तो अपने को असुरक्षित महसूस करता है। बच्चे हमेशा चलते हुए या तो माँ की साड़ी का पल्लू पकड़ लेते हैं या पिताजी का कुर्ता, यह उन्हें सुरक्षित महसूस कराता है। मगर यह अधिक समय तक नहीं रहता क्योंकि कुछ बड़े होने पर वे सुरक्षा किसी और स्रोत में खोजते हैं। जब बच्चा बड़ा होता है तब असुरक्षा की भावना भी बढ़ती है। वह माता-पिता पर कम आश्रित रहता है और अब तो वह यह भी महसूस करने लगता है कि उसके माँ-बाप उसकी आज़ादी में रोड़े अटकाते हैं। शीघ्र ही वह अनुभव करने लगता है कि कोई अन्य वस्तु या व्यक्ति उसे अपने माँ-बाप, अपने घर या नगर से अधिक संतोष दे सकते हैं। असंतोष और विरसता दोनों साथ-साथ चलते हैं। तुम अपने माँ-बाप से ऊब जाते हो और इसलिए तुम उनसे दूर जाना चाहते हो। तुम अपने घर व शहर में ऊब जाते हो तभी तुम और कहीं जीना चाहते हो। अपनी पुरानी मोटर गाड़ी से तुम ऊब जाते हो तभी तुम नई लेना चाहते हो। तुम अपनी पुरानी प्रेमिका से ऊब जाते हो इसीलिए तुम नई से दोस्ती करना चाहते हो। सुरक्षा और संतोष की तलाश में तुम निरंतर असुरक्षा को ही गले लगाते हो। परंतु तुम कभी संतोष नहीं पाते। तुम्हें अपनी असुरक्षा और असंतोष का बारंबार सामना करते रहना पड़ता है।

“यह तुम्हारा मन ही है जो असुरक्षित है। तुम्हारा मन ही विरसता

और भय का कारण है, सारी समस्याओं की जड़ है। निरन्तर स्थान या वस्तु को बदलने की जगह अपने मन से ही छुटकारा पा लो। अपने आप को मन से मुक्त कर लो तो तुम एक नये व्यक्ति बन जाओगे, जीवन के प्रति तुम्हारा दृष्टिकोण नित नूतन रहेगा। जब तक तुम मन को अपने साथ ढोते चलोगे तब तक तुम वही पुराने व्यक्ति रहोगे, वही भय, असुरक्षा, विरसता व असंतोष तुम्हें सताएँगे।

"जीवन में यथार्थ सुरक्षा आत्मा या ईश्वर में ही पाई जा सकती है। और विरसता से छूटने का एकमात्र उपाय है अपनी आत्मा में, ईश्वर में या सद्गुरु में पूर्ण समर्पण। जीवन में जो कुछ घटता है उसका साक्षी बनो। तुम शाश्वत पुरुष हो। तुम पूर्ण हो। तुम विराट हो, एक सीमित व्यक्ति नहीं। दुःख, विरसता और असंतोष की सारी भावनाओं को दूर हटाओ। आनन्दित और संतुष्ट रहो।"

जब संवाद समाप्त हुआ तब किसी को कुछ कहने का मन नहीं रहा। अम्मा ने जो व्याख्या दी वह इतनी सुन्दर व स्पष्ट थी। अगर पहले कोई प्रश्न पूछना चाहता भी था तो अब तक वह उसे भूल गया। अम्मा आँखें बन्द किए बैठीं थीं। वहाँ उपस्थित सभी सहज ही ध्यानलीन हो गए। आँखें बंद किए बैठे वे लोग उस वातावरण की आध्यात्मिक तरंगों का आस्वादन कर आनन्द ले रहे थे।

वाद में, जब सभी ने ध्यान समाप्त किया तब अम्मा ने ब्रह्मचारियों से एक भजन गाने को कहा ('सुखेत्रुतिर्युत्री' नामक भजन)।

भावार्थ -

सर्वत्र सुख को खोजते हे मानव,

अपने अहंकार को छोड़े बिना

अब इस धरा पर सुख कैसे पाओगे?

दयामयी जगदंबा के तुम्हारे अंतर में प्रकट हुए बिना

तुम्हारे मन को सुख कहाँ से मिलेगा, हे मनुज?

पराभक्ति के उदय हुए बिना मानव का मन
 सुगंध रहित पुष्प सम बन जाता है।
 ऐसा मन हमेशा दुःख में सदा व्यथित सागर की
 लहरों से थपेड़े खाते पत्ते की तरह तिरता रहेगा।

विधि के गिद्ध के पंजे में फंसे बिना
 एकांत में 'आत्मा' के भजन करो
 फल की प्रतीक्षा छोड़ कर अपने अंतरंग में
 सकलात्मरूपी माँ के भजन करो
 यह सकल दुरितों का निवारण कर सुख प्राप्ति का मार्ग बनेगा।



अध्याय - ९

अम्मा एक पहेली

जो लोग अम्मा के अत्यंत घनिष्ठ रहे हैं वे भी हमेशा महसूस करते हैं कि अम्मा अज्ञेय हैं। अम्मा की संगति में वर्षों तक रहने के बाद भी इस ग्रंथ का लेखक व्यक्तिगत रूप से महसूस करता है कि अम्मा को समझना असंभव सा है, वे एक गूढ़ रहस्य हैं।

अम्मा के पास आए ब्रह्मचारियों के पहले गुट्ट ने हमेशा सोचा है- "अम्मा को कैसे समझा जाए? उनकी इच्छाएँ हम किस प्रकार समझें ताकि उसके अनुसार व्यवहार कर सकें?" कभी-कभी अम्मा को समझने की कठिनाइयों के कारण वे समस्याओं में भी पड़े हैं। अनेक प्रसंगों में उन्होंने अम्मा की दुर्बोध प्रकृति का अनुभव किया है। हम किसी स्त्री या पुरुष के साथ कुछ समय तक, कुछ सप्ताह या महीनों तक ही मानिए, घनिष्ठ रहें तो उसकी प्रकृति को समझना आसान होता है। परंतु अम्मा के साथ बीस से अधिक वर्षों तक रहने के बाद भी प्रथम ब्रह्मचारी गुट्ट को तथा उनसे घनिष्ठ बने प्रत्येक व्यक्ति के लिए अम्मा पूर्णतः अज्ञात व्यक्तित्व रहीं हैं। एक ब्रह्मचारिणी, जो कि अम्मा की निजी सेवा किया करती थी, ने कहा - "यह कैसी लोकोत्तर विभूति है? अनन्त को समझा जा सकता है, अम्मा को नहीं।"

एक बार ब्रह्मचारी बालु अम्मा के साथ उनके कमरे में था। अम्मा बालु से बड़ा वात्सल्य दिखा रहीं थीं। वे उससे बड़ी देर तक बात करती रहीं। उसकी सारी शंकाओं का समाधान किया और सारे प्रश्नों के उत्तर दिए। उन्होंने उसे अपने हाथ से खिलाया भी। वह अम्मा के प्रेम से अपने को पूर्णतया संतृप्त, आनन्द से भरा अनुभव कर रहा था। परंतु एकाएक अम्मा उसकी ओर मुड़ीं और उन्होंने उससे कमरे से बाहर

चले जाने को कहा। उनके मुखमंडल पर प्रेम भाव का पूर्ण अभाव था। वे पूर्णतः निःसंग थीं। अम्मा के इस आकस्मिक परिवर्तन को देख बालु चौंक उठा और बड़ी असमंजस में पड़ गया। पहले उसने सोचा कि अम्मा उसके साथ मज़ाक कर रहीं हैं। पर शीघ्र ही उसने पहचाना कि वे गंभीर हैं। वह इसका कारण पूछना चाहता था, चूंकि उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था परंतु अम्मा के गंभीर शब्द एवं भाव इतने अगाध थे कि पूछने की हिम्मत न हुई। अम्मा की प्रकृति का यह परिवर्तन एक सरोवर के शान्त स्तब्ध जल में बड़ी चट्टान फेंकने के समान था। ऐसा रहा मानो एक खूबसूरत महल की सुन्दरता को देखते साराहते समय एकाएक वह चूरचूर हो गिर पड़े।

बालु मौन रहा और कमरे में मूर्तिवत् खड़ा रहा। वह मुश्किल से हिल पाया था कि अम्मा ने अपने शब्द दोहराये, “बाहर जाओ! मैं अकेली रहना चाहती हूँ। बाहर जाने में इतना विलंब क्यों कर रहे हो?” भारी और टूटे दिल से बालु कमरे से बाहर आया और ज्यों ही चौखट पार किया त्यों ही अम्मा ने दरवाज़ा जोर से बंद किया। दरवाज़ा बंद करने की आवाज़ बालु के हृदय पर पड़े तेज़ तमाचे सी लगी।

बालु यद्यपि अम्मा के कमरे से बाहर आया तो भी दरवाज़े से अधिक दूर जा नहीं सका। अम्मा से उसकी ममता इतनी घनिष्ठ थी कि वह अम्मा के कमरे के बंद दरवाज़े के सामने बैठ गया और अनाथ, परित्यक्त बच्चे की तरह रो पड़ा।

बालु ने सोचा, “यह मेरी आस्था और धीरज की परीक्षा होगी। हाँ, जब अम्मा किसी को थोड़े समय के लिए अपने पास रहने की अनुमति देती हैं तब वह घमंडी हो जाता है। अहं समझता है, ‘मैं अवश्य कोई खास व्यक्ति हूँ। नहीं तो अम्मा मुझे इतने समय तक अपने पास क्यों रहने देती?’ तभी अम्मा का वज्र तुम पर गिरता है। समस्या यह है कि मन कभी नहीं सोचता कि ‘मैं कितना भाग्यवान और अनुगृहीत हूँ जो अम्मा की उपस्थिति में इतना समय बिता सका।’ मन और अहं, स्वार्थ और दंभ के शब्दों में नकारात्मक विचार ही कर सकते हैं।”

जब अम्मा का अप्रत्याशित प्रहार पड़ता है तब व्यक्ति का दंभ चूरचूर हो जाता है। यदि दंभ नहीं होता, अपने अनुगृहीत होने और अम्मा के उदार होने की सकारात्मक भावना होती तो दुःखित होने या उलझन में पड़ने का सवाल ही नहीं उठता। जब अहं को चुनौती दी जाती है तभी दर्द और दुःख मन में उठते हैं। अगर मैं घमंड कर यह न सोचूँ कि मैं कोई खास व्यक्ति हूँ क्योंकि अम्मा के साथ इतना समय बिताता हूँ और अम्मा की सन्निधि में रहने का मेरा अधिकार है तो दुःख की कोई बात न होती। केवल विनय के होने पर मैं दुःख या असमंजस कैसे अनुभव कर सकता हूँ?"

कुछ मिनट बाद बालु ने किसी के दरवाज़ा खोलने की आहट सुनी। उसने अपना सिर उठाया और उसने आश्चर्यचकित हो देखा कि अम्मा मुस्कुराती हुई वहाँ खड़ी थीं। उनकी प्रकृति पहले की सी ही थी, जैसी उसके कमरे से बाहर जाने के पहले की थी। मानो कुछ न हुआ, वे उससे बोलीं, "अन्दर आओ, बेटे! मगर तुम्हें यह क्या हुआ? तुम रो क्यों रहे हो?" बालु को यकीन नहीं आ रहा था। उसे अपनी स्थिति को ठीक से समझने में कुछ क्षण लगे। उस पूरे वातावरण की विचित्रता पर सोचते खड़े बालु को फिर से अम्मा की वाणी सुनाई पड़ी, "बेटे, अन्दर आओ। क्या हुआ? क्यों रो रहे हो?" यह शब्द बालु के हृदय के चातक के लिए तेज़ वर्षा की बौछार से थे। उसके हृदय की पूरी व्यथा लुप्त हो गई, जैसे कि चिलचिलाते सूरज की गरमी में बरफ पिघल जाता है। वह अम्मा की करुणा से इतना अभिभूत हुआ कि उसकी आँखों से फिर से आँसू बहने लगे। परंतु अम्मा की प्रकृति में यह बाहरी परस्पर विरोध देखकर उसका अचरज बना रहा। उन्होंने पहले इतना स्नेह व ममता दिखाई और फिर एकाएक बिना किसी स्पष्ट कारण के वे पूर्णतः निःसंग हो गईं। यह कैसे और क्यों हुआ? उसकी समझ में बिलकुल नहीं आया। कुछ क्षण बाद उसने अम्मा से पूछा, "अम्मा, मैं आपको समझ नहीं पाता और तदनुसार कार्य नहीं कर पाता। यही मेरा सबसे बड़ा दुःख है। मैं आपको कैसे समझूँ?"

अम्मा ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया- "अम्मा को जानने के लिए तुम्हें

अम्मा बनना पड़ेगा।”

अगर बालु पूछता कि अनन्त को कैसे जाना जा सकता है तो यही बात होती। उत्तर होता, “तुम अनन्त हुए बिना अनन्त को जान नहीं सकते।”

यह तो एक प्रसंग है। इस प्रकार के अनगिनत प्रसंग हैं।

अम्मा की बीमारी

एक दिन सुबह अम्मा बहुत बिमार दिख पड़ीं। वे इतनी कमजोर थीं कि अपने बिस्तर से उठ भी नहीं पा रहीं थीं। रविवार का दिन था, सैकड़ों लोग अम्मा के प्रभात दर्शनों की प्रतीक्षा में खड़े थे। अम्मा की शिकायत थी कि उनको सांस लेने में कष्ट हो रहा था और उनका पूरा बदन बुरी तरह दुख रहा था। कभी-कभी ये तब होता है जब अम्मा भक्तों के रोग को स्वयं स्वीकार कर लेती हैं। उन्हें इतनी पीड़ा थी कि बिस्तर पर करवटें बदलती लोट रहीं थीं। अम्मा छोटे बिस्तर पर लेटीं थीं। लोटने के लिए यह काफी नहीं था इसलिए अम्मा ने तय किया कि वे कच्ची फर्श पर लेटेंगी। गायत्री और ब्रह्मचारियों को डर था कि ठण्डी फर्श से अम्मा का दर्द और बढ़ेगा। उन्होंने ज़मीन पर एक मोटी चादर बिछाई। परंतु अम्मा ने चादर पसंद नहीं की इसलिए गायत्री ने उसे हटाया और अम्मा को खाट से नीचे ज़मीन पर लेटने में मदद दी। अम्मा कच्ची फर्श पर लेटीं तो दर्द से कराहती लोटने लगीं। उनकी पीड़ा स्पष्ट थी। ब्रह्मचारियों ने निश्चय किया कि उस दिन प्रभात दर्शन या देवीभाव दर्शन नहीं होना चाहिए। उन्होंने अम्मा को यह बात बताई तो वे कुछ नहीं बोलीं। उनकी चुप्पी को अनुमति मानकर आश्रम के सामने यह सूचना प्रकाशित की गई कि सवेरे का दर्शन और देवीभाव दोनों रद्द किए जाते हैं। एक ब्रह्मचारी ने नीचे जाकर अम्मा के दर्शनों के लिए कुटी के सामने खड़े भक्तों को खबर दी। वे बहुत निराश हुए।

साढ़े नौ बजे थे। अम्मा ज़मीन पर ही लेटीं थीं। उनकी शारीरिक

स्थिति ज़रा भी सुधरी नहीं थी। सभी चिंतित थे। गायत्री और दमयंती अम्मा, अम्मा के पैर दबा रही थीं। एक ब्रह्मचारिणी ने गरम पानी का बगैर अम्मा की छाती से सटाए रखा था। सब की आँखें अम्मा पर लगीं थीं। एकाएक अम्मा ज़मीन से उछल पड़ीं और उन्होंने पूछा - "समय कितना हुआ?" सभी दंग रह गए और एक साथ पूछने लगे, "क्यों अम्मा? आप क्यों समय जानना चाहती हैं?"

अम्मा ने पूछा, "तुम्हारे प्रश्न का तात्पर्य क्या है?" मानो कुछ हुआ ही नहीं था और उन्हें कोई समस्या ही नहीं थी। "क्या तुम्हें नहीं पता कि आज रविवार है? भक्तगण नीचे दर्शनार्थ प्रतीक्षा कर रहे होंगे। समय कितना हुआ?" उन्होंने दोबारा पूछा। उन्होंने घड़ी देखी और समय जाना तो आश्चर्य में कहा, "ओ शिवा! पौने दस बजे हैं।" अब तक वे खड़ी हो गई थीं। ब्रह्मचारी नीलू ने विरोध किया और कहा, "परंतु अम्मा, हमने तो भक्तों को सूचित भी कर दिया है कि आज दर्शन नहीं होंगे। वे तो जाने की तैयारी कर रहे हैं। अम्मा आप एकदम कमज़ोर हैं। आपको कम से कम एक दिन आराम करना चाहिए।" अम्मा ने नीलू पर कड़ी निगाह डाली और पूछा, "क्या कहा तुमने? क्या तुमने उन्हें बताया कि आज दर्शन नहीं होगा? क्या तुमने ऐसी घोषणा कर दी? किसने बताया तुम्हें कि अम्मा बीमार है? अम्मा अस्वस्थ नहीं है। इससे पूर्व अम्मा ने कभी ऐसा नहीं किया है (अस्वस्थता के कारण दर्शन स्थगित करने की बात कर रही हैं अम्मा)। यह देख मुझे आश्चर्य होता है इतने अरसे से अम्मा के साथ रहकर भी तुममें बिलकुल करुणा नहीं है। इतने सारे भक्तों को निराश भेजने की बात सोच भी कैसे सकते हो?" उन्होंने तुरन्त एक ब्रह्मचारी को नीचे भेजा ताकि सबको अम्मा के दर्शन देने की सूचना दी जाए। भक्त बहुत खुश हुए और कुटी को तेज़ी से लौटे।

अब तक अम्मा एकदम स्वस्थ दिखाई दे रही थीं। उनमें किसी दर्द या बीमारी के कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। उन्होंने ब्रह्मचारियों से कहा, "तुम भक्तों की संवेदना को नहीं समझते। वे अम्मा को देखने के लिए बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे हैं। कई लोगों ने पैसे उधार

लिए हैं, कुछ ने अपनी झुमके या बेसर बेच कर यात्रा का पैसा इकट्ठा किया होगा। इनमें कई ऐसे हैं जो अपनी मामूली कमाई से रोज़ दस पैसे बचाते हैं ताकि महीने में एक बार आश्रम आने के लिए बस का भाड़ा जोड़ सकें। दर्शन रद्द करने की सूचना देकर उन्हें वापस भेजना आसान है। मगर अम्मा को न देख पाने की उनकी मानसिक व्यथा की बात सोचो। यहाँ आने के लिए उनके झेले कष्टों के बारे में सोचो। उनकी निराशा की बात सोचो। अधिकांश भक्त अपने जीवन के मुख्य निर्णय अम्मा से सलाह लिए बिना नहीं करते, आज यहाँ आए लोग आज ही उत्तर चाहते होंगे। कई बातों को कल के लिए टाल देना संभव नहीं। तुमने कितनी आसानी से झटपट निश्चय कर लिया कि आज दर्शन नहीं होंगे। बच्चो, दूसरों की समस्याएँ समझने की कोशिश करो और उनके दुःख को स्वयं महसूस करो।”

ब्रह्मचारी नीलू को कुछ चिंता थी और उसने निवेदन किया, “लोग हमारे बारे में क्या सोचेंगे? वे तो यह सोचेंगे कि हम ब्रह्मचारियों ने अपनी ही तरफ से दर्शन रद्द कर दिया था।”

अम्मा ने फिर नीलू पर कड़ी दृष्टि डाली और बोलीं, “नीलू, क्या तुम अब भी तुम्हारे विषय में लोगों के कथन से चिंतित हो? तो तुम दूसरों से और उनकी टिप्पणियों से डरते हो। क्या तुम ऐसे नहीं सोच सकते कि जो कुछ हुआ वह अम्मा की इच्छा से ही हुआ? क्या एक शिष्य को अपने गुरु के प्रति ऐसी भावना रखनी चाहिए? तुम्हारे विषय में दूसरों के विचार की चिंता अहंकारजन्य हैं। तुम नहीं चाहते कि कोई तुम्हें नापसंद करे, तुम्हारी आलोचना करे। अम्मा के स्वास्थ्य की चिंता से बढ़कर यही चिंता तुम्हें सता रही है। आत्मसमर्पित व्यक्ति कभी इस प्रकार नहीं सोचेगा। समर्पण करने के बाद व्यक्ति अपने विषय में या अपने विषय में दूसरों की बातों पर नहीं सोचेगा। तुम्हें समर्पण करना सीखना चाहिए।”

अम्मा जब अपनी बात कह चुकीं तब गायत्री ने सब से कमरे से बाहर जाने की प्रार्थना की ताकि अम्मा दर्शनों के लिए तैयार हो सकें।

गुरु - एक अज्ञेय व्यक्ति

अम्मा बीस मिनट बाद नीचे उतर दर्शन कुटी में आ गई और भक्तों से मिलने लगीं। वे उत्साही और प्रसन्न दीख पड़ीं। वे पूर्ण स्वस्थ भी दिख रही थीं।

ब्रह्मचारियों ने एक बार अम्मा से पूछा, "अम्मा की इन जटिल मानसिक स्थितियों को हम कैसे समझें और कभी-कभी अम्मा विचित्र सा व्यवहार क्यों करती हैं?"

अम्मा ने कहा, "तुम्हारे विचित्र और कोलाहल भरे मन के अनुसार ही अम्मा का आचरण विचित्र है। तुम्हें अम्मा का आचरण इसलिए विचित्र लगता है क्योंकि तुम्हारे मन में 'सामान्य व्यवहार' के विषय में पूर्वनिश्चित धारणाएँ हैं। तुम्हारा जिस प्रकार पालन-पोषण हुआ, उसके आधार पर एवं तुम्हारे अपने जीवन के आधार पर तुमने कुछ संकल्पनाएँ और आदतें अपनाई हैं। तुम्हारा विश्वास है कि व्यवहार के कुछ तरीके अजीब हैं और अन्य तरीके सामान्य हैं। विचित्रता एवं साधारणता तुम्हारी संकल्पना के सिवा और कुछ नहीं, तुम्हारे व्यक्तिगत विश्वास मात्र हैं। जिस ढांचे में तुम्हारा मन ढला है तुम चाहते हो कि अम्मा भी उसी ढांचे में रहते हुए ही बोले और अन्य व्यवहार करे।

"जीवन के विषय में तुम्हारे मन में कुछ विचार हैं, जिन्हें तुम ठीक समझते हो। किंतु अन्य प्रत्येक व्यक्ति के अपने भाव, चिंतन और संवेदनाएँ होंगी। प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि मैं ठीक ही कहता हूँ, शेष सब गलत बोलते हैं। हर व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है। प्रत्येक मन ने अपनी संकल्पनाएँ बनाई हैं और हर मन आशा करता है कि अम्मा उसी ढांचे में सीमित रहें।

"यह सच है कि अम्मा अपने सभी भक्तों को, जो अपना दुःख, व्यथा और भय से छुटकारा पाने के लिए अम्मा के पास आते हैं, खुश करने की कोशिश करती हैं। तुमने देखा ही होगा अम्मा उनके साथ कैसा बर्ताव करती हैं ताकि वे अम्मा से दिल खोलकर अपनी बात कह सकें। जितनी मात्रा में वे अम्मा के प्रति खुल पाते हैं उसके अनुसार अम्मा उनके लिए

कुछ कर सकती हैं। अम्मा दूसरों को प्रसन्न करने के लिए सहर्ष अपना सर्वस्व का त्याग करेंगी। परंतु अम्मा तुम लोगों से, जो अपना पूरा जीवन ईश्वर साक्षात्कार के लिए समर्पित करना चाहते हैं, उसी तरह व्यवहार करना ज़रूरी नहीं समझती। तुम्हारे मन को मथने की ज़रूरत है ताकि वह पारदर्शी से पारदर्शी हो सके - इतना साफ कि तुम अपनी यथार्थ सत्ता को देख सको, आत्मदर्शन कर सको। दूसरे शब्दों में तुम्हें मन का अतिक्रमण करना होगा। परंतु यह आसान नहीं है। मन को यों ही दूर नहीं किया जा सकता। वह तपस से उत्पन्न ताप से ही विलीन हो जाता है, घुल जाता है। यह ताप गुरु के अनुशासन से तथा उनके प्रति तुम्हारे प्रेम व ममता से संभव होता है।

"तुम्हारा मन व मस्तिष्क गुरु को समझ नहीं पाते, तभी तुम उन्हें विचित्र और उनके वचनों और कर्मों को परस्पर विरोधी कहते हो। लेकिन समझ लो कि तुम्हारा मन ही उनका इस प्रकार मूल्यांकन करता है।

"तपस से उत्पन्न ताप से मन अपने निर्णयों और पूर्वाग्रहों के साथ पिगल जाएगा और तुम हृदय से काम करने लगोगे। इसके लिए शिष्य में अत्यधिक धैर्य होना आवश्यक है।

"एक यथार्थ गुरु अपना सारा जीवन शिष्यों, भक्तों और पूरे समाज के लिए न्योछावर करते हैं। किंतु दूसरी तरफ से भी प्रतिबद्धता की नियत मात्रा होना ज़रूरी है। धीरज धरो तो तुम्हें यथार्थ गुरु से सब कुछ मिलेगा।

"अपनी बुद्धि से गुरु का मूल्यांकन करने की चेष्टा मत करो। उनके विषय में तुम्हारी समझ गलत ही निकलेगी। चूंकि तुम मन के तल पर रहते हो और तुम्हारी आदतें और प्रवृत्तियाँ बड़ी दृढ़ हैं इसलिए तुम गुरु के 'विचित्र मानसिक भावों' को तर्क व विवेचन से सुलझाने की चेष्टा पर अड़े रहोगे। किंतु तुम समझने में असमर्थ रहोगे और अन्ततः तुम पर यह बात खुलेगी कि गुरु को मन या बुद्धि से समझा नहीं जा सकता। तुम्हें बोध होगा कि आस्था ही एकमात्र उपाय है। समर्पण और बालसुलभ मुक्त भाव से ही कोई गुरु को समझ सकेगा।

"अपनी बुद्धि से गुरु को समझने की चेष्टा में तुम्हारा मन क्षीण हो जाएगा। तुम जान लोगे कि गुरु की अनन्त प्रकृति को बुद्धि से पहचानने के तुम्हारे प्रयास विफल हैं। आखिर तुम्हारा हृदय खुल जाता है और तुममें स्वीकार करने का भाव जागता है। अपने गुरु के प्रति तुम्हारा प्रेम और ममता ही उस ताप को उत्पन्न करते हैं जिससे तुममें यह परिवर्तन आता है।

"तुम गुरु को विचित्र कह सकते हो किंतु वे तुम्हारे मन के मूल्यांकन के अनुसार ही विचित्र हैं। चूंकि तुम अपने आप को मन से अभिन्न मानते हो मन तुम्हारे भीतर विचित्रता की प्रतीति कराता है। तुम गुरु के अनुशासन के प्रति जितना समर्पित होते हो, तुम्हारे हृदय में प्रेम की तीव्रता जितनी बढ़ती है, उतना ही अधिक तुम पहचानोगे कि तुम्हारा मन ही विचित्र है न कि गुरु।

"मन अजनबी है। तुम्हारे यथार्थ आवास में, आत्मा में वह अनजान है। बाह्य वस्तु होने के कारण वह अस्वस्थता पैदा करता है जिससे खुजली सी होती है। यह खुजली मन की अभिलाषाएँ है। यह उस सनसनी सा है जैसा कि तुम्हें खुजलते घाव खरोंचने पर मिलती है। जब तुम खुजलते हो तब सुखद सा अनुभव होता है और इसलिए तुम खुजलते रहते हो और परिणामस्वरूप वह घाव और पास त्वचा लाल व व्रणित हो जाती है। तब घाव का दर्द दुगुना हो जाता है।

"इच्छाओं और राग-विराग से पूरित मन एक खुजली सी पैदा करता है, बेचैनी पैदा करता है और तुम खुजलते रहते हो और आखिरकार तुम्हारा पूरा जीवन पीव से भरा व्रण बन जाता है। घाव से सारी पीव को निकालने पर ही घाव भर सकता है। उस घाव का इलाज करना और पीव को बाहर निकालना अम्मा का फर्ज है, यही है तुम्हारे प्रति अम्मा के प्रेम और करुणा की सही अभिव्यक्ति। जब वह यों करती है तब तुम उसे विचित्र कहते हो। अम्मा को तुम्हारी प्रतिक्रिया की चिंता नहीं है क्योंकि तुम नासमझी के कारण ही यों करते हो। यदि अम्मा तुम्हारे व्रण को यथावत रहने दे और तुम्हें बराबर खरोंचने दे तो तुम कहोगे कि अम्मा भी सभी की तरह सामान्य है, विचित्र नहीं है। चयन

करना तुम्हारा काम है। यदि तुम घाव को केवल सहलाना ही चाहते हो और चंगा होना नहीं चाहते हो तो अम्मा के लिए कोई समस्या नहीं है। मगर आगे चलकर तुम्हें ही कष्ट झेलना पड़ेगा।

“मान लो कि तुम एक डॉक्टर के पास घाव का इलाज कराने जाते हो। डॉक्टर शायद तुम्हें एक सुई लगाएँगे। उसके बाद तुम्हें पहले से अधिक दर्द होता है। घाव में पीव बढ़ेगी और तुम्हारा दर्द असह्य हो जाता है। तुम डॉक्टर से पूछते हो, ‘आपके दवा देने के बाद मुझे इतना दर्द क्यों है?’ डॉक्टर मुस्कुराते हुए कहते हैं, ‘चिंता मत करो। यह सुई पूरी पीव को बाहर निकालने के लिए दी गई है। उसे बाहर निकालना आवश्यक है।’ डॉक्टर तुम्हारी हालत से प्रसन्न दिखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी दवा काम कर रही है। तुम्हें तो अजीब लगता है कि डॉक्टर खुश हैं। तुम अपने सीमित ज्ञान के लिए डॉक्टर को दोषी नहीं ठहरा सकते। वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और तुम्हारे लिए जो सबसे अच्छा है, वह करना उनका फर्ज है। तुम्हें डॉक्टर का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। तुम कुछ न जानने के कारण गलत फैसला कर सकते हो। डॉक्टर की दवाएँ तुम्हारे घाव को भरने में मदद कर रहे हैं परंतु घाव के भरने से पहले दर्द का होना अपरिहार्य है। अभी जो तुम्हें दर्द हो रहा है वह दर्द को पूरी तरह दूर करने के लिए ही हो रहा है। यदि तुम एक डॉक्टर नहीं हो और चिकित्सा के विषय में कुछ नहीं जानते तो किसी रोग के विषय में तुम्हारे विचारों को तुम्हारा अपना और तुम्हारे मन का ही मानना चाहिए।

“यथार्थ गुरु की बात भी यही है। तुम्हें जो उलझन और दर्द हो रहे हैं, वे गुरु की दी आध्यात्मिक औषधि के कारण हैं। इसका ध्येय तुम्हारे अतीत के घावों की पीव को बाहर निकालना है।

“बाह्य चोट व घाव कोई बड़ी समस्या नहीं प्रस्तुत करते। अगर उचित इलाज किया जाए तो वे जल्दी भर जाएँगे। लेकिन भीतरी घाव और गहरे होते हैं। वे तुम्हारे संपूर्ण जीवन को नष्ट कर सकते हैं क्योंकि तुम अज्ञानी हो और उनके बारे में कुछ नहीं जानते। साधारण डॉक्टर ऐसे घावों का इलाज नहीं कर सकते। वे बहुत पुराने, गहरे घाव हैं।

उनके लिए एक सर्वज्ञ दिव्य भिषक की आवश्यकता है। एक यथार्थ गुरु अनिवार्य हैं। वे तुम्हारे संपूर्ण अतीत को देख सकते हैं, वे तुम्हारे भीतरी घावों का इलाज करना और भरना जानते हैं।"

प्रश्न - "अम्मा, आपने मन को बाहरी तत्त्व बताया। उसे बाह्य क्यों कहा गया है? क्या आप कुछ स्पष्ट करेंगी?"

अम्मा - "जब कभी एक बाह्य तत्त्व हमारे जीवन में प्रवेश करता है तब हम उसे निर्दयता से हटा देने की कोशिश करते हैं। उदाहरणार्थ अगर हमारी आँख में धूल का कण पड़े तो हम उसे निकाल देना चाहेंगे। क्यों? क्योंकि वह आँख का अंग नहीं है। वह हमारा अपना अंग नहीं है। किसी रोग की बात ही लीजिए - सिर दर्द हो या पेट दर्द, हम उससे छुटकारा पाना चाहेंगे क्योंकि वह बाहरी तत्त्व है। शरीर उससे मुक्त होना चाहता है क्योंकि वह हमारी प्रकृति का अंग नहीं है। इसी तरह मन भी बाहरी तत्त्व है, वह पूर्णतः अजनबी है, हमें उससे भी छुटकारा पाना है।

"हर कोई सुख-शान्ति चाहता है। इस पर कोई बहस नहीं हो सकती। किंतु यथार्थ शान्ति और आनन्द पाने के लिए व्यक्ति को मन व उसकी अभिलाषाओं के पार जाना होगा। मन ही दुःख और पीड़ा का कारण है। मन घाव जैसा है। जब कभी इच्छा मन में उठती है तब मन के घाव की झुरझुरी अनुभव होती है। अभिलाषा को पूरा करना घाव को खुजलाने के समान है। तुम्हारी झुरझुरी फिलहाल कम होती है। मगर तुम यह तथ्य एकदम भूल जाते हो कि अभिलाषाओं की पूर्ति मन के घाव को और गहरा बनाते हैं, संक्रमण फैलता है। किंतु मन निरंतर मांगता रहेगा, इच्छा करता रहेगा। तुम उन अभिलाषाओं को पूरी करते जाओगे। यह तो मन के घाव को लगातार खुजलाने के समान है, जिससे घाव और बड़ा बनता है।

"यदि आँख में पड़े धूल को निकालने के बदले तुम आँख को रगड़ते रहोगे तो तुम्हारा दर्द और खुजली बढ़ेगी। धुलीकण को हटाने पर तुम ठीक हो जाओगे। इसी तरह मन आँख की धूल सा बाहरी तत्त्व है। मन से छूटने की बात सीखो। तभी तुम पूर्णता और आनन्द पा सकोगे।

करना तुम्हारा काम है। यदि तुम घाव को केवल सहलाना ही चाहते हो और चंगा होना नहीं चाहते हो तो अम्मा के लिए कोई समस्या नहीं है। मगर आगे चलकर तुम्हें ही कष्ट झेलना पड़ेगा।

“मान लो कि तुम एक डॉक्टर के पास घाव का इलाज कराने जाते हो। डॉक्टर शायद तुम्हें एक सुई लगाएँगे। उसके बाद तुम्हें पहले से अधिक दर्द होता है। घाव में पीव बढ़ेगी और तुम्हारा दर्द असह्य हो जाता है। तुम डॉक्टर से पूछते हो, ‘आपके दवा देने के बाद मुझे इतना दर्द क्यों है?’ डॉक्टर मुस्कुराते हुए कहते हैं, ‘चिंता मत करो। यह सुई पूरी पीव को बाहर निकालने के लिए दी गई है। उसे बाहर निकालना आवश्यक है।’ डॉक्टर तुम्हारी हालत से प्रसन्न दिखते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि उनकी दवा काम कर रही है। तुम्हें तो अजीब लगता है कि डॉक्टर खुश हैं। तुम अपने सीमित ज्ञान के लिए डॉक्टर को दोषी नहीं ठहरा सकते। वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और तुम्हारे लिए जो सबसे अच्छा है, वह करना उनका फर्ज है। तुम्हें डॉक्टर का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए। तुम कुछ न जानने के कारण गलत फैसला कर सकते हो। डॉक्टर की दवाएँ तुम्हारे घाव को भरने में मदद कर रहे हैं परंतु घाव के भरने से पहले दर्द का होना अपरिहार्य है। अभी जो तुम्हें दर्द हो रहा है वह दर्द को पूरी तरह दूर करने के लिए ही हो रहा है। यदि तुम एक डॉक्टर नहीं हो और चिकित्सा के विषय में कुछ नहीं जानते तो किसी रोग के विषय में तुम्हारे विचारों को तुम्हारा अपना और तुम्हारे मन का ही मानना चाहिए।

“यथार्थ गुरु की बात भी यही है। तुम्हें जो उलझन और दर्द हो रहे हैं, वे गुरु की दी आध्यात्मिक औषधि के कारण हैं। इसका ध्येय तुम्हारे अतीत के घावों की पीव को बाहर निकालना है।

“बाह्य चोट व घाव कोई बड़ी समस्या नहीं प्रस्तुत करते। अगर उचित इलाज किया जाए तो वे जल्दी भर जाएँगे। लेकिन भीतरी घाव और गहरे होते हैं। वे तुम्हारे संपूर्ण जीवन को नष्ट कर सकते हैं क्योंकि तुम अज्ञानी हो और उनके बारे में कुछ नहीं जानते। साधारण डॉक्टर ऐसे घावों का इलाज नहीं कर सकते। वे बहुत पुराने, गहरे घाव हैं।

उनके लिए एक सर्वज्ञ दिव्य भिषक की आवश्यकता है। एक यथार्थ गुरु अनिवार्य हैं। वे तुम्हारे संपूर्ण अतीत को देख सकते हैं, वे तुम्हारे भीतरी घावों का इलाज करना और भरना जानते हैं।"

प्रश्न - "अम्मा, आपने मन को बाहरी तत्त्व बताया। उसे बाह्य क्यों कहा गया है? क्या आप कुछ स्पष्ट करेंगीं?"

अम्मा - "जब कभी एक बाह्य तत्त्व हमारे जीवन में प्रवेश करता है तब हम उसे निर्दयता से हटा देने की कोशिश करते हैं। उदाहरणार्थ अगर हमारी आँख में धूल का कण पड़े तो हम उसे निकाल देना चाहेंगे। क्यों? क्योंकि वह आँख का अंग नहीं है। वह हमारा अपना अंग नहीं है। किसी रोग की बात ही लीजिए - सिर दर्द हो या पेट दर्द, हम उससे छुटकारा पाना चाहेंगे क्योंकि वह बाहरी तत्त्व है। शरीर उससे मुक्त होना चाहता है क्योंकि वह हमारी प्रकृति का अंग नहीं है। इसी तरह मन भी बाहरी तत्त्व है, वह पूर्णतः अजनबी है, हमें उससे भी छुटकारा पाना है।

"हर कोई सुख-शान्ति चाहता है। इस पर कोई बहस नहीं हो सकती। किंतु यथार्थ शान्ति और आनन्द पाने के लिए व्यक्ति को मन व उसकी अभिलाषाओं के पार जाना होगा। मन ही दुःख और पीड़ा का कारण है। मन घाव जैसा है। जब कभी इच्छा मन में उठती है तब मन के घाव की झुरझुरी अनुभव होती है। अभिलाषा को पूरा करना घाव को खुजलाने के समान है। तुम्हारी झुरझुरी फिलहाल कम होती है। मगर तुम यह तथ्य एकदम भूल जाते हो कि अभिलाषाओं की पूर्ति मन के घाव को और गहरा बनाते हैं, संक्रमण फैलता है। किंतु मन निरंतर मांगता रहेगा, इच्छा करता रहेगा। तुम उन अभिलाषाओं को पूरी करते जाओगे। यह तो मन के घाव को लगातार खुजलाने के समान है, जिससे घाव और बड़ा बनता है।

"यदि आँख में पड़े धूल को निकालने के बदले तुम आँख को मलते रहोगे तो तुम्हारा दर्द और खुजली बढ़ेगी। धुलीकण को हटाने पर तुम ठीक हो जाओगे। इसी तरह मन आँख की धूल सा बाहरी तत्त्व है। मन से छूटने की बात सीखो। तभी तुम पूर्णता और आनन्द पा सकोगे।

"आनन्द और शान्ति पाना मानव का ध्येय है। मगर वे उसे पाने के लिए गलत रास्ते चुनते हैं। प्रायः हर कोई जानता है कि वे सच्ची शान्ति और आनन्द अनुभव नहीं कर रहे हैं। उनके जीवन में कोई अभाव है और वे उस अभाव को अधिकाधिक पाने व जुटाने के ज़रिए दूर करने की कोशिश करते हैं। किंतु यथार्थ समस्या तुम्हारे मन के भीतर है। मन एक अजनबी है जिसे दूर करना चाहिए। किंतु यह कार्य कौन सकता है? तुम्हारे मन के लिए अपरिचित व्यक्ति ही उसे दूर कर सकेगा। वह अजनबी है गुरु। सद्गुरु संभवतः तुम्हारे मन के लिए अज्ञेय है। किंतु वे तुम्हारे विचित्र मन को और उसके विचित्र व्यवहारों को अच्छी तरह जानते हैं। वे सभी मनों के गुरु हैं। किंतु तुम्हारे मन के लिए वह बड़ी निराली पहेली ज़रूर हैं।

"जब तक तुम्हारे मन का अस्तित्व है तब तक तुम महात्मा के व्यवहारों को विचित्र ही कहोगे। किंतु जब धीरे से तुम मन और विचारों का नियंत्रण करने लगते हो तब तुम पहचानोगे कि महात्मा विचित्र नहीं थे, तुम्हारा मन ही अजीब था।

"जैसा कि अम्मा ने पहले कहा है, तुम्हारे मन को मथना चाहिए। विचित्र मानसिक भाव वाले एक खास अजनबी ही तुम्हारे मन को मथने का तरीका जानते हैं। तुम साधारण लोगों एवं उनकी मानसिकता से ही परिचित हो, तुम्हारा मन उनके द्वारा कभी-कभी मथा जाता है। किंतु यह मंथन ऊपरी और अपर्याप्त है। असली मंथन को तुम्हारे मन की निचली तल तक पहुँचना चाहिए। तभी शुद्धीकरण का काम होगा। साधारण व्यक्ति यह कर नहीं सकता क्योंकि कोई साधारण व्यक्ति तुम्हारे मन की विचित्रता को नहीं जानता। यथार्थ गुरु ही तुम्हारे मन की विचित्रता से परिचित हैं। सद्गुरु इंद्रियों एवं मन से परे हैं। यही कारण है कि तुम उन्हें विचित्र पाते हो। परंतु एक ऐसा विचित्र व्यक्ति ही, जो कि मन और इंद्रियों से परे है, यह मंथन सफलता से कर सकता है। वही तुम्हें अपने विचित्र मन और उसके विचित्र भावों को दूर करने में मदद दे सकेगा। वह विचित्र व्यक्ति सद्गुरु हैं। सद्गुरु अपने प्रेम व करुणा के ज़रिए शिष्य को अपने से घनिष्ठ बना लेते हैं और उसके बाद धीरे

से उसके विचित्र प्रतीत होने वाले तरीकों व मानसिकताओं से मंथन प्रारंभ होता है।

“बच्चो, मलयालम में एक कहावत है, ‘पानी को खूब विलोडने के बाद उससे मछली पकड़ो।’ यदि तुम तालाब में खलबली मचाओ तो पोखर में जीती मछलियाँ मिट्टी के नीचे से और छिपने के अन्य स्थानों से बाहर आएँगी। वे डराती आवाज़ सुनेंगी और बाहर आएँगी। पूरे पोखर का मानों मंथन होता है। जब सारी मछलियाँ छिपने के स्थानों से बाहर आती हैं, तब मछुआरा अपना जाल फेंक कर सब को पकड़ लेता है। उसी प्रकार गुरु अपने विचित्र व अज्ञेय तरीकों से हमारे मन में खलबली मचाते हैं। किंतु उनकी खलबली हमारे भीतर गहराई में जमी पड़ी वासनाओं को बाहर ले आती है। वासनाओं के प्रकट होने पर ही हम उनके बारे में जानेंगे और उन्हें दूर कर पाएँगे। गुरु के विचित्र तरीके तुम्हारे मन को पकड़ने के लिए ही जानबूझ कर बनाए जाते हैं। तुम्हारे भीतर छिपी नकारात्मक भाव की मात्रा दिखाने के लिए ही गुरु तुममें खलबली पैदा करते हैं। एक बार तुम्हें अपने हृदय में भरे नकारात्मकता के भार का अहसास होगा, वह बोझ लगने लगेगा तो तुममें उससे छुटकारा पाने की हार्दिक अभिलाषा होगी। तुम घाव की गहराई को जानने लगते हो, तुम खुजली का मूल कारण अब समझते हो इसलिए तुम गुरु के कार्य में सहयोग दे सकोगे। बोझ को पहचानने के बाद तुम उसे और ढोना नहीं चाहोगे। तुम अपना बोझ उतारना और पूर्णतः स्वतंत्र और शान्त रहना चाहोगे। अपनी नकारात्मक प्रवृत्तियों को पहचानने के बाद उसे दूर करना तुम्हारे लिए आसान होगा। तुम समझ जाते हो कि दुःख व सारी पीड़ा का कारण तुम्हारा मन है। अपने गुरु की कृपा से तुम उसको हृदय से निकाल सकोगे।”





अध्याय - १०

एक अच्छी याददाश्त

एक ब्रह्मचारी ने कुछ महीनों तक आश्रम से दूर एकांत में थोड़ा समय बिताना चाहा। वह कुछ दिनों से अम्मा से इसके लिए अनुमति माँग रहा था। परंतु अम्मा ने उससे कहा - "तुम क्यों जाना चाहते हो? क्या उससे तुम्हारा कोई लाभ होगा? अम्मा नहीं समझती कि इस वातावरण से दूर जाने से तुम्हारा कोई फायदा हो सकता है। यदि आत्मसाक्षात्कार तुम्हारा ध्येय है तो यही सर्वोत्तम स्थान है। परंतु यदि तुम अपनी वासनाओं के अनुसार कार्य करना चाहते हो तो अच्छी बात है, चले जाओ। समस्या का कारण तुम्हारा मन है। तुम चाहे अपने इस मन को लिए जहाँ भी जाओ तुम्हारा कोई लाभ नहीं होगा। तुम जगह और स्थिति बदलते जा सकते हो पर तुम वही के वही रहोगे। वही आदतें, वही प्रवृत्तियाँ रहेंगी। जब तक तुम अपने मन के शोरगुल को बंद न कर सको तब तक यही स्थिति रहेगी। जब तक तुम अपने मन को मौन न बनाओ तब तक आत्मसाक्षात्कार तुम्हारी पहुँच के बाहर रहेगा। तुम्हें स्थानांतरण या स्थिति को बदलने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है एक ऐसे व्यक्ति की जो अपने मन को पूर्णतः शान्त कर सका है। ऐसा व्यक्ति ही तुम्हें तुम्हारी वास्तविक समस्या से अवगत करा सकता है एवं उससे छुटकारा दिला सकता है। ऐसा व्यक्ति ही तुम्हारे मन को शान्त व मौन बनाने में मदद दे सकेगा।"

अम्मा के इतना कहने पर भी ब्रह्मचारी ने जाने का निर्णय किया। वह एक दिन संवेरे आश्रम से निकल पड़ा। उसने अम्मा के लिए एक पत्र लिख छोड़ा, "अम्मा, आपकी आज्ञा तोड़ने का मेरा कसूर माफ करना। एकांत में रहने की इच्छा इतनी प्रबल है कि मैं उसे रोक नहीं

पाया। कृपामयी, वापस आने पर मुझे अपने पुत्र व शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिएगा।”

किंतु वह ब्रह्मचारी जो कम से कम तीन महीने तक एकांत में रहना चाहता था, उसी दिन आश्रम लौटा। आगे उसने एक बड़ी मजेदार घटना का वर्णन कर सुनाया, जिसने उसे आश्रम त्यागने की योजना को छोड़ने के लिए विवश कर दिया।

उस ब्रह्मचारी ने कायमकुलम की सवेरे की बस पकड़ने की उम्मीद में नाव से पश्चजल को पार किया। उस पार वह बस स्टॉप की तरफ चलने लगा तो न जाने कहाँ से छह-सात कुत्तों का एक झुण्ड एकाएक उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसको आगे बढ़ने से रोक दिया। ब्रह्मचारी ने समझा कि वे कुत्ते कुछ करेंगे नहीं और इसलिए वह उनकी परवाह किए बिना आगे बढ़ने लगा। परंतु वह ज्यों ही बढ़ा त्यों ही कुत्ते उसकी तरफ देखकर जोर से भौंकने लगे। वे कुछ हिंसक से लग रहे थे। ब्रह्मचारी ने सड़क पर पड़ा एक डण्डा उठाया और उन्हें भगाने की योजना बनाई। किंतु इस चाल ने कुत्तों का गुस्सा बढ़ाया और वे जोर से भौंकने लगे। कुछ कुत्ते ब्रह्मचारी की तरफ हमले के इरादे से बढ़े। वह कुत्तों को डराकर भगाना तो चाहता था लेकिन अंत में वह खुद इतना डर गया कि उसने डण्डा फेंक दिया। ज्यों ही उसने डण्डा फेंका त्यों ही कुत्तों ने भौंकना बन्द किया और चुप हो गये। मगर वे वहाँ से हटने के लिए तैयार नहीं थे। वे उसके रास्ते को यों घेर कर खड़े थे कि वह इंच भर भी बढ़ नहीं पाता था। ब्रह्मचारी ने दोबारा और तीसरी बार भी बस स्टॉप की तरफ चलने की कोशिश की। परंतु जब भी वह आगे कदम रखता तब कुत्ते भौंकने लगते और उसका रास्ता रोकते ही रहे।

एक बार तो ब्रह्मचारी को इतना गुस्सा आया कि वह उनकी तरफ क्रोध से बढ़ा। मगर उसके इस व्यवहार पर कुछ कुत्ते उस पर दूट पड़े और बात की बात में उसके दाँए पैर की पिंडली पर एक कुत्ते ने काट खाया। घाव गहरा तो नहीं था, पर पैर से खून रिसने लगा। ब्रह्मचारी इस घटना से चौंक गया। उसकी आँखें खुल गईं। उसने सोचा, “यह

अम्मा की लीला ही होगी। वे मेरा यहाँ से जाना पसन्द नहीं करतीं। मैं आज्ञाभंग करने वाला था किंतु अम्मा की इच्छा के बिना मेरी आज्ञा भंग की इच्छा भी पूरी नहीं होगी। नहीं तो यह कुत्ते ऐसे विचित्र ढंग से क्यों पेश आते?" यों सोचते और मन को शान्त करते हुए ब्रह्मचारी आश्रम को लौटा।

ब्रह्मचारी इस घटना को गुप्त रखना चाहता था। उसने तय किया कि आगे कभी मौका मिलने पर अम्मा से कहेगा। किंतु दूसरे ही दिन सवेरे उसे अचरज में डालते हुए अम्मा ने पूछा, "कुत्तों ने तुम्हें एक सबक सिखाया, हैं न?" हँसते हुए अम्मा बोलीं, "बेटे, यह अवज्ञा करने का उचित दण्ड रहे।" सभी आश्रमवासियों को जल्दी ही इस घटना की जानकारी मिली। अगले दिन ब्रह्मचारी पैर में पट्टी बांधे चल रहा था तो सब उसकी तरफ देख कर हँस रहे थे। वे उसे चिढ़ा रहे थे। अम्मा हँसते हुए बोलीं, "यह एक अच्छी याददाश्त रहे।" ब्रह्मचारी को बड़ी व्यथा हो रही थी। वह क्षमा मांगते हुए आँसू बहा रहा था।

बाद में उसने इस घटना का राज जानना चाहा। उसने अम्मा से पूछा, "उन कुत्तों ने ऐसा विचित्र व्यवहार क्यों किया? आपकी ही इच्छा उनके द्वारा प्रकट हुई न, मगर क्या ऐसा हो सकता है?"

सद्गुरु की सर्वव्यापी प्रकृति

अम्मा ने उत्तर दिया, "बेटे, क्या तुमने वह कहानी नहीं सुनी है? महर्षि वेदव्यास ने जब अपने पुत्र शुक को पुकारा, उससे वापस आने के लिए कहा तब सारी प्रकृति ने उत्तर दिया था। शुकदेव संसार से इतने विरक्त थे कि वे माँ की गर्भ से बाहर आना ही नहीं चाहते थे। बारह वर्ष उन्होंने माँ की कोख में ही बिताए, फिर नारदजी के अनुरोध पर उन्होंने जन्म लेना स्वीकार किया। जन्मते ही सब कुछ त्याग कर वे घर से निकल पड़े। जब शुकदेव जा रहे थे तो भगवान वेदव्यास ने अपने पुत्र को नाम से पुकारा। उनकी पुकार का उत्तर प्रकृति ने दिया था - वृक्ष, पौधे, पहाड़, तराइयाँ, पशु-पक्षी, सब ने उत्तर दिया। इस

कथन का वास्तविक अर्थ क्या है? जो व्यक्ति परमात्म चैतन्य से अभिन्न हो गया है वह सारी सृष्टि से भी अभिन्न हो जाता है। वह शरीर तक सीमित नहीं रहता। वह सृष्टि की हर वस्तु में प्रकाशमान चैतन्य है, हर वस्तु को प्रकाशित करता चैतन्य है। हर वस्तु को सौन्दर्य और शक्ति प्रदान करता चैतन्य है। वह समस्त सृष्टि में व्याप्त आत्मा है। यही उस कहानी का अर्थ है।

“जब भगवान व्यास ने शुकदेव को पुकारा तब प्रकृति ने उत्तर दिया क्योंकि शुक वह शुद्ध चैतन्य थे जो पूरी प्रकृति में व्याप्त है। वेदव्यास ने शुकदेव को पुकारा परंतु शुकजी शरीर नहीं थे अतः उनका कोई नाम या रूप न था। वे नाम व रूप से परे थे। सभी में उनका वास था और सृष्टि के सारे शरीर उनके थे। वे सभी में थे इसलिए हर चीज़ ने वेदव्यासजी की पुकार का उत्तर दिया।

“तुमने सिर्फ कुत्तों के शरीर ही देखे। मगर उन शरीरों के भीतर क्या था? प्रत्येक शरीर में आत्मा का वास है। तुम दृश्यमान वस्तु को कुत्ता कह सकते हो, क्योंकि उसका शरीर कुत्ते का है। किंतु एक बार तुम सत्य को जान जाओ तब अनुभव करोगे कि समस्त सृष्टि ही परमात्मा से व्याप्त है। यथार्थ महात्मा किसी से भी अपनी आज्ञा का पालन करवा सकते हैं, वह चाहे चेतन हो या जड़। हर वस्तु उन्हीं की है, वे हर वस्तु का नियंत्रण कर सकते हैं। एक महात्मा के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। एक लकड़ी का तख्ता तक उनकी इच्छा का अनुसरण करेगा। तब वे अपना आदेश एक कुत्ते से क्यों नहीं मनवा सकते? महात्मा सूर्य, चंद्र, सागर, पर्वत, वृक्ष और प्राणियों के ज़रिए अपना काम करवा सकते हैं। संपूर्ण विश्व के ज़रिए वे अपने को प्रकट कर सकते हैं। उन्हें सिर्फ आदेश देना है। एक शब्द, दृष्टि, चिंतन या स्पर्श किसी से आज्ञा अनुसरण कराने के लिए पर्याप्त है।

“क्या तुम श्रीकृष्ण की वह कथा जानते हो जिसमें उन्होंने सारी गायों के झुण्ड को एक शक्तिशाली राक्षस, जो उन्हें चुराने आया था, के विरुद्ध लड़ा दिया? श्रीकृष्ण ने केवल बांसुरी बजाकर गायों को राक्षस के विरुद्ध भेजा था। राक्षस श्रीकृष्ण के दुष्ट मामा कंस का सेवक था। कंस ने

श्रीकृष्ण को जान से मारने के लिए अपने हस्तक राक्षसों का उपयोग करके कई प्रकार से प्रयत्न किया। किंतु उसके सारे प्रयत्न असफल हुए। बांबार असफल होने पर कंस बड़ा प्रतिशोधपूर्ण बन गया। एक दिन उसने दूसरे राक्षस को बुला कर कृष्ण व उसके सखाओं की सारी गायों को मार डालने का आदेश दिया।

“कृष्ण और गोप बालक प्रतिदिन प्रभात में गायों को चराने वन ले जाते थे। वन गोकुल से दूर था और कृष्ण व गोप गोकुल में रहते थे। एक दिन जब गायेँ खुशी से चर रहीं थीं तो वह राक्षस प्रकट हुआ। वह पहले गायों को ऐसी सुविधा भरी जगह ले जाना चाहता था जहाँ पर वह अपनी आसुरी शक्ति से गायों को मार सके। राक्षस का भीषण रूप गायों को डरा गया। वे घबराहट में जहाँ तहाँ भागने लगीं। राक्षस पूरी गायों को एक ही दिशा में दौड़ा सका। कृष्ण के साथी गोप बालक भयभीत हो गए और कृष्ण के पास दौड़े-दौड़े पहुँचे। जब उन्होंने कृष्ण को घटना सुनाई तब कृष्ण मुस्कुराए। उन्होंने बांसुरी निकाली और मधुर तान बजाई। वही पर्याप्त था। ज्यों ही गायों ने वह मीठी तान सुनी त्यों ही वे उलटी दिशा में, राक्षस की ओर दौड़ने लगीं। वे राक्षस का पीछा करने लगीं। सैंकड़ों गायेँ थीं। आसुरी माया उन्हें कुछ न कर पाई। अंत में राक्षस को गायों से भागना पड़ा।

“संत ज्ञानेश्वर दीवार को चला सके और भैंसे से वेदमंत्रों का पाठ करा सके।

“मन पर स्वामित्व का मतलब है सारी सृष्टि पर स्वामित्व। वह अपने व्यक्तिगत मन पर ही स्वामित्व नहीं है, तुम समस्त मनों के स्वामी बनते हो। समस्त मन तुम्हारी आज्ञा मानेंगे। तुम पूर्ण हो न कि अंग। जब तुम यह बात समझ जाओगे तब किसी से वियोग का सवाल नहीं उठता।”

सद्गुरु के चरणों की शरण लो

ब्रह्मचारी के आश्रम छोड़ने की उस घटना के सिलसिले में अम्मा ने विस्तार से समझाया, “विश्वभर में अनेकानेक लोग जहाँ-तहाँ अध्यात्म

एवं आत्मसाक्षात्कार की खोज में दौड़ते हैं। वे एक शान्त, एकांत स्थान ढूँढना चाहते हैं - एक गुफा, वन या कोई पहाड़ जिसकी बगल में नदी बहती हो। परंतु इस सब से पहले सर्वप्रथम उन्हें धीरज धरना एवं किसी एक स्थान में स्थायी रूप से, बिना अत्र तत्र भ्रमण किये, रहना सीख लेना चाहिए। अपनी पसंद की किसी भी जगह में नहीं वरन् एक ऐसे व्यक्ति के चरणों में जो उन्हें दिखा सकते हैं कि उनकी समस्याएँ बाह्य कारणों से नहीं उत्पन्न होतीं वरन् उनका उदय उनके भीतर से ही होता है। वह ऐसे व्यक्ति हों जो जिज्ञासु का हाथ थामकर उसे लक्ष्य तक पहुँचा दे, जो उसे अहसास दिलाए कि वह अकेला नहीं है, जो उसे विश्वास दिलाए कि अनन्त आध्यात्मिक शक्ति संपन्न गुरु सदैव उसका प्रेमपूर्ण पथ प्रदर्शन करेंगे।

“यह पथ दुर्गम है और कभी पीड़ादायी भी। किंतु हृदय से ज़्यादा दर्द व पीड़ा होने पर साधक के पथभ्रष्ट होने या आध्यात्मिक पथ के त्याग करने की संभावना है। आज योग्य शिष्यों की कमी है। पुरातन काल में योग्य शिष्य मिलते थे, उन दिनों समाज में सत्य और आस्तिकता थी। उनमें लक्ष्यप्राप्ति की इतनी तीव्र इच्छा थी कि वे गुरु का कठोर अनुशासन सहज ही सहन कर पाते थे। उन साधकों में पूर्ण आस्था व समर्पण होता था। परंतु अब ज़माना बदल गया है। आस्था एवं आत्मसमर्पण केवल शाब्दिक रह गए हैं। आधुनिक युग की नीति अधिक बोलना और कम करना है। मन की वासनाएँ भी अधिक प्रबल हैं। कोई अनुशासित होना नहीं चाहता। हर कोई अपना ‘अहं’ बनाए रखना चाहता है, वह उसके लिए बहुमूल्य है। लोग ‘अहं’ को अलंकार समझते हैं, उसे अब बोझ नहीं माना जाता। लोग अपने अहं का भार महसूस कर नहीं सकते। वे उसके संकुचित ढाँचे के अन्दर ही खुश हैं। वे उससे बाहर आने में भय और असुरक्षा अनुभव करते हैं। वे समझते हैं कि वे जहाँ हैं वहीं सुरक्षित हैं। उन्हें अपने अहं की चार दीवारी के बाहर की दुनिया भयावह लगती है, वह अज्ञात है अतः असुरक्षित भी। वे यकीन करते हैं कि अहं के परे जो भी है वह उनके लिए नहीं है, वह तो उन्हीं लोगों के लिए है जो और कुछ कर नहीं सकते।

समर्पण के लिए साहस चाहिए

“गुरु में समर्पण करना आसान नहीं है। उसके लिए साहस चाहिए। वह बहती नदी में कूद पड़ने के समान है। यदि तुम कूद पड़ते हो तो धारा निश्चयेन तुम्हें समुद्र ले जाएगी। इससे कोई बचाव नहीं है। तुम जितना भी श्रम करो, जितना भी प्रवाह के विरुद्ध तैरने का परिश्रम करो, मगर नदी इतनी शक्तिशाली है कि तुम्हें समुद्र को ले ही जाएगी - यानी ईश्वर को, आत्मा को। कूद पड़ने का मतलब आत्मसमर्पण करना है। उसके लिए साहसी मन चाहिए क्योंकि उसकी तुलना हमारे शरीर व मन की मृत्यु से हो सकती है।

“तुम अभी शायद न कूदोगे क्योंकि तुम नदी के गहरे पानी में कूदने के लिए तैयार नहीं हो। फिलहाल तुम नदी किनारे खड़े होकर नदी की सुन्दरता का आनन्द लेते रहना चाहते हो। तुम शायद ठण्डी मंद हवा का, बहते जल का कलरव, नदी की शक्ति और जादू का अनुभव करना चाहते हो। वह भी ठीक है। नदी तुम्हें कूद पड़ने के लिए मजबूर नहीं करेगी। तुम वहाँ जितनी देर चाहो खड़े रह सकते हो। नदी तुम्हें नहीं दुत्कारेगी, वह नहीं कहेगी, ‘बस! चले जाओ। बहुत लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं।’ वह यह भी नहीं कहेगी, ‘ठीक है, समय आ गया है। तुम अभी मुझमें कूद पड़ो, नहीं तो मैं तुम्हें ऐसा करने के लिए मजबूर करूँगी।’ नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। यह तो तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। तुम चाहो तो कूद सकते हो या फिर किनारे पर खड़े रह सकते हो। नदी तो वहाँ है। वह हमेशा तुम्हें स्वीकार और साफ करने के लिए तैयार है।

“उस नदी रूपी महात्मा में ‘अहं’ नहीं है। वह नहीं सोचती, ‘मैं बह रही हूँ, मैं शक्तिशाली हूँ, सुन्दर हूँ। मैं तुम्हें समुद्र को ले जा सकती हूँ। वस्तुतः मैं ही सागर हूँ। देखो, इतने लोग मुझमें नहाते व तैरते हैं और वे कैसे मुझमें आनन्द पाते हैं।’ नहीं, गुरुरूपी नदी में ऐसी कोई संवेदना नहीं है। वह बहती है क्योंकि उसकी प्रकृति बहने की होती है।

“किंतु एक बार तुम पानी के भीतर डुबकी लगाओ तो धारा इतनी

तेज है कि तुम एक मृतक शरीर से बन जाओगे। तुम अपने को बिलकुल शक्तिहीन पाओगे। तुम्हारे पास कोई अन्य उपाय नहीं रहेगा, तुम केवल निश्चल रह पाओगे, नदी अपनी प्रवाह के अनुसार तुम्हें जहाँ चाहे वहाँ ले जाएगी। तुम्हें चुनने की आज़ादी है। तुम या तो किनारे रह सकते हो या तो कूद सकते हो। किंतु एक बार तुम कूद जाते हो तो फिर कोई विकल्प नहीं रहता, तुम्हारा व्यक्तित्व नष्ट हो जाएगा, तुम्हें अपना 'अहं' छोड़ना पड़ेगा।

“तुम्हें किनारे खड़े रहने की आज़ादी है। किंतु कब तक यों ही खड़े रहोगे? कभी न कभी तो तुम्हें निश्चय करना ही होगा। या तो संसार को लौटना होगा या तुम्हें कूदना होगा। तुम संसार को लौट गए तो भी नदी का सौन्दर्य इतना मोहक है कि तुम वापस आते रहोगे। तुम्हारा मन नदी में कूदने को ललचाएगा और अन्ततः एक दिन तुम निर्णय कर कूद पड़ोगे। यह अवश्यंभावी है।

“किनारे खड़े रहते हुए तुम नदी के बारे में बहुत बातें कर सकते हो। तुम उसकी प्रशंसा गाओगे, उसके सौन्दर्य का वर्णन करोगे, उसके विषय में तुम्हारे कई मत होंगे। नदी और उसके इतिहास के बारे में तुम्हारे पास अनन्त कथाएँ हो सकती हैं। मगर तुम तो नदी में एक बार भी डूबकी लगाए बिना उसका वर्णन कर रहे हो, कथाएँ सुना रहे हो। नदी में प्रवेश किए बिना उसकी महिमा के बारे में तुम जो भी कहो, वह बेमतलब होगा। एक बार तुम अस्तित्व की नदी में कूद लेते हो, सद्गुरु में समर्पण करते हो तो तुम मौन हो जाओगे। तुम्हारे पास कहने के लिए कुछ नहीं रहेगा।

“समर्पण तुम्हें मौन बना देता है। समर्पण अहं को नष्ट करता है, तुम्हारी अल्पता और ईश्वर की सर्वज्ञता का अनुभव कराता है। जब तुम समझ जाते हो कि तुम कुछ नहीं हो, तुम पूर्णतः अज्ञानी हो तब तुम्हारे पास कहने के लिए कुछ भी नहीं रहता। केवल अविभक्त और अहैतुक आस्था ही रह जाती है, तुम केवल अत्यंत विनम्र भाव से नतमस्तक हो सकते हो। अर्थात् ज्ञान के लिए व्यक्ति में विनम्रता आवश्यक है। अहंकार और ज्ञान का सहवास संभव नहीं है। विनय यथार्थ ज्ञान का

चिह्न है।

“कई लोग अच्छे वक्ता होते हैं। सामान्यतः ऐसे व्यक्ति अहंकारी होते हैं। अपवाद तो होंगे ही परंतु सामान्य प्रवृत्ति अधिक बोलने और कम करने की रहती है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि इन लोगों ने जीवन के उच्चतर मूल्यों को अपनाया नहीं है, न ही ईश्वर या यथार्थ सत्ता में समर्पण किया है। यद्यपि वे उसके बारे में बोलते बहुत कुछ हैं तथापि उन्होंने ईश्वर की प्रभुता को स्वीकार नहीं किया है न ही वे अपनी अल्पता से अवगत हैं। ऐसे लोग संसार की काफी भलाई करते होंगे पर वे बहुत हानि भी करते हैं।

“अम्मा नहीं कहती की सभी ऐसे हैं। उनमें ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने समर्पण किया है। मगर वे इतने कम हैं कि उँगलियों से गिने जा सकते हैं। सामान्य प्रवृत्ति यथासंभव अहं की प्रवृद्धि करने की होती है।

अहं यथार्थ सत्त्व को नष्ट करता है

“राजनीति और व्यापार के क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या तीव्र प्रतिस्पर्धा है, दल सदस्यों में या प्रतियोगी दलों में रस्साकशी होती है, सभी दूसरों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने की कोशिश करते हैं। ऐसे मौकों पर तुम्हें अपने प्रतियोगियों के प्रति कुछ आक्रामक भी होना पड़ता है। तुम उनपर अधिकार पाना चाहते हो और इसलिए तुम्हें उन्हें यह दिखाना पड़ेगा कि तुम भी कुछ हो। अपने ध्येय को पाने लिए तुम कोई भी तरीका अपनाने के लिए तैयार हो जाते हो। तुम्हारे तरीके अमानवीय हों तो भी तुम परवाह नहीं करते। इस संघर्ष में तुम अपने मानवीय गुण खो देते हो। तुम पशुवत् हो जाते हो। तुम्हारा दिल पत्थर बन जाता है। अपने सहजीवों के प्रति हमदर्दी नष्ट हो जाती है। तुम्हारे यथार्थ सत्त्व का बलिदान होता है।

“अम्मा ने एक कहानी सुनी है - एक सज्जन एक मुकद्दमे में फँसे थे। उन्हें भय था कि वे मुकद्दमा हार जाएँगे। निराशा से उन्होंने अपने वकील से कहा कि वह जज साहब को भेंट के रूप में गोल्फ क्लब

का एक सैट भेजने जा रहा है। वकील चौंक उठे और मुवक्किल से बोले, 'ये न्यायाधीश अपनी ईमानदारी पर गर्व करते हैं। वे रिश्तत नहीं लेते। अगर तुम वह करोगे तो वे तुम्हारे विरुद्ध हो जाएँगे और फैसला तुम्हारे खिलाफ हो सकता है।'

"वह व्यक्ति मुकद्दमा जीत गया। सारा मामला खतम होने पर उन्होंने वकील को दावत पर बुलाया। उन्होंने वकील को गोल्फ क्लब के विषय में दिए उपदेश के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा, 'मैंने जज साहब को भेंट भेजी, पर वह हमारे प्रतिपक्षी की तरफ से भेजी थी।'

"अहं जीवन को कुरुक्षेत्र बनाता है। युद्धक्षेत्र में केवल दुश्मन ही होते हैं, मित्र नहीं होते; अपने और प्रिय नहीं होते। युद्धक्षेत्र में न तो प्रेम रहता है न दूसरों के लिए सहानुभूति। तुम सदैव दूसरों को तबाह करने के उपायों पर सोचते रहते हो। तुम क्षमा कर पुराने द्वेष को भुलाने की बात तक सोच नहीं सकते। तुम्हारे पक्ष में प्रतीत होने वाले भी तुम्हें गिराने की कोशिश करते हैं। वस्तुतः उनके विचार भी तुम्हारे विचारों से ही हैं। उन्हें भी वही संदेह है। यही कारण है कि इस युद्ध के प्रारंभ में तुम विपक्ष के लोगों को नष्ट करते हो और अंत में अपने ही पक्ष के लोगों को नष्ट करते हो। सत्ता व धन तुम्हें अन्धा बनाते हैं। इतनी सारी समस्याएँ क्यों होती हैं? इसका कारण है समर्पण या विनय का अभाव। प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि वे खास है, कि वे महान है। इसलिए वे दूसरों को अपना महत्व दिखाने की कोशिश करते रहते हैं और परिणामतः द्वंद्व एवं संघर्ष होते हैं।

"गत दिन एक फिल्म अभिनेता अम्मा के दर्शन करने आया। वह फिल्म जगत में सफलता पाने के लिए अपने संघर्ष की बात कह रहा था। उसने अम्मा से कहा, 'लोगों का खयाल है कि फिल्म क्षेत्र का काम बहुत अच्छा होता है और फिल्म सितारे खुश व संतुष्ट जीवन जीते हैं।' बड़ी व्यथा से उसने अम्मा से कहा कि फिल्मी व्यवसाय सब से बुरा व्यवसाय है, अभिनेताओं के बीच निरंतर प्रतिस्पर्धा बनी रहती है, वे एक दूसरे से जलते हैं, ईर्ष्या करते हैं। जो कामयाब हैं, जिन्होंने अपना एक स्थान बना लिया है, वे दूसरों को कभी प्रोत्साहन

नहीं देते। यद्यपि अनेक प्रतिभाशाली अभिनेता और अभिनेत्री हैं, वे प्रायोजकों, निर्देशकों तथा प्रमुख अभिनेताओं व अभिनेत्रियों की दया पर जीते हैं। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों को नीचे गिराने में लगा रहता है। सभी एक दूसरे के वैरी हैं।

“कभी-कभी लोग कुछ हासिल करने के लिए अहंकार को छिपाते हैं। मान लो कि कोई व्यक्ति नौकरी पाना चाहता है। बहुत समय से वह नौकरी की खोज में बेकार भटकता रहा है। जब वह एक कारखाने के मालिक के पास नौकरी मांगने जाता है तब वह सावधानी से अपने अहंकार को छिपाता है और विनम्र होने का अभिनय करता है। वह मालिक की बताई सारी शर्तों को पालने के लिए तुरंत सहमत होता है, करारनामे पर दस्तखत भी करता है। वह कई बार यह प्रतिज्ञा दोहराता है कि वह मालिक के खिलाफ हड़ताल या विरोध के छिड़ने पर उसमें कभी भाग नहीं लेगा, वह अपने सारे काम नियमित रूप से बिना चूके करेगा। किंतु काम मिल जाने पर वह सोचने लगता है कि मेरी भी कोई हस्ती है और उस हस्ती को वह दिखाना चाहता है। वह सारे वादे तोड़ने लगता है और अपनी प्रतिज्ञाओं को भुला देता है। उसका अहं अब बाहर प्रकट होने लगता है।

“जब तुम चेतना को अपना समर्पण करते हो तब तुम अपने सारे अधिकार त्याग देते हो, तुम उन सभी चीजों को छोड़ देते हो, जिन्हें तब तक तुमने पकड़ रखा था। लाभ या हानि का अब कोई महत्व नहीं रहता, कोई मतलब नहीं रहता। तुममें कुछ बनने की इच्छा नहीं रह जाती। तुम शून्य बनना चाहते हो और इसलिए तुम अस्तित्व की नदी में कूद जाते हो।

“अहं ही तुम्हें कुछ होने का अहसास कराता है। उसे जब तक दूर नहीं करते तब तक तुम अपनी चेतना में गहरे नहीं उतर सकते। तुम्हें शून्य होना होगा। ‘मैं कुछ हूँ’ का लेश मात्र भी बचना नहीं चाहिए। यदि तुम कुछ हो तो चेतना के जगत में तुम्हें प्रवेश नहीं मिलेगा।”

सौन्दर्य निरहंकारिता में है

"अहंकार केवल बिगाड़ सकता है, केवल नष्ट कर सकता है। वह सब को नष्ट करता है, जीवन तक को। जो कुछ अच्छा और खूबसूरत है उसे वह नष्ट करता है। अहंकार प्रकट है तो वहाँ कुरूपता भी प्रकट होती है क्योंकि अहंकार स्वभावतः कुरूप होता है, घृणास्पद होता है। अहंकारी व्यक्ति शायद सुन्दर और कुशल माना जा सकता है किंतु उसके विषय में अन्यो के मन में अप्रिय भावना रहेगी।

"राक्षसराज रावण सुन्दर, प्रतापी और कलाकुशल था। वह बड़ा गायक और संगीतज्ञ था। वह एक ही समय में कई वाद्य कलापूर्ण ढंग से बजा सकता था। वह बड़ा विद्वान और कवि था। किंतु उसमें एक गर्हणीय बात भी थी। यद्यपि उसमें ये सारे गुण थे तो भी उसमें एक अप्रिय बात थी। वह समझता था कि वह ही सबसे महान है, सबसे बड़ा है। 'मैं कुछ हूँ, खास हूँ' का खयाल लोगों में एक प्रकार की कुरूपता जनाता है।

"दूसरी ओर वेदव्यास बाह्य रूप से कुरूप माने जाते थे। परंतु उनका सान्निध्य दिव्य था, उनमें सहज सौन्दर्य था चूंकि वे विनम्रता एवं सरलता के प्रतिमूर्ति थे। वे अहंकारशून्य थे। वे यथार्थतः महान थे परंतु उन्होंने कभी महान होने का दावा नहीं किया। वे अपने को कुछ नहीं समझते थे और इसीलिए सब कुछ थे।

"वेदव्यास अहंकारशून्य थे जबकि रावण अहंकारी था। भगवान वेदव्यास चैतन्य के मूर्त रूप थे। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर था।

अम्मा के शब्द सुनते सब मंत्रमुग्ध बैठे रहे। वे 'अज्ञेय' अम्मा पर अपनी दृष्टि टिकाए बैठे रहे।

एक ब्रह्मचारी ने एक गीत गाया। 'अम्मयेनुल्लोरु तेन्मोयि' (अम्मा नामक मधु)।

भावार्थ -

संसार के अनगिनत नाम क्या

‘माँ’ नाम की माधुरी की तुलना कर सकते हैं?
 तुम्हारे प्रेम साम्राज्य से भिन्न क्या और कोई साम्राज्य भी है
 जो मेरे सारे विचारों का विश्राम धाम बन सके?

ओ अम्मा! एकांत रात के तटों पर भटकते
 इस अनाथ को यदि आप ठुकरावें तो
 मेरा मानसोद्यान अनन्त दुःखों का आवास बन जाएगा।

मेरे अंतरंग के अगाध दुःखों को
 तुम्हारे सिवा और कौन जानता है?
 तुम्हें भजनेवाले यदि तिरस्कृत हों तो
 तुम्हारे चरणकमलों का भजन करने से क्या लाभ?

हे धन्यता प्रदायिनी ज्योतिस्वरूपिणी!
 तुम्हारे कृपाकटाक्ष के स्पर्श से मुझे सहला दो।
 तब मैं आत्मा के आनन्दामृत
 प्रवाह में एक हो बहूँगा।





अध्याय - ११

एक दिन संध्या के देवीभाव के दौरान ब्रह्मचारी बालु गा नहीं पाए क्योंकि उनके गले में खराश थी। इसलिए वे मंदिर के भीतर ध्यान करते, मंत्र जपते और बीच-बीच में अम्मा के ज्योतिर्मय मुखमंडल पर दृष्टि डालते रहे।

सौम्या अम्मा के दूसरी तरफ बैठी अम्मा की सेवा में उपस्थित थी। वह प्रत्येक भावदर्शन के दौरान ऐसे बैठा करती थी। सौम्या और गायत्री ही आश्रम में स्थायी रूप से ठहरती ब्रह्मचारिणियाँ थीं। उसके पहले, प्रारम्भिक दिनों में, जब कृष्णभाव व देवीभाव प्रारंभ हुए थे, स्थानीय स्त्री भक्त ही प्रत्येक भावदर्शन में अम्मा की सेवा करती थीं। जब सौम्या १९८२ के अन्त में आश्रम की स्थायी अन्तेवासी बन गई तब भावदर्शन के दौरान अम्मा की सेवा का दायित्व सौम्या को दिया गया।

उन दिनों अम्मा एक ब्रह्मचारी को अपनी दाईं ओर बैठने की अनुमति दिया करतीं थीं। वे अमूल्य क्षण होते थे। अपने समीप बैठने की अनुमति देने के बाद अम्मा साधारणतया उस ब्रह्मचारी के भ्रूमध्य पर कुछ चंदन लेपती थीं। इस स्पर्श का अद्भुत प्रभाव होता था, वह इतनी गहन शान्ति का अनुभव कराती कि वह ब्रह्मचारी स्वतः गहरे ध्यान में लीन हो जाता। ब्रह्मचारियों के प्रथम गुट्ट को यह अनुभव पाने का भाग्य प्राप्त था। कभी-कभी अम्मा एक ब्रह्मचारी को अपने पास बैठने बुलातीं और वे उसे अपना सिर अम्मा की गोद में रखने की अनुमति देती थीं। अम्मा की गोद में सिर रखे बैठते समय उस ब्रह्मचारी को अद्भुत दर्शन होते और अनेक दिव्य अनुभव भी होते।

देवीभाव के समय अम्मा के बगल में बैठने की अनुमति पाना सौभाग्य की बात एवं खास अनुग्रह माना जाता था। ऐसे मौके भी कम नहीं थे जब ऐसी कृपा अम्मा किसी गृहस्थ भक्त पर करती थीं।

देवीभाव के समय अम्मा की बगल में बैठने की अनुमति अम्मा के विशेष प्रेम का प्रतीक मानी जाती थी। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारी बड़ी आतुरता से अम्मा के बुलावे की प्रतीक्षा करता था। किंतु अम्मा उन दिनों आश्रम में रहनेवाले छह-सात ब्रह्मचारियों में से किसी एक को ही प्रत्येक देवीभाव के दौरान अपने बगल में बैठने के लिए बुलाती थीं।

किसी-किसी दिन अम्मा ब्रह्मचारियों को पूर्णतः अनदेखा करके किसी गृहस्थ भक्त को अपने पास बिठाती थीं। जब दूसरों को उस दिन अपना मौका हाथ से छूटने की बात पता लगती तब वे चुने जाने वाले व्यक्ति से बहुत जलते थे। किंतु धीरे-धीरे अम्मा ने ब्रह्मचारियों को बगल में बिठाने का क्रम बंद कर दिया।

उन दिनों की स्मृतियाँ अब भी ब्रह्मचारियों के मन में ताज़ी हैं। उन मौकों पर वे जिस तरह स्वतः गहन ध्यान में लीन हो जाया करते थे, वह असाधारण था। कभी-कभी अम्मा अपने बगल में बैठे व्यक्ति के प्रश्नों के उत्तर भी दिया करती थीं।

ब्रह्मचारी बालु के लिए उस दिन का अनुभव ऐसा ही अनुग्रहपूर्ण रहा। मंदिर के सामने के बरामदे पर भजन बड़ी तल्लीनता से गाए जा रहे थे। ब्रह्मचारी 'ओरुपिडि स्नेहम्' (मुट्टी भर प्यार) भजन गा रहे थे।

भावार्थ -

प्रेम के एक कण के लिए आतुर

मैं छायाओं के पीछे भटकता रहा।

किंतु जब वह मुट्टी में आया सा प्रतीत हुआ

तब वह हाथ से छूट गया।

ओ माँ! अब मैं फिर से भटक रहा हूँ।

दुःख की लहरों के थपेड़े खा कर

मेरा दिल टूटा जा रहा है।

ओ माँ, मेरा यह विदीर्ण हृदय
 अब तुम्हारी खोज कहाँ करे?
 क्या तुम्हें मेरी परवाह ही नहीं है?
 ओ माँ, क्या तुम नहीं आओगी?

अविरत रूप से अश्रुकण पीता
 अपलक तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।
 ओ माँ, मुझ पर कृपा करो
 ताकि मैं फिर से जागू
 और तुम्हारे चरण कमलों में
 अपने आप को पुनः पा लूँ।

बालु अम्मा से थोड़ी दूर बैठा था। वह अम्मा की सुन्दर मुखाकृति को निहार रहा था। वह मन ही मन सोच रहा था, "अगर अम्मा मुझे अब बुलाकर अपने पास बैठने की अनुमति दें तो कितना अच्छा होता!" एकाएक अम्मा ने उसकी ओर दृष्टि डाली और उसे अपने बगल में बैठने को कहा। बालु की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। इस विचार से कि अम्मा ने उसकी प्रार्थना इतनी शीघ्र स्वीकार की, उसका दिल भर आया।

क्षणभर भी विलंब किए बिना बालु अम्मा के पास उनके 'पीठम्' के बगल में फर्श पर बैठ गया। अम्मा मंदहासपूर्वक देखती हुई बोलीं, "अम्मा जानती थी कि तुम्हें उसकी बगल में बैठने की इच्छा थी।" बालु ने अम्मा के मुखमंडल पर अपनी दृष्टि डाली और मौन अश्रु बहाए। जब अम्मा ने यह देखा तब बच्चे के प्रति उनकी करुणा उमड़ पड़ी, उन्होंने बालु का सिर अपनी गोद में रखा। अपनी गोद में उसके सिर को टिकाए अम्मा भक्तों को दर्शन देती रहीं।

मंदिर के बरामदे से एक ब्रह्मचारी एक भजन की भूमिका में अमृतानन्दमयी सारवर्मजरी का निम्नलिखित श्लोक गा रहा था -

हे ॐकार स्वरूपिणी अम्मा
 मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ।
 अनन्त, शाश्वत, सच्चिदानन्द स्वरूपिणी
 जो ऋषियों के हृदय मंदिरों में प्रकाशमान हैं।
 जो ध्यानलीन दृढ़व्रत शिष्यों को आनन्द देती हैं।
 जो उनमें तीव्र भक्ति का संचार करती हैं
 जो हृदय से भक्ति भजन के गायन से निकलता है।
 अम्मा! जिनको गुणी लोग पूजते हैं।

बालु ने अपना सिर अम्मा की गोद से उठाया और अम्मा के ज्योतिर्मय मुखमंडल को फिर से एक बार निहारा। अम्मा ने उस पर करुणामय दृष्टि डाली तो उसने अम्मा से पूछा, "अम्मा क्या मैं आपके पिछले अवतारों में भी आपके साथ रहा था?"

अम्मा ने मंदहासपूर्वक उत्तर दिया, "बेटे, तुम हमेशा अम्मा के साथ रहे हो। बेटे समझ लो कि अब अम्मा के साथ जितने भी लोग हैं वे सब उनके साथ पूर्व जन्मों में भी थे। वरना तुम उनसे इतना सहज व दृढ़ संबन्ध कैसे अनुभव करते?"

प्रश्न - "अम्मा, कुछ लोग कहते हैं कि गुरु ही शिष्यों को चुनते हैं। दूसरे कहते हैं शिष्य गुरु को चुनता है। कौन सी बात सही है? क्या आप ने मुझे चुना या मैंने आपको चुना? क्या मैंने आपका पता किया या आपने मेरा पता कर लिया? क्या आप कृपया यह बात समझाएंगी?"

अम्मा - "बेटे, अगर अम्मा कहे कि उसने तुम्हें चुन लिया तो क्या तुम उसे आँखें बन्द करके, बिना शंका के स्वीकार करोगे? नहीं, अम्मा यह नहीं मानती। अपनी वर्तमान स्थिति में शायद तुम थोड़े समय के लिए इसपर विश्वास करो किंतु शीघ्र ही मन आपत्ति उठाने लगेगा। वह कार्यकारण के खोज में लग जाएगा और एक बार यह विचारधारा अपनाई

जाए तो तुम विश्लेषण या चिंतन प्रारंभ करोगे, 'ठीक है कि अम्मा ने बताया कि उन्होंने मेरा चयन किया। किंतु यदि उन्होंने मुझे स्वीकार किया है तो वह किसी बात का परिणाम होना चाहिए। तो वह कारण क्या है? कारण मेरा पुण्य ही रहा होगा या मेरी की हुई तपस्या।' यदि तुम इस तरह सोचने लगे तो धीरे से अहंकार प्रवेश पायेगा।

"ये सब तर्कयुक्त बातें लग सकती हैं, परंतु आध्यात्मिक विकास के लिए सबसे अच्छी दृष्टि ऐसी होनी चाहिए - 'ईश्वर ने मुझे चयन किया। मेरे गुरु ने मुझे चुना। मैं खो गया था और मेरे गुरु, मेरे सर्वस्व ने मेरा पता लगा लिया।' "

प्रश्न - "क्या मैं इस जन्म में आत्मसाक्षात्कार कर सकूंगा या उसके लिए मुझे दोबारा जन्म लेना पड़ेगा?"

अम्मा - "बेटे, क्या तुम इस जन्म में ही अपने मन को एवं अपनी सारी इच्छाओं को नष्ट करने के लिए आवश्यक श्रम कर सकोगे? अम्मा सदैव तुम्हारे साथ रहेंगी, तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगी, तुम्हें सहारा देंगी। किंतु अम्मा के उपदेशानुसार क्या तुम साधना नियमित और अचूक ढंग से कर सकोगे? यदि तुम यह कर सको तो अम्मा का विचार है कि तुम्हें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा।"

"बेटे, यदि तुम्हारी आध्यात्मिक साधना अम्मा के बताए क्रम से हो तो तुम तीन ही वर्षों में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में पहुँचोगे। अम्मा इसका दावा कर सकती है। फिर वापसी की बात नहीं रहेगी। किंतु मनोलय हो जाना चाहिए, अहं का अंत होना चाहिए। यदि मन का अंशमात्र भी नष्ट हुए बिना रहे तो तुम्हें वापस आना पड़ेगा।"

प्रश्न - "अम्मा, मुझे वापस आने का डर नहीं है। मैं आप ही के साथ रहना चाहता हूँ, मुझे कई और जन्म लेने पड़ें तो भी मुझे उसकी परवाह नहीं है।"

अम्मा - "बेटे, तुम इस जीवन में यदि सचमुच अम्मा के साथ हो तो तुम उसके सारे भावी अवतारों में अवश्य उसके साथ रहोगे। इसमें कोई संदेह नहीं है।"

प्रश्न - "अम्मा, आपने 'यदि तुम सचमुच अम्मा के साथ हो' यह कहा, उससे क्या अभिप्राय है? क्या मैं अब आपके साथ नहीं हूँ?"

अम्मा - "अम्मा के साथ यथार्थतः रहने का मतलब है अम्मा के प्रति 'अप्रतिबन्ध आज्ञाकारिता'। अम्मा की भौतिक उपस्थिति में रहते हुए भी यदि अम्मा जिन आध्यात्मिक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करती हैं उसका ज्ञान न हो तो वह उनके साथ वास्तविक रूप से रहना नहीं है, वह तो उन्हें भुलाना है। अम्मा का यथार्थ स्मरण उनके आदेशों का पालन, उन शब्दों के आध्यात्मिक सार का ग्रहण और उनका अभ्यास है। जो भी हो, महात्मा की सन्निधि में रहने से स्वयमेव शुद्धीकरण होगा।"

बालु ने अम्मा की तरफ फिर से देखा और कहा, "अम्मा, एक अन्तिम प्रार्थना है। मुझे ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं आपकी दिव्य सन्निधि में हमेशा रहूँ।"

अम्मा ने उंगली चंदन की कटोरी में डाली। इसके बाद उन्होंने अपनी उस उंगली की नोक बालु के भ्रूमध्य पर रखी तो बालु ने अपार आनन्द का अनुभव किया। बालु ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और उसने गहन ध्यान में प्रवेश पाया।

ब्रह्मचारीगण 'ब्रह्माण्ड पक्षिकल' भजन गा रहे थे।

भावार्थ -

अम्मा! तुम ज्ञान के तेजोमय वृक्ष हो
समस्त ब्रह्मांड पक्षियों के झुण्ड की तरह
तुम्हारे पास उड़ते आते हैं।

जब तक मैं अपने आप को जानकर

तुम तक नहीं पहुँच जाता मैं

अपनी छाया में मेरी रक्षा करना।

शास्त्र बताते हैं कि नील आकाश तुम्हारा शीर्ष है,

और पृथ्वी तुम्हारे पावन चरण हैं, अम्मा,

और संपूर्ण अंतरिक्ष तुम्हारा शरीर है।
 वन्दना करता हूँ मैं तुम्हारी हे पराशक्ति,
 भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ तुम्हारी ।

तुम सारे धर्मों में प्रशंसित हो
 तुम चतुर्वेदों का सार हो अम्मा,
 और तुम वह धाम हो जिसमें सारे नाम व रूप
 अंत में विलीन हो जाते हैं।
 मैं संपूर्ण विनय से तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

देवीभाव की समाप्ति पर अम्मा ने कोढ़ी दत्तन को दर्शनार्थ बुलाया। वह हृदय को छूने वाला दृश्य था। साथ ही दत्तन की शुश्रूषा करती अम्मा का दृश्य मन में श्रद्धा व विस्मय जगाता। उसे अन्य सारे भक्तों से अधिक समय और ध्यान दिया जाता था।

दत्तन अम्मा के पास गया और उसने उनके चरणों पर प्रणाम किया। अम्मा ने उसे उठाया और उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। कुछ समय बाद अम्मा ने धीरे से उसका सिर उठाया और उसे अपने कंधे पर रख लिया। वे अपनी जीभ से उसके घावों को चाटने लगीं। ऐसी सेवा और ऐसी करुणा की कल्पना तक करना असंभव लगता था। वहाँ घट रही घटना को देखने वालों के लिए वह दृश्य घृणास्पद भी था और साथ ही हृदयस्पर्शी भी। मंदिर में खड़ा एक व्यक्ति उसे देख कर बेहोश हो गया और उसे वहाँ से ले जाना पड़ा। अम्मा ने शेष भक्तों को भी मंदिर से चले जाने का आदेश दिया। इसके बाद उन्होंने जो किया वह आश्चर्यजनक था। उन्होंने दत्तन का सिर नीचे झुकाया। उसके सिर को दोनों हाथों से थामें अम्मा ने उसके एक घाव का पीब व खून चूस निकालकर एक कटोरी में थूक दिया जो सौम्या ने लाकर रखी थी। कई बार यह क्रिया दोहराने के बाद अम्मा ने कुछ भस्म लेकर

दत्तन के पूरे शरीर पर मल दिया। अम्मा ने फिर से उसको शरीर से बड़ी ममता से लगाया। अंत में वे मंदिर के खुले द्वार पर गई और भक्तजनों पर पुष्पवृष्टि करने लगीं। यह देवीभाव की समाप्ति का द्योतक था। यह उल्लेखनीय है कि दत्तन पूर्णतः स्वस्थ हुआ। उसकी अकेली दवा अम्मा की लार थी। उसके सारे घाव सूख गए, उसके शरीर पर केवल उनके दाग ही रह गए हैं।



अध्याय - १२

मेरा अधिकार नहीं केवल उनकी कृपा

देवीभाव के बाद का दिन था। इसलिए आश्रम में भीड़ कम थी। बालु, वेणु, रामकृष्णन, राव और श्रीकुमार अम्मा की बगल में बैठे थे। अम्मा तभी अपने कमरे से नीचे उतर आई थीं। वे ध्यानकक्ष के सामने बैठीं थीं। बालु ने इस मौके का लाभ उठाकर पूछा, "अम्मा, कल रात को देवीभाव के समय मैंने आपसे पूछा था कि क्या शिष्य गुरु को चुनता है या गुरु शिष्य को? आपने कहा कि शिष्य के आध्यात्मिक विकास के लिए यही दृष्टिकोण अच्छा है कि 'ईश्वर ने मुझे चुना है या मेरे गुरु ने मुझे चुना है।' आप क्या इस दृष्टिकोण के विषय में और कुछ प्रकाश डालेंगी?"

इनके वर्तमान संन्यासाश्रम के नाम हैं क्रमशः स्वामी अमृतस्वरूपानन्द, स्वामी प्रणवामृतानन्द, स्वामी रामकृष्णानन्द, स्वामी अमृतात्मानन्द और स्वामी पूर्णामृतानन्द।

अम्मा - "बेटे, अगर तुम सोचो कि तुम्हीं ने गुरु को चुना है तो यह बात तुम्हें घमंडी बनाएगी। जब तक गुरु न चाहें तब तक तुम गुरु को चुन नहीं सकते। ऐसा सोचना घमंड होगा कि मैंने अपने गुरु को चुना है। तब तो तुम जब चाहो अपने गुरु का त्याग भी कर सकोगे। किंतु जो गुरु तुम्हारी समझ से बिलकुल परे हैं उन्हें तुम कैसे चुन सकते हो? किसी चीज़ को चुनने या ठुकराने के पहले तुम यह समझने की कोशिश करते हो कि वह तुम्हारे लिए अच्छी है या बुरी। अगर वह अच्छी है तो तुम उसे चुन लेते हो। तुम थोड़े दिनों तक उसका उपयोग करके जब चाहो उसे छोड़ भी सकते हो, उसका त्याग भी कर सकते हो। उस प्रकार के चुनाव में काफी विचार जुड़ा हुआ है। परंतु प्रथम

दर्शन में ही जब किसी शिष्य में गुरु के प्रति अगाध प्रेम उभर आए तो वहाँ विचार-प्रक्रिया का सवाल नहीं उठता। गुरु का आध्यात्मिक आकर्षण इतना तीव्र होता है कि शिष्य उन्हीं का बन जाता है। यथार्थ प्रेम एवं आत्मसमर्पण में विचार बाधा डालता है।

“गुरु तो कोई वस्तु या सीमित व्यक्ति नहीं है। यथार्थ गुरु तो तुम्हारी आत्मा है, सर्वव्यापी आत्मा। वे अनन्त हैं।

“नदी सागर को कैसे चुन सकती है? वह विवश होकर समुद्र की तरफ बहती है। सारी नदियाँ का यही हाल है, वे सागर की ओर स्वतः बहती हैं और उनमें मिल जाती हैं। समुद्र का खिंचाव में अनंत शक्ति है जिससे नदियों को उस तरफ बहना ही पड़ता है।

“इसी तरह तुम सर्वशक्तिमान गुरु की ओर विवश होकर खिंचे जाते हो। उनकी अनंत शक्ति तुम्हें आकृष्ट करती है और तुम उनकी तरफ बहते हो। गुरु का आकर्षण इतना सशक्त होता है कि तुम्हारे लिए कोई विकल्प ही नहीं रह जाता। यह आकर्षण शक्ति उनकी है, यह उनकी कृपा है, जिसका कोई श्रेय तुम्हें नहीं जाता।

“तुम तो एक छोटे से लोहकण भर हो। गुरु की अनन्त आध्यात्मिक शक्ति का चुंबक तुम्हें उनकी ओर आकर्षित कर रहा है और तुम विवश होकर उनकी ओर खिंचे जा रहे हो। लोहकण के पास कोई विकल्प नहीं है। एक बार वह चुंबक के चुंबकीय क्षेत्र में आ जाए तो वह उससे बाहर जाने या रहने का विकल्प चुन नहीं सकता। चुंबक उसे जिस दिशा में खींचता है उसी दिशा में उसे जाना पड़ता है। इसी प्रकार तुम विवश होकर सद्गुरु की तरफ खिंचते जाते हो। तुम्हारे सामने और कोई विकल्प नहीं है। घटना स्वतः घटित हो जाती है।

“सद्गुरु तुम्हें कीचड़ से उठाकर, बाहर निकाल कर तुम्हें उसी दशा तक पहुँचाते हैं जिसमें वे स्वयं प्रतिष्ठित हैं। अतएव उचित दृष्टिकोण यों सोचना है कि मैंने उन्हें नहीं चुना, उन्होंने मेरा चयन किया है। किंतु अपने को गुरु द्वारा चुने जाने का विचार खतरनाक भी है क्योंकि तब तुम्हारे मन में यह विचार धीरे से उठ सकता है कि ‘गुरु ने मेरा चयन

किया है, इसलिए मुझमें कुछ विशिष्टता तो होगी ही।' यह भी खतरनाक है क्योंकि इस तरह के दृष्टिकोण से तुम गुरुकृपा की भूमिका को भुला ही देते हो। तुम शायद सोचोगे कि चूंकि गुरु ने तुम्हारा चयन किया है इसलिए उनका शिष्य रहना तुम्हारा हक है। इससे तुम्हारे अहंकार में वृद्धि हो सकती है। सांसारिक जीवन बिताने वाले व्यक्ति से बढ़कर आध्यात्मिक व्यक्ति की अहं अधिक सूक्ष्म होती है।

"यही सोचना बेहतर है कि 'केवल गुरु की कृपा से ही उनके साथ हूँ। यह मेरा हक नहीं उनकी भेंट है। गुरु ने ही मुझे खोज निकाला, मैं तो बेकार था, मैं पूर्णतया खोया हुआ था, मेरा जीवन प्रयोजनशून्य था किंतु उनकी कृपा व करुणा के कारण मैं अब यहाँ हूँ। मैं किसी का अधिकारी नहीं पर वे मुझपर कृपावृष्टि कर रहे हैं।' यह दृष्टिकोण तुम्हें विनम्र बना देगा और अहंकार को दूर करने में अत्यंत सहायक होगा। सब से मुख्य बात इस बोध को बनाए रखना है। मन और वासनाओं का खिंचाव बड़ा सशक्त होता है इसलिए उनका शिकार होना और गुरुकृपा का विस्मरण करना आसान है। विनम्र होना ही आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है। विनम्रता ही भगवद्प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। उल्टे यदि तुम सोचो कि गुरु ने तुम्हारा चुनाव किया है तो तुम शीघ्र सोचना शुरू करोगे, 'दुनियाँ में बहुत लोग हैं फिर भी गुरु ने मुझे चुना। मैंने अपने पूर्वजन्मों में बहुत पुण्य किया होगा, बहुत आध्यात्मिक शक्ति अर्जित की होगी। इसीलिए गुरु ने मुझ ही को चुना, अन्य किसी को नहीं। इस संसार में जो काम मैं कर रहा हूँ वह काम मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकेगा। उन्हें मेरी ज़रूरत थी और तभी मैं यहाँ हूँ।'

"ऐसे विचार तुम पर हावी हो सकते हैं और फलतः तुम अन्यो से बदतर बन सकते हो। तुम्हारा अहं और बढ़ेगा और यह खतरनाक है। तुम्हारा व्यक्तित्व अहं से विकृत हो उठेगा। एक यथार्थ भक्त या शिष्य में बड़ी विनम्रता होगी और इससे उसमें एक प्रकार का आध्यात्मिक सौन्दर्य भी रहेगा। आध्यात्मिकता का सौन्दर्य विनम्रता में है।

"गुरु तुम्हारा चयन इसलिए करते हैं कि वे तुम्हें बचा सकें। तुम्हें चुनने के तथ्य को गुरु की भेंट समझना चाहिए, जिसके तुम योग्य नहीं

हो। वह तुम्हारा अधिकार नहीं है, उनकी कृपा व आशीर्वाद है। अगर तुम यह दृष्टिकोण नहीं अपनाते तो अहं अनजाने ही तुममें प्रवेश पाएगा।

"तुममें यह सोचने की विनम्रता होनी चाहिए, 'मैं कुछ नहीं हूँ। आप ही सब कुछ हैं। जब तुम कुछ न होने की बात महसूस करो तभी तुम सब कुछ बन सकते हो। यदि तुममें कुछ होने का भाव है तो तुम कुछ नहीं रहोगे।

सूक्ष्म अहं से सावधान

प्रश्न - "अम्मा, आपने कहा कि एक आध्यात्मिक व्यक्ति का अहंकार बड़ा सूक्ष्म होता है और वह हमें संसार को वापस धकेल सकता है। कृपया इस बात को समझा दें।"

अम्मा - "बच्चो, यह विचार कि 'मैं आध्यात्मिक हूँ, मैं आध्यात्मिक पथ पर काफी पुरोगति कर चुका हूँ', या 'मैं एक साधक हूँ', तक आध्यात्मिक प्रगति में बाधक हो सकते हैं। ऐसे विचार भी अहंकार के ही प्रकटन हैं, अहं का सूक्ष्म रूप है। तुम शायद सोचो, 'मैं बड़ा हूँ क्योंकि मैंने सब कुछ त्याग दिया है। उन सभी गृहस्थों को देखो जो भौतिक दलदल में फंसे हैं। वे सब अज्ञानी हैं।' तुम शायद सोचो कि संसारिक जीवन बिताने वाले सब तुमसे नीचे हैं। अगर तुम ऐसे विचार रखो तो उससे यही ज़ाहिर होता है कि तुम मन के कच्चे हो। इससे तुम्हारा अज्ञान ही सिद्ध होता है। संसार में रहने वाले अज्ञानी हो सकते हैं, परंतु उन्होंने आध्यात्मिक पथ का चयन तो किया नहीं है। जहाँ तक तुम्हारी बात है, तुम आध्यात्मिक पथ पर हो और तब भी तुममें आध्यात्मिक ज्ञान की कमी है। ऐसे विचार अहंकारजन्य हैं और उनको दूर करना चाहिए। यदि तुम सद्गुरु के मार्गदर्शन में हो तो तुम ऐसा गर्व महसूस नहीं करोगे। गुरु तुम्हारे दंभ को पहचान कर तुरंत निकाल देंगे। सूक्ष्म अहं अधिक शक्तिशाली होता है और उसे नष्ट करना अधिक कठिन है।

"एक सांसारिक व्यक्ति अपने जीवन की सफलताओं पर गर्व करता है और उनका ढिंढोरा पीटना चाहता है। उसका अहंकार इन बाह्य वस्तुओं

के साथ अपने संबन्ध से पोषण पाता है। उसका एक बड़ा सुन्दर घर है जिससे उसे बहुत लगाव है और जिसपर वह बहुत घमंड करता है। यह भवन उसकी अहं का आहार है। वह अपनी संपत्ति, सत्ता और प्रसिद्धी पर भी घमंड करता है। कभी-कभी बड़े पैमाने पर उनका प्रदर्शन भी करता है। तुम यह बात उसकी उपस्थिति में अनुभव कर सकोगे, उसके चाल चलन से, उसके बोलने के ढंग से भी उसका घमंड व्यक्त होगा। तुम्हारे पास ज्यों-ज्यों संपत्ति व सत्ता बढ़ती है त्यों-त्यों तुम्हारा अहंकार बढ़ेगा। तुम चाहे धनी हो या गरीब, केवल अहंकार की मात्रा में ही फर्क होगी।

“विचार ज्यों-ज्यों बढ़े त्यों-त्यों तुम्हारा अहंकार भी बढ़ेगा। इसलिए विद्वान, चिंतक और वक्ता अक्सर अन्य व्यक्तियों से अधिक घमंडी रहते हैं। समाज में जो बड़े पद पर आसीन हैं वे बड़े घमंडी रहते हैं। यदि वे आत्मसमर्पण की भावना रखें तो यह समस्या नहीं होती। वे अपने असाधारण कार्य द्वारा जनता से प्रशंसित होते हैं। अक्सर तुम जितना यश पाते हो उतना ही घमंड करते हो क्योंकि अहं सम्मान के साथ बढ़ता है। संसार में सफल बने अनेक लोगों के विषय में यही होता है। ऐसे लोगों के क्रियाकलापों व वचनों में उनका अहंकार स्पष्ट प्रकट होता है। वे उसे छिपा नहीं सकते, वे इतने अहंकार पूरित होते हैं कि उनमें अपने अहंकार को छिपाने की जगह ही नहीं रहती। परंतु ऐसे लोग भी हैं जो पद प्रतिष्ठा पाने के बावजूद विनम्र रहते हैं। वे तो अपवाद हैं।

“जो सांसारिक जीवन व्यतीत करते हैं उनमें अहंकार का होना सहज है। वह क्षमा करने योग्य है क्योंकि उनमें आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता। किंतु जिन व्यक्तियों ने अपना जीवन सत्य साक्षात्कार के लिए समर्पित किया है उनकी बात यह नहीं है। उनके जीवन की पहचान ही अहंशून्यता होनी चाहिए। उन्हें तो विनम्र और निरहंकारी होना चाहिए।

“दुर्भाग्य से ऐसा भी संभव है कि एक आध्यात्मिक व्यक्ति भी अहंकारी हो परंतु बाह्य रूप से वह विनम्र होने का अभिनय करे। वह अपने अहं को बाहर प्रकट न करने का प्रयास करता है क्योंकि वह जानता है कि आध्यात्मिक व्यक्तियों से विनम्र होने की आशा की जाती है। वह

जानता है कि लोग ऐसा बाह्य प्रकटन नापसन्द करेंगे। भौतिक संसार में भी यह सत्य है परंतु वहाँ एक फर्क है। संसार में तुम किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ मान लिए गए तो फिर देश और समाज को तुम्हारी आवश्यकता रहती है अतः तुम कुछ हद तक अहंकार का बाह्य प्रकटन भी कर सकते हो। तुम स्वार्थ सिद्धि के लिए बोल सकते हो, कार्य कर सकते हो तथापि अपनी विशेषज्ञता के कारण तुम सुरक्षित हो। तुम्हारे मालिक या जिन्होंने तुम्हें नियुक्त किया है वे तब तक तुम्हें काम से निष्कासित नहीं कर सकते जब तक उन्हें तुम्हारी जगह में तुम सा कुशल कोई अन्य व्यक्ति न मिल जाए। किंतु आध्यात्मिक जीवन इससे भिन्न है। आध्यात्मिक प्रगति विनय, निरहंकारिता और तुम्हारी वाणी विवेक से ही पहचानी जाती है।

“यदि तथाकथित आध्यात्मिक व्यक्ति अहंकारी जैसा व्यवहार करता है तो लोग उसका सम्मान नहीं करेंगे। आध्यात्मिक समाज में उसको अपयश ही प्राप्त होगा। यह जानने के कारण तुम अपना क्रोध और अन्य सभी नकारात्मक प्रवृत्तियों को दबाना सीखोगे, तुम आध्यात्मिक दृष्टि से प्रौढ़ व्यक्ति का सा व्यवहार करोगे। अहंकार अत्यधिक सूक्ष्म बन जाता है। जब तक तुम उसे बाहर प्रकट करते हो तब तक वह स्थूल तल पर रहता है। किंतु जब तुम अहंकार को जानबूझ कर भीतर छिपाए रखते हो और बाहर विपरीत रीति में व्यवहार करते हो तब वह सूक्ष्म व अत्यधिक खतरनाक हो जाता है।

“तुम अपने अहं को बाहर प्रकट कर सकते हो। यह भी हानिकारक हो सकता है, पर कम हानि होती है चूंकि कम से कम लोग धोखे में नहीं रहेंगे। वे जान जाएंगे कि तुम अहंकारी हो और अतः तुममें क्रोध, घृणा और अन्य नकारात्मक भावनाएँ भी होंगी। वे तुमसे सावधान रहेंगे और ज़रूरत पड़ने पर तुमसे दूर भी रह सकते हैं। किंतु अगर तुम चतुराई से अपने अहंकार को छिपा सको और योगी सा स्वांग करो तो? तब लोग धोखे में आ जाएंगे और यह सचमुच दगे की बात होगी। ऐसी दिखावट अधिक दिनों तक नहीं टिकेगी। तुम बहुत दिनों तक उसे छिपा नहीं सकते क्योंकि तुम्हारा अहं अपने आप प्रकट होने लगेगा।

जो भीतर छिपा है वह कभी न कभी तो व्यक्त होगा ही, चाहे कोई कितनी भी कोशिश करे, बात केवल समय की है।

"यह नई बहू के साथ सास का व्यवहार सा है। वह शुरू-शुरू में अपनी बहू से बड़ा प्यार जताएगी। वह उसे न चौका-बर्तन करने देगी न बाहर का काम, मानो वह एक अनमोल हीरा हो और जिसका अधिक उपयोग करने पर वह घिस जाएगा। सास बहू से यों कहती हुई सुनाई देगी, 'बिटिया, ऐसी बातों पर सोचना तक नहीं! यहाँ घर में बहुत सारे लोग यह काम कर सकते हैं। तुम बैठी रहो और आराम करो।' जब बड़े बेटे की पत्नी अपनी सास की ऐसी बात सुनती है तब वह मन ही मन हँसती है। उसे अनुभव से पता है कि यह सास का दिखावा है। शीघ्र ही सास अपनी असली सूरत दिखाने लगेगी। असल में होता भी यही है। सप्ताह दो सप्ताह में वही सास जो अब तक प्यार बरसाती थी, उस पर गरजती हुई मिलेगी - 'अरी, लड़की! क्या यह समझ बैठी हो कि तुम इस घर की मालकिन हो? हम तुम्हारे नौकर नहीं हैं! जाओ, चौका साफ करो।' ऐसी बात भारतीय परिवारों में असाधारण नहीं है, यद्यपि कहीं-कहीं उलटी बात भी होती है और पूरा परिवार बहू के अत्याचार सहता है। प्रारंभिक चंद सप्ताह तक वह शान्त व प्रिय रहती है। मगर शीघ्र ही उसका वास्तविक स्वभाव प्रकट होता है।

"जो लोग दूसरे लोगों को प्रभावित करने एवं उन्हें अपने वश में करने के लिए अपने अहं को छिपाते हैं उनके साथ भी ऐसा ही होता है। वे अपने अहंकार को छिपाने में कुछ समय के लिए सफल भले ही हों परंतु वह शीघ्र ही बाहर प्रकट होगा। उनका स्वभाव स्वयं ही प्रकट हो जाएगा।

"जो व्यक्ति आध्यात्मिक व्यक्ति का झूठा मुखौटा पहन लेता है वह नहीं जानता कि वह कितना भारी नुकसान कर रहा है। वह दूसरों को गलत रास्ते पर ले जाता है और अपने ही सर्वनाश का रास्ता खुद बनाता है। कुछ सीधे लोग, कुछ सत्यान्वेषी भी उसके धोखे में फंस सकते हैं। जब वे यह जान जाते हैं कि उनके साथ धोखा हुआ है, कि उन्हें गलत रास्ते पर ले जाया जा रहा है तो वे विश्वास खो बैठते हैं। तत्पश्चात्

वे आध्यात्मिकता से संबन्धित सभी बातों पर संदेह करेंगे। यहाँ तक कि वे यथार्थ गुरुओं पर भी संदेह करेंगे। ज़रा सोचो तो कि यह तथाकथित गुरुओं द्वारा समाज व मानव राशि को कितनी भारी हानि होती है? ऐसे व्यक्ति का अहंकार बड़ा सूक्ष्म होता है और उससे छुटकारा पाना बहुत मुश्किल होता है। वह अपनी महत्ता पर खुद विश्वास करने लगता है। उसके प्रवचनों को सुनने के लिए श्रोताओं की भीड़ लगती है और लोग उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं इसलिए वह स्वाभाविक रूप से गर्व करने लगता है। लोग उसे बताते हैं, 'आप इतने महान हैं, आप ज्ञानी हैं। आप कितने उज्ज्वल भाषण देते हो। आपका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है,' आदि। इस प्रशंसा व सम्मान से वह स्वयं अपने आप को महान मानने लगता है। यह विचार उसके भीतर अधिकाधिक सुदृढ़ होता जाता है और जैसे यह विचार पैठ जाता है वह अधिक सूक्ष्म भी हो जाता है। वह अपने अहंकार को बाहर प्रकट किए बिना उसे छिपाने में भी सक्षम हो जाता है। बाहर विनम्रता का आवरण पहनकर वह महात्मा होने का अभिनय करता है। परंतु सत्य के बाहर प्रकट होने में अधिक समय नहीं लगता। हालाँकि वह अन्य लोगों को धोखा देता है वह आसानी से दूसरे लोगों से धोखा खाता भी है और कभी-कभी तो वे स्वयं मूर्खों सा व्यवहार करते हैं।"

आनन्दमग्न अम्मा

आसमान पर बादल छाए थे। बारिश होने के आसार दिखाई दे रहे थे। समुद्री लहरों की ध्वनि तेज़ हुई। एक तेज़ व ठण्डी हवा बह चली। अम्मा ने आकाश की ओर देखा और अचानक समाधि में लीन हो गई। अब तक सूरज काले मेघों से पूरा ढक गया था। हालाँकि पूर्वाह्न में साढ़े ग्यारह ही बजे थे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रात होने वाली है। कुछ ही समय में बूँदा-बांदी होने लगी। गायत्री अम्मा के कमरे से एक छाता लिए नीचे आई और उन्होंने छत्री अम्मा के ऊपर फैला दी। आसीन ब्रह्मचारी जहाँ थे वहीं बैठे रहे। वे अम्मा की बगल में बारिश में ही

बैठे रहे। कुछ ही क्षणों में बारिश और तेज़ हो गई। परंतु अम्मा उसी जगह बैठी रहीं। उनकी दृष्टि आकाश पर ही टिकी थी।

कुछ क्षणों के पश्चात् अम्मा उठीं, और बारिश में भीगती हुई एक बच्चे की तरह खेलने लगीं। वे उछलती, कूदती, बीच-बीच में बरसती वर्षा में आसमान की तरफ देखतीं। वे अपनी बाहें फैलाए खड़ी रहतीं, मानो पानी की बूंदें अपनी हथेली में लेना चाहती हों। सारे आश्रमवासी थोड़ी दूर खड़े यह दृश्य देख रहे थे।

अम्मा अब पूरा-पूरा भीग गई थीं। गायत्री असहाय सी उनकी बगल में अपने हाथ में बंद छाता लिए खड़ी थी। अचानक अम्मा हाथों को अंजलि मुद्रा में उठाए, गोलाकार में घूमने लगीं। वे निम्नलिखित छंद दोहरा रहीं थीं -

आनन्दं, सच्चिदानन्दं

आनन्दं परमानन्दं,

आनन्दं सच्चिदानन्दं

आनन्दं ब्रह्मानन्दं

गीत समाप्त होने के काफी समय बाद भी अम्मा की परिक्रमा जारी रही। उनके हाथ अब भी अंजली मुद्रा में बंधे थे। उनके नेत्र बंद थे। उनमें शरीर बोध के कोई लक्षण दिख नहीं रहे थे। अम्मा अपने ही किसी दिव्य लोक में विचरण करती प्रतीत हुईं। उनके मुखमंडल पर एक विशेष कांति थी और उनके अधरों पर सुन्दर दिव्य मंदहास छाया हुआ था। वे नाचती ही रहीं। वर्षा जल उनकी काली केश-राशि से टपकता उनके गालों से नीचे बह रहा था।

किसी को पता नहीं था कि क्या किया जाए। किसी ने सुझाव दिया कि अम्मा को भीतर ले जाया जाए। मगर नीलू का विचार था कि अम्मा जब तक समाधि में हैं उनका स्पर्श करना ठीक नहीं है। वे आपस में चर्चा कर ही रहे थे कि अम्मा ने धीरे से अपना नृत्य समाप्त किया

और ज़मीन पर लेट गई। ज़मीन अब मटमैले पानी का तालाब सा लग रही थी। अम्मा वहाँ वर्षा में लेटी ही रहीं, उनके मुखमंडल पर अब भी एक विशेष आभा फैली हुई थी।

मूसलाधार वर्षा हो रही थी, सभी को अधिक चिंता होने लगी। ब्रह्मचारिणी गायत्री अम्मा की बगल में बैठी, छाता फैलाए, अम्मा को बारिश से बचाने की कोशिश कर रही थी। उन्होंने आग्रह किया कि अम्मा को भीतर ले जाना चाहिए। आखिर सभी सहमत हुए और उनके सुझाव का पालन हुआ।

ज्यों ही अम्मा को उनके कमरे में लाया गया त्यों ही गायत्री ने सभी से प्रार्थना की कि सब चले जायें ताकि वह अम्मा के गीले कपड़े बदल सकें। अम्मा बहुत देर तक समाधि में ही रहीं।

ऐसे विलक्षण व्यक्ति के विषय में जो एक क्षण में गुरु हैं, दूसरे क्षण निश्छल बालिका, और फिर कुछ क्षणों बाद समाधि अवस्था में लीन हो जाती हैं, कोई क्या बता सकता है?

ब्रह्माकारतया सदा स्थिततया निर्मुक्तबाह्यार्थधी-

रन्यावेदितभोग्यभोगकलनो निद्रालुवद्बालवत् ।

स्वप्नालोकितलोकवज्जगदिदं पश्यन्क्वचिल्लब्धधी-

रास्ते कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्यः स मान्यो भुवि ॥

- विवेकचूडामणि

निरंतर ब्रह्माकारवृत्ति से स्थित रहने के कारण जिसकी बुद्धि बाह्य विषयों से निकल गयी है और जो निद्रालु अथवा बालक के समान, दूसरों के निवेदन किए हुए ही भोग्य पदार्थों का सेवन करता है तथा कभी विषयों में बुद्धि जाने पर जो इस संसार को स्वप्न प्रपंच के समान देखता है, वह अनन्त पुण्यों के फलका भोगनेवाला कोई ज्ञानी महापुरुष इस पृथ्वीतल में धन्य है, और सबके श्रद्धा का पात्र होता है।

अध्याय - १३

दिव्यता उधार नहीं ली जा सकती

पौंड्र वासुदेव की कथा

आज अम्मा छोटे ग्रंथालय में बैठी थीं। आध्यात्मिक व्यक्ति के अहंकार की सूक्ष्मता का प्रश्न फिर से उठाया गया। एक ब्रह्मचारी ने पूछा - "अम्मा, कल आप एक आध्यात्मिक व्यक्ति के अहंकार की सूक्ष्मता पर बता रहीं थीं। आपने कहा कि कभी-कभी ऐसे लोग मूर्खों सा व्यवहार तक करते हैं। वे ऐसा व्यवहार कैसे करते हैं, वे इस हद तक भ्रमित कैसे हो जाते हैं?"

अम्मा - "बच्चो, क्यों नहीं हो सकते? जब यशस्वी होने की एवं दूसरों से सम्मान पाने की इच्छा इतनी तीव्र हो जाती है कि वह व्यक्ति के विवेक को ही ग्रसित कर लेती है तो कभी-कभी वह मूर्खों सा पेश आता है। मन विवेकहीन हो जाता है और तुम कुछ स्पष्ट नहीं देख पाते हो तो तुम दूसरों के बहकावे में आसानी से आ जाते हो। अपनी महत्ता की पहचान कराने और लोगों की तारीफ सुनने की इच्छा से तुम अपने मन की सहजता को गंवा देते हो, तुम्हारा व्यवहार कृत्रिम हो जाता है। तुम शायद दूसरे जो तुम्हारे विषय में कहते हैं उसे सच मानने लगते हो और यह समझ बैठते हो कि एक खास ढंग से बर्ताव न करने पर लोग तुम्हें महान नहीं मानेंगे। परिणामस्वरूप तुम मूर्खता कर बैठते हो। जब दूसरों की प्रशंसा से तुम इतने सम्मोहित हो जाते हो तब कोई तुम्हें उत्तम उपदेश भले ही दे तो भी कोई लाभ नहीं होता क्योंकि तुम सच को पहचान नहीं पाते।

"बच्चो, क्या तुम पौंड्र वासुदेव की कथा जानते हो, जिसने दावा

किया कि वही कृष्ण है? पौंड्र वासुदेव कारुष देश का राजा था, उन्हीं दिनों श्रीकृष्ण द्वारिका में राज करते थे। पौंड्र राजा की भूमिका से अत्यंत आसक्त था और वह अपनी प्रजा की आराधना का पात्र बनना चाहता था। वह और काशीराज, श्रीकृष्ण के दुश्मन थे। वे श्रीकृष्ण के यश से जलते थे। लोगों को श्रीकृष्ण का सम्मान व पूजा करते देख उनसे रहा नहीं गया। पौंड्र ने काशीराज की मदद से श्रीकृष्ण के खिलाफ एक षड्यंत्र रचा। उन्होंने सार्वजनिक घोषणा की कि द्वारिका में रहने वाले कृष्ण कपटी हैं। वे भगवान विष्णु के यथार्थ अवतार नहीं हैं। उन्होंने यह भी घोषणा की कि यथार्थ कृष्ण, विष्णु के यथार्थ अवतार, स्वयं पौंड्र ही हैं।

“जब लोगों ने यह बात सुनी तब उन्होंने कहा, ‘यदि पौंड्र भगवान विष्णु के असली अवतार हैं तो उन्हें अपने चतुर्भुजाओं में शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण करना चाहिए।’ लोगों की इस टिप्पणी के उत्तर में पौंड्र, जो कि अब अपने को यथार्थ विष्णु मानने लगे थे, किसी-किसी समय पर अपने कंधे से लकड़ी के दो हाथ जोड़ते ताकि वे भी प्रभु की तरह चतुर्भुज लगते। चार भुजाओं में चार दिव्य चिह्न भी धारण किए रहते थे। पौंड्र अपने इस नई भूमिका में इतने खो गए कि उन्होंने लकड़ी का गरुड़ तक बनवा लिया। दुर्भाग्य से वह लकड़ी का गरुड़ उड़ नहीं सकता था इसलिए उसे उनके रथ के ऊपर चढ़ाया गया। पौंड्र ने अपनी पत्नी को भी लक्ष्मी देवी सी वेशभूषा धारण करने का आदेश दिया। वे दोनों नगर की परिक्रमा करते हुए जनता को लकड़ी के गरुड़ पर बैठे-बैठे आशीर्वाद देते थे। राज्यभर में पौंड्र व्यंग्य के पात्र बने, अनेक लोग उन्हें पागल तक मानने लगे थे।

“पौंड्र की प्रजा में जो जन भगवान श्रीकृष्ण के भक्त थे वे अपने नरेश की इस निर्लज्ज आत्मप्रशंसक घोषणा पर क्रुद्ध हुए। किंतु वे सीधे नरेश के विरुद्ध कुछ कहने की हिम्मत नहीं रखते थे। इसके बदले वे जब कभी उन्हें उनके विचित्र रथ पर जाते देखते तब जोर-शोर से टिप्पणियाँ सुनाते। वे कहते, ‘वाह! हमारे नरेश सचमुच कृष्ण जैसे ही लगते हैं। उन्हें मोर पंख का मुकुट पहनना चाहिए। सुन्दर करकमलों में एक बांसुरी भी होनी चाहिए। यदि उनका शरीर श्यामवर्ण का हो

तो कितना मोहक होता। वास्तव में नरेश को उन सारे दिव्यास्त्रों को प्राप्त करना चाहिए जिन्हें द्वारिकावासी कपटी कृष्ण धारण किए हुए हैं। उस कृष्ण को उन अस्त्रों को धारण करने का कोई अधिकार नहीं है। वे उसके हैं ही नहीं। उन आयुधों के यथार्थ स्वामी हमारे नरेश - पौंड्र वासुदेव ही हैं।'

"पौंड्र जब कभी बाहर जाते, तब ऐसी टिप्पणियाँ सुन पड़तीं। उसके घनिष्ठ लोग, राज परिवार के सदस्य एवं दरबारी तक ऐसी टिप्पणियाँ सुनाने लगे। राजा इन बातों में आ गया। उसने अपने शरीर पर श्याम रंग लगाया और श्रीकृष्ण की वेशभूषा पहन ली, हाथ में मुरली भी धर लिया, हालाँकि उन्हें मुरली बजाना तो नहीं आता था। क्रमशः वे विश्वास करने लगे कि वे ही यथार्थतः कृष्ण या विष्णु हैं। कभी वे अपने को कृष्ण समझते कभी विष्णु।

"किंतु नाटक यों समाप्त नहीं हुआ। अपनी प्रजा की टिप्पणियों को सच मानकर पौंड्र ने श्रीकृष्ण के सारे दिव्य अस्त्रों को पाना चाहा। उन्होंने एक दूत को द्वारिका भेजा, उसने वहाँ जाकर संदेश श्रीकृष्ण तक पहुँचाया 'गोपालक, तुम कपटी हो। सुदर्शनचक्र समेत अपने सारे अस्त्र मुझे सौंप दो। उन सब पर मेरा ही अधिकार है। मैं यथार्थ कृष्ण, विष्णु का यथार्थ अवतार हूँ। या तो ऐसा करो या फिर रणभूमि में मरने की तैयारी करो।'

"श्रीकृष्ण को यह संदेश मिला तो उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा! किंतु मैं वे सारे अस्त्र उन्हें स्वयं सौंपना चाहता हूँ। पौंड्र से कहो कि वे यहाँ आकर वे सब ले लें।' श्रीकृष्ण ने उस मूर्ख नरेश को उचित शिक्षा देना चाहा।

"पौंड्र निश्चित स्थान पर अपनी सेना लिए आया। वह महाविष्णु के वेष में था। जब पौंड्र और उनकी सेना आ पहुँची तब श्रीकृष्ण उनसे मिलने के लिए तैयार बैठे थे। पौंड्र श्रीकृष्ण को देखते ही ऊँची आवाज़ में चिल्लाया - 'कपटी! मुझ पर अपनी चाल मत चलो। दिव्यास्त्र और सुदर्शन मुझे सौंप दो। वरना मरने को तैयार हो जाओ।' बाद में जब युद्ध हुआ तो श्रीकृष्ण ने पौंड्र की सारी सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। उसके बाद श्रीकृष्ण अपना सुदर्शनचक्र उंगली पर धारे खड़े हुए। वे हँसते

हुए बोले, 'पौंड्र, मैं यह अस्त्र तुम्हें सौंपने आया हूँ। ले लो। वह तुम्हारे पास आ रहा है।' श्रीकृष्ण ने दिव्य चक्र को पौंड्र को लक्ष्य कर छोड़ा। तुम अनुमान लगा सकते हो कि क्या हुआ होगा। चक्र ने पौंड्र का शिरच्छेद किया और उसका मृतशरीर धरती पर गिरा। यश और आत्मश्लाघा के प्रति राजा की आसक्ति को श्रीकृष्ण ने, जो कि पूर्ण गुरु थे, इस प्रकार नष्ट किया और उसके स्वयं निर्मित अहंकार को दूर किया।"

प्रश्न - "क्या इसका मतलब यह है कि मन व अहं से परे एक सद्गुरु ही किसी व्यक्ति को सूक्ष्म अहंकार के बंधन से छुड़ा सकेंगे?"

अम्मा - "बिलकुल ठीक। सूक्ष्म अहं को भेदने के लिए, उसके निराकरण के लिए सुदर्शन चक्र सा अत्यंत शक्तिशाली अस्त्र चाहिए। किंतु यह अस्त्र केवल सद्गुरु के पास होता है। वह यथार्थ ज्ञान का अस्त्र है, गुरु की सर्वव्यापकता व प्रभुता का चक्र है।

"जो व्यक्ति यश, सत्ता और प्रतिष्ठा के पीछे पागल है वह संसार की हर वस्तु पर कब्जा करना चाहेगा। अपने पागलपन में वह शायद घोषणा कर दे, 'मैं सबसे महान हूँ, बड़ा हूँ इसलिए सब पर मेरा हक है।' उसकी विवेकबुद्धि, सत्ता और आत्मश्लाघा के विचारों से पूर्णतः ग्रसित हो जाती है।

"जो लोग इस प्रकार अंधे हो जाते हैं उनमें ईश्वर को भी भुला देने की संभावना अधिक रहती है। दूसरों का सम्मान व श्रद्धा पाने की बड़ी सनक में वे ईश्वर तक को कभी-कभी चुनौती देते हैं। किंतु जब वे इस हद तक पहुँच जाते हैं तो यह संकेत है कि शीघ्र ही उनकी कलाई खुलेगी।

"दिव्यता उधार लेने या अनुकरण करने की चीज़ नहीं है। दिव्य प्रेम एवं अन्य दैवी गुणों की नकल नहीं की जा सकती।"



अध्याय - १४

यह रात बड़े उत्सव की थी। तिरुवातिरा का दिन था, एक खास उत्सव जो केरल भर में मनाया जाता है। (तिरु आतिरा - अगहन मास का आर्द्रा नक्षत्र) भारत में भगवान शिव और देवी पार्वती विश्व के माता-पिता माने जाते हैं। तिरुवातिरा के दिन केरल की विवाहित स्त्रियाँ उपवास करती हैं, अपने पति के मंगल के लिए प्रार्थना करती हैं। परंपरानुसार उन्हें रातभर जागरण भी करना पड़ता है। उसमें वे शिव व पार्वती का यशगान करके प्रार्थना करती हैं।

गांव की प्रौढ़ स्त्रियों का एक दल और कुछ आश्रमवासी स्त्रियाँ भी मंदिर के प्रांगण में गोलाकार में खड़ी थीं। वे तिरुवातिराकलि प्रारंभ करने जा रहीं थीं। तिरुवातिराकलि एक पुराना केरलीय लोकनृत्य है जिसे केरल की स्त्रियाँ प्रस्तुत करती हैं।

सारे आश्रमवासी मंदिर के सामने बैठे थे। अम्मा मेहँदी के झाड़ के नीचे बैठी थीं। उनके चारों ओर दस बारह बच्चे थे। कुछ बच्चे पड़ोस के तथा कुछ भक्तों के थे। अम्मा प्रमुदित भाव में थीं। उनकी दिशा से हँसी एवं बातें करने की आवाज़ आ रही थी। अम्मा क्या कर रहीं हैं यही देखने में सभी को अधिक दिलचस्पी थी, नृत्य में किसी को खास दिलचस्पी नहीं थी। यद्यपि सब की नज़र अम्मा पर ही थी तो भी सब कुछ दूरी पर ही रहे, कोई भी पास जाकर अम्मा व बच्चों के उस हृदयहारी दृश्य को किसी तरह बिगाड़ना नहीं चाहते थे।

महिलाओं ने परंपरागत गायन व नृत्य प्रारंभ किया। वे तिरुवातिराकलि का गीत गाने लगीं।

भावार्थ -

मैं तुम्हारे स्तुतिगीत गाऊँगी ओ देवी

एक वर तुम मुझे देना
जब मैं तुम्हारी महिमागान करूँ
तब एक वर देना, देवी, मेरे हृदय में आ बसना।

दुर्गति को दूर करो
हे दुर्गा, भगवती, काली
आपके दर्शनार्थ
सदा मैं प्रार्थना करती हूँ।

ओ वेदों के सार!
ध्यान करने की विधि मुझे ज्ञात नहीं
मेरे संगीत में श्रुति लय नहीं है
आनन्द में विलीन हो जाऊँ
ऐसी कृपा करना ओ वेदों के सार ।

गायत्री, कीर्ति, मुक्ति
कात्यायनी, हैमवती
मोक्षात्मिका हो तुम माँ
दाक्षायणि मुझे शरण में ले लो।

तत्त्वों को ग्रहण करने
की शक्ति देना ओ देवी।
विश्वमयी तू न हो तो
शिव का भी अस्तित्व नहीं।

यह 'वही' है

गीत उच्चस्थायी स्वर पर पहुँचा। उस क्षण अम्मा बच्चों के साथ जहाँ बैठी थीं वहाँ से उठीं और नृत्य करती स्त्रियों के बीच पहुँचीं। वे नृत्य में जब शामिल हुईं तब बहुत उत्साहित लग रही थीं, साथ ही दिव्य उन्माद भी था। उनके मुखमंडल पर ऐसा निश्छल भाव था कि वे नृत्य करती स्त्रियों के बीच एक दिव्य शिशु सी लगीं। वे स्त्रियाँ अम्मा को अपने बीच नृत्य करती पाकर प्रसन्न हो उठीं।

नृत्य के एक स्तर पर दो-दो स्त्रियाँ एक जोड़ा बनाकर खुली हथेलियों से एक दूसरे की हथेलियों पर ताली बजाती थीं। अम्मा किसी अन्य जगत में चली गई थीं, पर अपने आनन्दमय ढंग से नृत्य कर रही थीं। उनकी आंखें बन्द थीं और दोनों हाथ दिव्य मुद्राएँ प्रस्तुत कर रहे थे। उन स्त्रियों के साथ गोलाकार में नृत्य करने के बाद अम्मा ने नृत्य के घेरे के मध्य में प्रवेश किया। वे वहाँ आनन्दपूर्वक नृत्य करती रहीं। भक्त महिलाएँ देवी पार्वती के गुणगान कर रही थीं।

कुछ समय बाद अम्मा ने नृत्य बंद किया और निश्चल हो गई। उनके मुखमंडल से, उनके पूरे शरीर से दिव्य कांति का प्रसार हो रहा था। वे वैसी ही लग रही थीं जैसी वे देवीभाव के समय लगती हैं। स्पष्ट था कि वे अब भी दिव्य भावावस्था में लीन थीं। भक्त स्त्रियाँ एक-एक करके गीत गाती रहीं और नृत्य करती रहीं। अंत में अम्मा नीचे ज़मीन पर बैठ गई, वे अन्तर्मुखी थीं।

भक्तों का दृढ़ विश्वास था कि अम्मा उस समय देवी पार्वती के भाव में थीं। किसे पता? शायद अम्मा ने भक्तों के लिए यह भाव प्रकट किया हो। ब्रह्म से एकाकार हुए व्यक्ति के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। ऐसा व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उस परमात्मा के विभिन्न भावों में से कोई भी भाव, कभी भी प्रकट कर सकता है।

अंततः जब अम्मा अपनी सामान्य स्थिति में पहुँची तब एक भक्त ने उनसे पूछा, "अम्मा, हमें ऐसा लग रहा था कि आप देवी पार्वती के भाव में थीं।"

अम्मा ने पहले अपनी ओर इशारा किया और उसके बाद ऊपर की ओर। वे बोलीं, "यह वही है।" कुछ विश्राम के बाद उन्होंने बातें जारी रखीं, "वह चाहे प्रकट हो चाहे न हो, यह वही है। इसे भूल कर शरीर न समझना। शरीर केवल आवरण है। यह आवरण के परे की अनन्तता है।"

अम्मा के मुखमंडल की अनिर्वचनीय अभिव्यक्ति और उनके वचन चेतना के उच्चतम तल से सीधे आते से प्रतीत हुए। यह घोषणा इतनी गहन व भेदक थी कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय को झकझोर गई।

साधकों में स्त्रीसुलभ गुणों का महत्व

कुछ क्षण मौन में बीते। एक आगंतुक भक्त से प्रश्न पूछे बिना नहीं रहा गया। उसने प्रश्न किया, "अम्मा, मैंने दो तरह के शिष्यों के बारे में सुना है। एक वे जो मुख्यतः बुद्धिवादी हैं और दूसरे वे जिनकी प्रकृति स्त्रीसुलभ होती है। मुझे नहीं लगता कि मैंने इस बात का भाव ठीक प्रकार से समझा है। क्या आप इस तत्त्व पर प्रकाश डालेंगी?"

अम्मा - "आत्मसाक्षात्कार प्रेम, भक्ति और खुलेपन के बिना नहीं पाया जा सकता। इन के होनेपर ही व्यक्ति सद्गुरु से यथार्थ ज्ञान पाने का पात्र बनता है। इसलिए जो सत्यान्वेषी मुख्यतः बुद्धिनिष्ठ है उसे बुद्धि और हृदय के बीच में संतुलन बनाने की कोशिश करनी चाहिए। उसमें अपने गुरु के प्रति अपार प्रेम भी होना चाहिए और साथ ही उसे अपने गुरु की सर्वव्यापी, सर्वज्ञ प्रकृति का भी ज्ञान होना चाहिए।

यदि बुद्धि की ओर तुम्हारा आवश्यकता से अधिक झुकाव है तो उससे असंतुलन पैदा होगा और तुम्हारे अहंकारी, दंभी बनने की भी अधिक संभावना रहती है। बुद्धि तर्कशील है। वह चीरफाड़ करती, काटती है। वह जोड़ नहीं पाती। वह आस्था व प्रेम के विकास को अवरुद्ध करेगी और ये दोनों एक साधक के आन्तरिक विकास के लिए अनिवार्य तथ्य हैं। बुद्धि का आधिक्य भी साधक के लिए अच्छा नहीं है चूंकि इससे गुरु के प्रति प्रेम और विश्वास में कमी हो सकती है। प्रेम, विनय और

आत्मसमर्पण के अभाव में गुरु भी तुम्हें यथार्थ ज्ञान नहीं दे सकेंगे।

“मुख्यतः बुद्धिनिष्ठ साधक को तब तक अनुशासित करना कठिन होगा जब तक एक सद्गुरु उसका दायित्व स्वीकार नहीं करते। सद्गुरु ही उसके अहं के परत को तोड़कर उसके स्वरूप को बाहर प्रकट करा सकते हैं। वह बाह्य रूप से बुद्धिनिष्ठ भले ही रहे, भीतर वह भक्तिपूर्ण रहेगा। दोनों गुणों के बीच पूर्ण संतुलन रहेगा।

“गुरु हमारे अहंकार को नई दिशा देते हैं और वह अहं संसार के लिए लाभकारी बन जाता है। उसका स्वभाव सुसंस्कृत व सुगढ़ हो जाएगा। गुरुकृपा से उसका अहंकार नियंत्रण में रहेगा।

“जब अहं गुरुकृपा से नियंत्रणाधीन हो जाता है तब शिष्य हर काम गुरु के नाम पर करता है। गुरु सब कुछ उसके माध्यम से कराते हैं और उसमें उसकी कोई भूमिका नहीं रहती, वह उपकरण मात्र बन जाता है। उसका मनोभाव यों रहेगा, ‘मैं तो केवल उपकरण हूँ। मेरे सर्वशक्तिमान गुरुदेव सब कार्य मेरे माध्यम से कराते हैं।’ वह सब का श्रेय गुरु को ही देता है। परंतु उसमें बहुत उत्साह और धैर्य होता है। विकट और असाध्य से लगने वाले कार्यों को साहस व प्रतिभा से करने की हिम्मत रखता है, उन्हें लक्ष्य तक पहुँचाने की शक्ति रखता है।

“किंतु शिष्य के अहं की काट-छाँट करने, उसे नूतन रूप देकर उसे पुनः बनाने की बात एक सद्गुरु के लिए ही संभव है। यदि ऐसा साधक गुरु का आश्रय ग्रहण नहीं करता या एक अपूर्ण गुरु उसको प्रशिक्षण देते हैं तो आगे उसकी प्रकृति में पूर्व से अधिक, किसी न किसी तरह का असंतुलन होगा। आगे चलकर इसका दूसरे व्यक्तियों एवं पूरे समाज पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। शीघ्र ही वह व्यक्ति स्वयं एक गुरु बनने की कोशिश करेगा। तुम उसे अपना आश्रम बनाने या शिष्यों को जुटाने के श्रम में संलग्न पाओगे।

“श्रीराम भक्त हनुमान में हम पुरुष व स्त्री दोनों के गुणों का सुन्दर समावेश देख सकते हैं। उन्होंने सारे कार्य अपने प्रभु के नाम पर ही किए। किसी का कोई श्रेय स्वयं नहीं लिया। यद्यपि हनुमान बहुत कठिन

कार्यों को करने में विजयी रहे तथापि वे अपनी किसी भी सफलता पर गर्व नहीं करते थे। उलटे वे श्रीराम के विनम्र एवं आज्ञाकारी सेवक रहे। 'मेरी शक्ति व साहस से नहीं, केवल प्रभु की कृपा से ...', यही रहा हनुमानजी का मनोभाव।

"स्त्रीसुलभ गुणोंवाले शिष्य बिलकुल भिन्न होते हैं। वे लोगों के सामने जा कर भाषण नहीं देना चाहते, न ही वे मान-सम्मान चाहते हैं। वे आत्मसाक्षात्कार पाने के विषय में भी चिंतित नहीं होते। उनकी एकमात्र अभिलाषा गुरु की उपस्थिति में रहने और उनकी सेवा करने की होती है। यही उनकी तपस्या है। जहाँ तक उनका सवाल है यही आध्यात्मिकता की चरम सीमा है। उनके लिए उनके गुरु से बड़ा और कोई सत्य नहीं होता। उनका मनोभाव होता है - 'मेरे गुरुदेव मेरे सर्वस्व हैं।' ऐसे शिष्य का हृदय गुरु के प्रति सदा प्रेम व ममता से भरा रहता है। यह संबन्ध तर्क या युक्ति से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम से ही इसकी तुलना हो सकती है - प्रेम, प्रेम, प्रेम और प्रेम, उमड़ता, छलकता प्रेम! केवल वही रहता है। वे और किसी चीज़ की परवाह नहीं करते।

अम्मा ने गौतम बुद्ध की एक कहानी सुनाई -

"एक दिन एक खास शिष्य अचानक लापता हो गया। उसका कहीं पता नहीं लगा। सात दिन बीत गए। फिर भी कोई नहीं जान सका कि वह कहाँ है। फिर एक दिन बुद्ध ने उसे आश्रम की छत पर लेटा पाया। बुद्ध को पता था कि वह वहाँ है और यह भी कि उस शिष्य को निर्वाण प्राप्त हो गया है। बुद्ध ने उसका हाथ थामा और कहा, 'मुझे ज्ञात है कि तुम निर्वाण पा चुके हो।'

शिष्य ने कहा, 'प्रिय गुरुदेव, मुझे मालूम है कि मुझे निर्वाण की प्राप्ति हो गई है। और इस बात की पुष्टिकरण की ज़रूरत नहीं है। वस्तुतः मैं आपके पुष्टिकरण से ही डरता था क्योंकि आगे आप मुझसे यही कहेंगे कि - 'चूँकि अब तुम निर्वाण पा चुके हो इसलिए जाओ और लोगों का मार्गदर्शन करो। तुम्हें संसार भर में सत्य का संदेश फैलाना है।' प्रभु, मेरा विचार है कि आपकी सन्निधि में अज्ञानी की दशा में

उपस्थित रहना ही, ज्ञानी के रूप में संसार में विचरने से अच्छा है।'

"स्त्रीसुलभ गुणसंपन्न शिष्य का यही दृष्टिकोण होता है। वह अपने गुरु के साथ बड़ी घनिष्ठता का अनुभव करेगा। उसका हृदय गुरु के प्रति प्रेम से इतना भरा रहता है कि वह सदा गुरु की सन्निधि में रहना चाहता है। इसी को वह जीवन की पराकाष्ठा समझता है। उसके लिए यही उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धि है।"

सद्गुरु - विश्व और उससे परे

प्रश्न - "अम्मा, मैंने आपको कहते सुना है कि गुरु के सामने पूर्ण विनय से नतमस्तक होना संपूर्ण अस्तित्व के सामने नतमस्तक होना है। आपके इस कथन का भाव कृपया समझा दें।"

अम्मा - "बच्चो, जब तुम पूर्णतः अहंकार रहित हो जाते हो तभी तुम सारी सृष्टि के सामने नतमस्तक हो सकते हो। जब कोई अहं की सीमाओं को लाँघ जाता है तो वह मन की सीमाओं से भी परे हो जाता है और सर्वव्यापी आत्मा से एकाकार हो जाता है। जब तुम समस्त सृष्टि को अपनी ही आत्मा के रूप में देखते हो तो तुम केवल अपना सिर नवाकर सब कुछ स्वीकार कर सकते हो। जब तुम अहंकार को पार कर जाते हो तो उसका अर्थ है कि तुम शून्य बन जाते हो। किंतु शून्य आकाश की तरह तुम सर्वस्व बन जाते हो, समस्त सृष्टि बन जाते हो।

"श्रीकृष्ण के बचपन में एक बार वे अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे। जैसे कि बच्चे साधारणतया करते हैं वे अपने ही काल्पनिक लोक में, काल्पनिक खिलौनों से खेल रहे थे। अपने खेल में वे मग्न थे, आनन्द ले रहे थे। कृष्ण अपने सखाओं सहित भोजन करने जा रहे थे। एक बच्चे ने सबको काल्पनिक चावल परोसा - यानि सबके सामने मुट्ठी भर रेत रख दी। अन्य सब बच्चे अभिनय कर रहे थे कि उन्हें इस काल्पनिक भोजन खाने में बहुत आनन्द आ रहा है परंतु श्रीकृष्ण तो रेत उठाकर सचमुच खाने लगे। श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम और अन्य बालक यशोदा मैया के पास तुरंत भागे-भागे गए और उन्हें सारा हाल बताया। यशोदा

मैया ने कृष्ण को पकड़ लिया और उनसे मुँह खोलने को कहा। श्रीकृष्ण ने अपना मुँह खोला, और यशोदा मैया ने उनके मुँह के अन्दर समस्त ब्रह्मांड के दर्शन पाये। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र, ग्रह, समस्त ब्रह्माण्ड देखा। उन्होंने पर्वत, घाटियाँ, वन, वृक्ष, पशु-पक्षी सब देखे। यशोदा मैया ने कृष्ण के अन्दर सारा विश्व देखा।

"इसी प्रकार कुरुक्षेत्र युद्ध के दौरान श्रीकृष्ण अर्जुन को जब गीता का उपदेश दे रहे थे तब अर्जुन के चाहने पर भगवान ने अर्जुन को अपना विश्वरूप दिखाया। अर्जुन ने भगवान के भीतर सारे विश्व का दर्शन किया। उन्होंने प्रभु में कौरवों और पांडवों तक के दर्शन किये।

"इसका अर्थ क्या है? इसका भाव यह है कि संपूर्ण विश्व सद्गुरु में समाहित है। श्रीकृष्ण सद्गुरु थे और यथार्थ सद्गुरु ईश्वर ही हैं। उनकी चेतना विश्व चेतना से अभिन्न है। वही चेतना सृष्टि में और सृष्टि के माध्यम से भासमान है। ऐसे महान गुरु के अनन्त शरीर एवं असंख्य नेत्र होते हैं। वे स्वयं अनन्त हैं। ऐसे गुरु के चरणों पर पूर्ण विनय से समर्पण करना संपूर्ण अस्तित्व के चरणों पर समर्पण करना ही है, संपूर्ण सृष्टि के सामने सिर झुकाना है।

"उस अवस्था में तुम पहचानते हो कि कोई चीज़ तुमसे भिन्न या अलग नहीं है। संपूर्ण अस्तित्व के सामने सिर झुकाना पूर्ण स्वीकृति की स्थिति है। तुम अपने जीवन में उठती परिस्थितियों से संघर्ष करना छोड़ देते हो। स्पर्धा और टकराव तो तभी होते हैं जब तुममें अहंकार होता है, जब तुममें शरीर बोध होता है। जब तुम अहं की बेड़ियों को तोड़ कर फेंक देते हो तब संघर्ष संभव नहीं है। तुम केवल स्वीकार कर सकते हो।

"अहंकारी व्यक्ति अपने को छोड़ और सभी को अज्ञानी व मूर्ख समझता है। एक यथार्थ महात्मा हर किसी को अपना ही आत्मस्वरूप मानते हैं। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में कुछ भी टुकराया नहीं जा सकता, केवल स्वीकार ही किया जा सकता है। आकाश सब स्वीकार करता है चाहे वह भला हो या बुरा। नदी सब को स्वीकार करती है। सागर सब को स्वीकार करता है। जब तुम विश्वसम विशाल हो जाओगे तब

हर वस्तु को, सभी वस्तुओं को अपना सकोगे। जब तुम्हारा मन व अहं विलीन हो जाता है तब तुम अनन्त बन जाते हो।

“अंतरिक्ष एवं प्रकृति कारखाने से उठती दूषित वायु और फूलों की महक को समभाव से स्वीकार करते हैं। वे सभी को स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार यथार्थ महात्मा सब को, चाहे वह नकारात्मक हो या सकारात्मक, स्वीकार करते हैं। वे निःस्वार्थ प्रेम और अहैतुक करुणा के धाम हैं अतः वे बिना किसी शर्त के प्रत्येक को स्वीकार करते हैं और सभी पर कृपा बरसाते हैं, सभी को अनुग्रह देते हैं।

“बच्चो, क्या तुमने यह कहानी सुनी है? एक कुंवारी देहातिन कन्या ने बच्चे को जन्म दिया। पहले तो उसने यह कहने से साफ इन्कार कर दिया कि बच्चे का पिता कौन है। जब लोगों ने सवाल पर सवाल किए तब उसने एक महान एवं सर्वसम्मानित गुरु का नाम बताया जो ग्राम के बाहर ही रहते थे। कन्या के माता-पिता और अन्य ग्रामवासी उस गुरु के आश्रम गए, उनकी कुटिया में बलपूर्वक घुस गए और उन्होंने उनका घोर अपमान किया, मारा-पीटा और उनपर पाखंडी होने का ठप्पा लगा दिया। वे बच्चे को उनके पास ले आए और सब ने उनसे बच्चे की जिम्मेवारी लेने को कहा। गुरु ने बच्चे को अपनी बाहों में लिया, प्यार से उसे देखा और कहा, ‘ऐसा ही हो।’ उसके बाद महात्मा ने उस बच्चे को बड़े प्यार से पाला पोसा। जितना प्रेम एक माँ अपने बच्चे पर बरसाती है उतने प्रेम से, उतनी ममता से उन्होंने उस बच्चे को पाला। उनका नाम तो कलंकित हो चुका था, सभी ने उनका मानों बहिष्कार ही कर दिया - ग्रामवासियों ने ही नहीं, उनके अपने शिष्यों ने भी। परंतु सब के छोड़ने पर भी महात्मा ने शान्त मन से कहा, ‘ऐसा ही हो।’ एक साल गुज़र गया। उस बच्चे की माँ को अपने अपराध का बोध खाये जा रहा था और अन्ततः उसने बताया कि बच्चे का पिता पड़ोस का एक युवक है, न कि वह साधु। उसके माता-पिता, ग्रामवासियों और शिष्यगणों को पछतावा हुआ। वे सब महात्मा के पास गए। सब उनके चरणों में गिरकर क्षमायाचन करने लगे। लड़की के माता-पिता ने बच्चे को लौटाने को भी कहा। अविचलित, महात्मा मुस्कुराए और उन्होंने बच्चे

को लौटा दिया। उन्होंने हर व्यक्ति को आशीर्वाद दिया और कहा, 'तथास्तु, ऐसा ही हो।'

एक यथार्थ महात्मा का दृष्टिकोण ऐसा होता है। वे अस्तित्व के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। किसी को ठुकराना उनकी आदत नहीं। वे जीवन को या जीवन के किसी अनुभव को 'ना' नहीं कहते। जीवन जो भी परिस्थिति प्रस्तुत करता है वह सभी को स्वीकारते हैं। वे न श्राप देते हैं न ही बदले की भावना रखते हैं, वे सिर्फ क्षमा करना और आशीर्वाद देना जानते हैं।

"मानव पर ईश्वर कृपा का आधिक्य बरसा है परंतु मानव हर अनुग्रह को श्राप में बदल देता है। हमारा यह जीवन ही एक अनुग्रह है। हमारे मन, शरीर का प्रत्येक अवयव, स्वास्थ्य और हमारी संपत्ति, सभी भगवद् देन हैं, सभी उनका आशीर्वाद है। परंतु हम इन उपलब्धियों का क्या करते हैं? हम अपने हाथों का प्रयोग बुरे काम करने के लिए करते हैं, हमारे पांव हमें वर्जित स्थानों पर ले जाते हैं, हम अपनी आँखों का प्रयोग कुरूपता देखने के लिए करते हैं। हमारे मन अधार्मिक योजनाएँ बनाते हैं, दूसरों की बुराई की कामना करते हैं, हम विनाशकारी वस्तुओं का आविष्कार करने के लिए बुद्धि का उपयोग करते हैं। हमने अपने जीवन को अपने लिए एवं अन्यो के लिए भी श्राप सा बना दिया है।

"एक बार सब जीव ब्रह्माजी के पास पहुँचे। वे सब जीवन के दुःख व कष्ट से छुटकारा चाहते थे। सुअर पहले आगे बढ़ा। आँसू बहाते हुए उसने निवेदन किया, 'ओ विधाता, इस कष्ट से बचने का कोई उपाय है क्या? मेरी जाति को क्या कोई उम्मीद है?' विधाता ने अनुकूल भाव में सिर हिलाया और कहा, 'हाँ, हाँ, ज़रूर।' आगे बैल आया, फिर कुत्ता और उसके बाद हाथी। वे सब रो पड़े और सबने एक ही सवाल किया। विधाता ने उन सब से कहा, 'तुममें से प्रत्येक के लिए आशा है, कुछ गुंजाइश है।' उसके बाद मानव आगे बढ़ा। उसकी प्रार्थना भी वही थी। विधाता ने मानव की तरफ देखा और अकस्मात् विधाता ही रो पड़े।'

सभी ठहाका मारकर हँसने लगे। जब सब शान्त हुए तब अम्मा ने

आगे कहा, "आज तिरुवातिरा का दिन है। आज शिव व पार्वती के स्तुतिगीत गाए जाते हैं। इसलिए आओ हम भी गायें और नृत्य करें।" अम्मा अपने आप परमभक्ति के गरिमामय भाव में गीत गाने लगीं। हर व्यक्ति ने बड़े प्रेम व उत्साह से अम्मा के गीत का साथ दिया। अम्मा गीत के टेक बहुत ऊँची आवाज़ में बारंबार गाती रहीं।

‘इन्दुकलाधर’ -

शंभो शंकर शंभो शंकर शंभो
शिव शंभो शंकर शंभो शंकर

इन्दुकलाधर गंगा जटाधर
शंभो शंकर गौरीशा
पन्नग भूषण परिमल गात्रा
पावन चरणा परमेश्वरा

आदि देवा दीनजनेशा
सांबसदाशिव वरदहरे
देवादिजन सेवित चरणा
शूलपाणि! दुरित हरे!

पर्वतनन्दिनी प्रियवदना देव
मम ताप हर! तव शरणं
करुणालय कैलासनिवासा
शरणागत तव पदशरणम् ।

सभी आनन्दमग्न लग रहे थे। बीच में अम्मा उठकर नृत्य करने लगीं।

सभी अम्मा के साथ उठे।

भक्तों ने तालियाँ बजाते ज़ोर से गाते अम्मा के चारों तरफ घेरा सा बना लिया। जब वे शंभो शंकर शंकर शंभो गा रहे थे तब धीरे से तालबद्ध गति से अम्मा की परिक्रमा कर रहे थे और अम्मा उस घेरे के बीच में परमानंद में नृत्य करती रहीं।

एक सद्गुरु के साथ रहने का अनुभव अवर्णनीय है। उनकी सन्निधि में निरंतर उत्सव सा वातावरण रहता है, प्रत्येक क्षण उत्सव मनता है। उत्सव शब्द का संस्कृत में मूल शब्द है उत्पन्न जिसका अर्थ है बहना याने छलक कर बहना है। सारे त्योहार शुद्ध आनन्द व चेतना के उमड़ कर बहने के प्रतीक हैं। खासकर मंदिर में मनाए जाने वाले उत्सव आध्यात्मिक शक्ति और आनन्द के छलकते प्रवाह के प्रतीक हैं। प्रार्थना, ध्यान, पूजा एवं मंत्रजप से उत्पन्न शक्ति से मंदिर का वातावरण स्पंदित हो उठता है, सारा वातावरण दिव्य तरंगों से ओतप्रोत हो उठता है। वह आगे मंदिर की चार दीवारी को पार कर पूरे गांव या शहर में छलकती है। वह पूरे वातावरण को पवित्र कर देती है। मंदिरों में प्रतिवर्ष उत्सव मनाने का ध्येय यही है।

अम्मा की उपस्थिति में यह निरंतर अनुभव होता है क्योंकि अम्मा से दिव्य शक्ति की एक अजस्र धारा नित प्रवाहित होती है। यह ऊर्जा अम्मा से छलक कर भक्तों के हृदय में प्रवेश करती है। वे उसका पान करते-करते दिव्य शक्ति का अनुभव करते हैं। इस संदर्भ में यही हो रहा था और सदैव यही होता है।

नृत्य व गीत जारी रहा। एकाएक अम्मा वृत्त से बाहर निकल पड़ीं, आश्रम के दक्खिनी छोर की ओर चलीं, सागर ताल के किनारे कगार पर पहुँचीं। स्त्रियों ने एकाएक नृत्य बंद किया, मानो बिजली का स्विच बंद किया हो। सब देख रहे थे कि अम्मा क्या करेंगी! किसी ने उनका अनुगमन नहीं किया क्योंकि ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अम्मा एकांत चाहती थीं। एक वरिष्ठ ब्रह्मचारी ने सबसे जाकर ध्यान करने को कहा। कुछ क्षणों में सभी विदा हुए। सारी रात ध्यान व प्रार्थना में बीती।

अध्याय - १५

क्या गुरु के बाह्य रूप से लगाव महत्वपूर्ण है?

अम्मा एक पाश्चात्य भक्त के प्रश्न का उत्तर दे रहीं थीं।

प्रश्न - "अम्मा, कुछ लोगों का आपके बाह्य रूप से बड़ा लगाव है। वे आपको इतना चाहते हैं कि उनमें आपकी शारीरिक सन्निधि में सदा रहने की तीव्र इच्छा है। पर ऐसे भी लोग हैं जिनमें ऐसा लगाव नहीं है, यद्यपि वे ईश्वर साक्षात्कार यथार्थतः चाहते हैं। उनको आपसे प्रेम तो है पर उनका मत है कि आपके बाह्य रूप से ममता दुःख का कारण होगी अतः वे दूर ही रहते हैं। अम्मा क्या गुरु के शारीरिक रूप से लगाव अनिवार्य है या क्या बाह्य रूप से ममता रखे बिना ईश्वर साक्षात्कार की इच्छा रखना ही पर्याप्त है?"

अम्मा - "यथार्थ साधक में अनिवार्यतः पूर्ण समर्पण और स्वीकृति की ही आवश्यकता है। आध्यात्मिकता की प्रारंभिक सोपानों में सर्वस्व समर्पण एवं सब कुछ स्वीकार करना कठिन है, खासकर यदि तुम्हारा मार्गदर्शन करने के लिए कोई नहीं है, कोई आदर्श व्यक्ति नहीं है जिनके उदाहरण का तुम अनुगमन कर सको। व्यक्ति में कम से कम समर्पण करने की इच्छा तो होनी चाहिए। परंतु ऐसी इच्छा के होने पर भी संदेह उठ सकता है कि समर्पण किसका हो। आत्मसाक्षात्कार पाने तक तुम्हें आध्यात्मिकता के विभिन्न पहलुओं के बारे में अस्पष्ट सा ज्ञान ही होगा। तुम्हारा चंचल, शंकालु मन हमेशा शंकाएँ उठाएगा। यदि तुम्हारा मार्गदर्शन करने के लिए कोई न हो तो तुम उलझन में रहोगे, और आसानी से पथभ्रमित हो जाओगे। अतः प्रारंभिक तलों में एक गुरु की आवश्यकता है, ऐसा कोई जिससे तुम संबन्ध स्थापित कर सकते हो, जो तुम्हारे जस्बादों को समझ सकता है और जिनसे तुम यथार्थ समर्पण और स्वीकृति सीख

सकते हो। स्वीकृति और समर्पण ऐसे विषय नहीं हैं जो सिखाए जा सकते हैं, किताबों से, स्कूल से या विश्वविद्यालय से यह सीखा नहीं जा सकता। गुरु की शारीरिक सन्निधि से तुम जो सशक्त प्रेरणा पाते हो उससे ये गुण तुम्हारे मन में विकसित होंगे क्योंकि गुरु समस्त दिव्य गुणों की मूर्ति होते हैं। गुरु में तुम यथार्थ समर्पण व स्वीकृति देख पाओगे और यों तुम्हें ऐसा यथार्थ उदाहरण मिलता है जिसे तुम जान-समझ सकते हो, कुछ ठोस लक्ष्य जिससे तुम प्रतिबद्ध हो सकते हो। गुरु की गहन प्रभावशाली सन्निधि तुम्हारे मन में गुरु के प्रति गहन प्रेम उत्पन्न करती है। इससे तुम दोनों में घनिष्ठ संबन्ध जुड़ता है। जब भीतर शुद्ध प्रेम का उदय होता है तभी समर्पण व स्वीकृति सामान्यतः रूपायित होती हैं।

प्यार करती माँ के समान

“आध्यात्मिक प्रेम के प्रारंभ में यह मनोभाव रहता है कि ‘मैं आपका भक्त, शिष्य, सेवक या प्रेमी हूँ और आप मेरे प्रभु, गुरु या प्रेमी हैं।’ इस प्रारंभिक दशा में तुम गुरु से प्रेम करते हो और इसलिए तुम गुरु के बाह्य रूप को लाँघ नहीं सकते। तुम गुरु के बाह्य रूप से इतने जुड़ जाते हो कि तुम उसको पार करना ही नहीं चाहते। चूँकि यह प्रारंभिक सीढ़ी है तुम समर्पण व स्वीकृति के पाठ सीख ही रहे होते हो, तुममें वे पूर्ण नहीं होते। आध्यात्मिक जगत में तुम एक नवजात शिशु से होते हो, तुम्हें आध्यात्मिकता के विषय में कुछ भी नहीं आता। जैसे बच्चा माँ के दूध को छोड़ अन्य कुछ नहीं पीता और माँ को छोड़ अन्य कुछ नहीं जानता वैसे ही तुम्हारे भीतर जो आध्यात्मिक शिशु है वह तुम्हारे गुरु के रूप और उनके सामीप्य को ही जानता है। जहाँ तक तुम्हारा सवाल है गुरु का बाह्य रूप ही आध्यात्मिकता का संपूर्ण संसार है। तुम उसके प्रति अत्यधिक ममता रखते हो। तुम्हें अपने गुरु की शारीरिक सन्निधि और ऊष्णता की ज़रूरत पड़ती है। तुम उसके लिए सदा व्यग्र रहते हो।

“बच्चा अपनी हर इच्छा को व्यक्त करने के लिए, चाहे वह भूख हो, प्यास हो या दर्द हो, सिर्फ रोना ही जानता है। उसी प्रकार आध्यात्मिकता

के प्रारंभिक दिनों में तुम्हारे पास अपने हृदय की बात ज़ाहिर करने का एक ही उपाय होता है, तीव्र उत्कंठा के आँसू बहाना। गुरु तुम्हें अपने प्रेम से बांध लेंगे और वे तुम्हारे जीवन के केंद्रबिन्दु बन जाएँगे। उस दिव्य, अहैतुक प्रेम में कुछ भी कहने को नहीं रह जाता। तुम बस, प्रेम के आँसू मौन हो बहाते हो।

"तुम आध्यात्मिकता में शिशु हो। आध्यात्मिक जगत तुम्हारे लिए एक संपूर्ण अपरिचित और विचित्र संसार है। शिशु को माँ के स्पर्श की ऊष्णता एवं दूध की आवश्यकता है। माँ बच्चे के दिल की बात जानती है और उसके लिए सब कुछ करती है। उनके स्तन में सहज रूप से दूध उमड़ आता है, खासकर जब बच्चा भूखा होता है। जब बच्चे को कोई तकलीफ या दर्द हो तो माँ को इसका सहज अनुभव हो जाता है। बच्चा मल-मूत्र में पड़ा हो तो माँ आकर बच्चे को नहलाती है और नए कपड़े पहनाती है। माँ की लोरी सुनते-सुनते बच्चा सोता है। बच्चा माँ के बिना जीवित नहीं रह सकता। माँ या माँ समान किसी व्यक्ति का होना बच्चे के समग्र विकास के लिए अनिवार्य है। यथार्थ माँ बच्चे के शारीरिक ही नहीं वरन् उसके मानसिक पोषण का भी ख्याल रखती है। बच्चा पूर्णतः माँ पर निर्भर रहता है। बच्चे के लिए माँ इस संसार की सबसे सुन्दर व्यक्ति हैं। चूँकि वह माँ से इतना घनिष्ठ होता है इसलिए उसकी सारी कल्पनाओं और स्वप्नों के केन्द्र में उसकी माँ होती है।

प्रारंभिक स्तरों में शिष्य के लिए गुरु की भूमिका ऐसी होती है। ऐसा कहना कि गुरु एक सच्चे शिष्य के लिए सर्वस्व हैं, भगवान से भी अधिक महत्व रखते हैं, अतिशयोक्ति नहीं है। जैसे माँ शिशु के लिए सर्वस्व हैं वैसे ही गुरु शिष्य के लिए सर्वस्व हैं। और सच कहा जाए तो जितना ख्याल एक माँ अपने बच्चे का रखती है उससे कई अधिक ख्याल एक गुरु अपने सच्चे शिष्य का रखते हैं।

किंतु एक शिशु सदा के लिए शिशु नहीं रहता। वह माँ के लाड़-प्यार में बड़ा हो जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक शिशु गुरु के मार्गदर्शन में बड़ा होता है, पर उसकी वृद्धि आन्तरिक होती है। जब आध्यात्मिक शिशु बड़ा होता है तब गुरु का मातृभाव धीरे से पितृभाव में बदल जाता

है, गुरु में अनुशासक का भाव जागृत होता है। यह अनुशासन शिष्य को विराग, आत्मसमर्पण और स्वीकृति, केवल गुरु के बाह्य रूप के प्रति ही नहीं वरन् संपूर्ण सृष्टि के प्रति, सिखाने के लिए होता है। गुरु केवल शरीर ही नहीं हैं, वे तो संपूर्ण सृष्टि में, सभी में भासमान चैतन्य हैं अतः वे शिष्य को संपूर्ण सृष्टि के सम्मुख नतमस्तक होना सिखाते हैं। यह प्रशिक्षण शिष्य को संकुचित मनःस्थिति से ऊपर उठाता है, उसका दृष्टिकोण अधिक विकसित हो जाता है। वह शिष्य तब पहचानेगा कि समस्त सृष्टि उसके गुरु के सिवा अन्य कुछ नहीं। गुरु के प्रशिक्षण से शिष्य यह ग्रहण कर लेगा कि गुरु केवल भौतिक शरीर नहीं वरन् सर्वव्यापी चैतन्य हैं। ज्यों-ज्यों शिष्य आन्तरिक विकास पाता है, परिपक्व होता है त्यों-त्यों वह अधिकाधिक स्वतंत्र बनता है, अर्थात् शिष्य अधिकाधिक आत्मनिर्भर होता है।

“प्रेम की अंतिम दशा में प्रेमी व प्रेयसी दोनों अभिन्न हो जाते हैं। इसके आगे भी एक स्थिति आती है जहाँ प्रेमी, प्रेयसी एवं प्रेम नहीं रहते। यह दशा अवर्णनीय है। गुरु अंततः तुम्हें इसी स्तर पर पहुँचाते हैं।

“सद्गुरु की कार्य करने की रीति अवर्णनीय है। जन्मदात्री माँ से भिन्न, गुरु कभी शिष्य को अपने से नहीं बांधते, उल्टे वे शिष्य को सारी सीमाओं व शरीर के बंधनों के पार ले चलते हैं। वे उसे पूर्णतः स्वतंत्र व मुक्त करा देते हैं। यद्यपि शिष्य विकास की प्रारंभिक दशा में गुरु के बाह्य रूप के प्रति गहरी ममता अनुभव करेगा तो भी उसे बंधन नहीं कहा जा सकता। भौतिक तल पर रहने वाले दो व्यक्ति एक दूसरे को बांध सकते हैं। मगर एक यथार्थ गुरु किसी को बांध नहीं सकते। कारण यह कि गुरु शरीर नहीं हैं। जैसे हमारे मित्र-संबन्धी वैयक्तिक हैं गुरु वैसे वैयक्तिक नहीं हैं। गुरु वैयक्तिक हो सकते हैं और अवैयक्तिक भी। वैयक्तिक संबन्ध हमें तभी बंधनस्थ करते हैं जब हम किसी व्यक्ति के बाह्य रूप से बंधे हो। जब तुम गुरु से प्रेम करते हो तब वह किसी सीमित व्यक्ति के प्रति प्रेम नहीं है वरन् शुद्ध चैतन्य के प्रति प्रेम है। उनका स्वरूप कालक्रम में अधिकाधिक स्पष्ट होगा। जैसे तुम अधिक सजग होगे, तुम्हारा आन्तरिक विकास होगा, या दूसरे शब्दों में गुरु की

यथार्थ प्रकृति के विषय में तुम्हारी सजगता जब गहरी होगी तब तुम क्रमशः गुरु की सर्वव्यापक प्रकृति का अनुभव कर सकोगे। तुम जान जाओगे कि गुरु शरीर तक सीमित नहीं हैं, वे प्रत्येक वस्तु में अन्तर्निहित आत्मशक्ति हैं। गुरु स्वयं तुम्हें इस अनुभव तल तक पहुँचाएँगे। अन्ततः उनकी कृपा सभी प्रतिबंधनों को पार करा देगी। तभी अम्मा कहती हैं कि गुरु के बाह्य रूप से तुम्हारी ममता कभी तुम्हें बंधनस्थ नहीं करेगी।”

सद्गुरु समस्त दुःखहारी

प्रश्न - “क्या अम्मा का यह कहना है कि गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता ज़रूरी है? लेकिन उस दुःख-दर्द के विषय में, जो कुछ लोगों के कथनानुसार गुरु-शिष्य संबन्ध में निहित है, आपका क्या कहना है?”

अम्मा - “अम्मा को लोगों की ये विचित्र धारणाएँ समझ में नहीं आती। तुम्हारा कहना है कि चूँकि गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता होने पर कुछ दर्द अनुभव होता है इसलिए लोग उनसे घनिष्ठ होना नहीं चाहते। बच्चो, क्या तुम किसी ऐसे एक व्यक्ति को दिखा सकते हो जिसे कोई दुःख न हो? लोग निरंतर व्यथा अनुभव करते हैं, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक। संसार में किसी से भी पूछिए, वे कहेंगे, ‘मेरा शरीर बहुत दुख रहा है।’ या ‘मेरे भावों को चोट लगी है’ या ‘अमुक आदमी ने मेरा सम्मान नहीं किया और मैं अपमानित सा हूँ।’ अम्मा से बताओ तो कि पीड़ा किसे नहीं है? लोग पीड़ा या तो बाहर से महसूस करते हैं या भीतर से। तुम्हें दर्द के बारे में पता ही क्या है? पीड़ा केवल शारीरिक पीड़ा नहीं होती। भीतरी घाव अधिक दर्द पहुँचाते हैं। यह बताने में कोई तुक नहीं है कि गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता व्यथा जनाएगी। तुम अतीत में लगे गहरे घावों को भीतर ही भीतर वहन कर रहे हो। यह सारे घाव और उनका दर्द संसार के सुखों से तुम्हारी अत्याधिक आसक्ति का परिणाम हैं। तुम अपने पीव भरे घावों और उनसे होने वाले दर्द के विषय में खयाल नहीं रखते। वे सारे घाव हरे ही रहते हैं। कोई उन्हें भर नहीं सकता क्योंकि तुम अपने पूर्वजन्मों के घाव व वासनाएँ

वहन कर रहे हो। वे केवल इस जीवन के नहीं हैं। कोई डॉक्टर या मनोवैज्ञानिक चिकित्सक इन घावों को दूर नहीं कर सकते। वे तुम्हारे हृदय की उस गहराई में पैठ नहीं सकते, तुम्हारे घावों को भर नहीं सकते। तुम्हारे घाव और वासनाएँ तुम्हारे भीतर गहराई में हैं। वे पुराने घाव हैं और भीतर से तुम्हें धीरे से कष्ट देने लगे हैं।

“लोग अपनी मानसिक व्यथा को कम करने के लिए विशेषज्ञों के पास जाते हैं किंतु संसार के सारे विशेषज्ञ - डॉक्टर, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि अपने ही मन से सीमित हैं, अपने अहं से रचे हुए छोटे संसार में रहते हैं। जब तक वे अपने मन के भीतर प्रवेश नहीं करते तब तक वे दूसरों के मन में कैसे प्रवेश कर पाएँगे? जब तक वे अपने मन व अहंकार के कब्जे में हैं तब तक दूसरों के मन व अहं को पार करने में मदद कैसे दे सकते हैं? उन्हें भी तुम्हारे समान गहरे घाव और गहरी वासनाएँ हैं। ऐसे विशेषज्ञ तुम्हारे घाव भरने और दर्द दूर करने में तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते। जो यथार्थ गुरु ऐसी सीमाओं से मुक्त हैं और मन से परे हैं वे ही तुम्हारे मन की गहराइयों में उतर सकते हैं। वे ही उन गहरे घावों को भर सकते हैं, तुम्हारी प्रबल वासनाओं और पुरानी आदतों को दूर कर सकते हैं।

“तुम्हारी यह बात बड़ी अजीब लगती है कि ऐसे लोग हैं जो गुरु के बाह्य रूप से इसलिए जुड़ना नहीं चाहते कि उससे दर्द होता है। तुम तो वैसे ही बहुत व्यथा अनुभव कर रहे हो। वस्तुतः तुम तीव्र दर्द की साकार मूर्ति हो। गुरु के रूप से आसक्ति दर्द व पीड़ा को जना नहीं सकते क्योंकि गुरु न कोई वस्तु हैं, न ही भौतिक शरीर। वे इन सब से परे हैं। वे तुम्हें पीड़ा नहीं दे सकते, न तुम पर ज़बरदस्ती कुछ लाद सकते हैं। वे अंतरिक्ष के समान, असीम आकाश की तरह हैं और अंतरिक्ष तुम्हें व्यथा नहीं दे सकता। इसलिए अपने पूर्वकल्पित भावनाओं को गुरु पर आरोपित मत करो या उनका कोई मूल्यांकन करने की कोशिश मत करो। मन स्वभावतः गलत है, वह कोई सही निर्णय लेने में असमर्थ होता है। तुम्हारी संकल्पनाएँ और मूल्यांकन तुम्हारे मन की बातें हैं और उनका सद्गुरु से, जो मन के परे हैं, कोई संबन्ध नहीं है। एक मन

दूसरे मन का मूल्यांकन शायद कर सके परंतु मन उसका कैसे मूल्यांकन करे जो मन के परे है? मन या अहं किसी को दुःख या दर्द दे सकते हैं किंतु जो मन से परे है, वह किसी को पीड़ा नहीं दे सकेगा चूंकि ऐसे व्यक्ति में न तो अहंकार होता है न ही वे किसी का मूल्यांकन ही कर सकते हैं। तुम्हारी पीड़ा तुम्हारे ही भीतर है, वह गुरु से नहीं उठती।

“जब तुम सद्गुरु की सन्निधि में हो तब तुमसे अपनी ही व्यथा और पीड़ा का अभिमुखीकरण कराया जाता है। वह तुम्हारे भीतर ही था परंतु अब वह बाहर प्रकट होता है क्योंकि सद्गुरु सूर्य के समान हैं, आध्यात्मिक सूर्य के समान। उनकी सन्निधि में अंधेरा नहीं रहता, दिन का प्रकाश निरंतर बना रहता है। जब गुरुरूपी सूर्य प्रकाशित है तब वह तुम्हारे मन की गहराई में प्रकाश प्रसारता है, उसके प्रकाश में तुम अपने भीतर का सब कुछ देख पाते हो। तुम अपने भीतर छुपे नरक को देखते हो। देखने पर ही तुम्हें उसके अस्तित्व का बोध होता है। वह तो हमेशा वहाँ रहा है, मगर तुमने कभी नहीं जाना। अगर तुम पीड़ा की उपस्थिति से आगाह नहीं हो तो अपनी छिपी व्यथा को कैसे दूर करोगे? यह जानना मुख्य बात है कि पीड़ा तुम्हारे भीतर से आती है न कि बाहर कहीं से। अब तक तुम्हारा विचार था कि पीड़ा बाहरी तत्वों से, टूटे नातों से, अपूर्ण अभिलाषाओं से, किसी की मौत से, दूसरों के क्रोध से, उनके अपमान व निंदा से होती है। अब तो गुरु के अनंत आध्यात्मिक प्रकाश में तुम सब कुछ साफ-साफ देख पाते हो। तुम जान जाते हो कि सारी पीड़ा तुम्हारे भीतर ही है।

“स्मरण रहे कि गुरु तुम्हें वहाँ अकेले छोड़ने वाले नहीं हैं। वे तुम्हारी मदद करेंगे। वे तुम्हारे घाव भर देंगे।

“अतएव पीड़ा गुरु के बाह्य रूप से आसक्ति के कारण उत्पन्न नहीं होती। तुम्हारा मन और तुम्हारी नकारात्मक वासनाएँ ही पीड़ा पहुँचाती हैं। जब तुम अपनी पीड़ा का स्वरूप पहचान लेते हो तब तुम्हें अपनी चिकित्सा में गुरु को सहयोग देना चाहिए। वे दिव्य भिषक हैं जिनका सामर्थ्य व शक्ति अक्षुण्य है।

“याद रखो कि तुम एक रोगी हो और तुम्हें बड़ी शल्यक्रिया की

आवश्यकता है। परंतु चिंता न करो, तुम इस डॉक्टर पर पूरी आस्था रख सकते हो। उनमें अनन्य आस्था रखो। उन्हें उनका काम करने दो, तुम उन्हें इस कार्य में अपना पूरा सहयोग दो और हाथ-पैर मारे बिना शान्त रहो। हाँ, तुम्हें शल्यक्रिया की पीड़ा से बचाने के लिए वे अवश्य तुम्हें बेहोशी की दवा देंगे। उनकी दवा है उनका अहैतुक प्रेम और दया जो वे पूर्णरूप से प्रकट करते हैं। उस दवा से तुम शल्यक्रिया के लिए तैयार किए जाओगे।

“एक बार गुरु ने शल्यक्रिया शुरू कर दी तो फिर वे तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। कारण यह कि कोई भी डॉक्टर अपने रोगी को शल्यक्रिया के बीच नहीं छोड़ेगा। किसी न किसी तरह गुरु तुम्हें ऑपरेशन टेबल पर ही रखेंगे चूंकि उस प्रविधि के बीच यदि तुम भाग जाओगे तो वह तुम्हारे लिए खतरे की बात होगी। सद्गुरु तुम्हें भागने नहीं देंगे। हालाँकि सद्गुरु द्वारा की जाने वाली यह शल्यक्रिया पीड़ादायक होती है तब भी इसमें उतनी पीड़ा नहीं होती जितनी तुम्हारे रोग की चरम अवस्था में होती है और इसके फलस्वरूप जो परमानन्द तुम्हें प्राप्त होगा, उसके तुलना में तो यह कुछ नहीं है। गुरु का उमड़ता प्रेम और करुणा दर्द को कम करेंगे। यथार्थ गुरु ईश्वर से अभिन्न हैं और इसलिए तुम ईश्वर के प्रेम व करुणा में ओतप्रोत रहोगे।

“गुरु पीड़ा देने वाले नहीं हैं, वे तो पीड़ा हरने वाले हैं। उनका ध्येय तुम्हें अस्थायी आराम देना नहीं है, वे तो स्थायी राहत देना चाहते हैं। किंतु लोग किसी कारण से अपनी व्यथा को बनाए रखना चाहते हैं। यद्यपि परमानंद ही हमारा सहज स्वभाव है तो भी ऐसा प्रतीत होता है मानो लोग अपनी वर्तमान मानसिक स्थिति में अपने दर्द का भी आस्वादन करते हैं, मानो दर्द उनका अनन्य अंग बन गया हो।

“एक हस्तरेखा तज्ञ किसी की हस्त रेखा पढ़ रहे थे। उन्होंने भविष्यवाणी की, ‘पचास वर्ष की उम्र तक आप बड़ी तकलीफ व दुःख झेलते रहेंगे। आपको निरंतर व्यथा रहेगी।’ इसपर उस व्यक्ति ने पूछा, ‘और फिर पचास साल के बाद क्या होगा?’ ‘पचास वर्ष की आयु होने पर तो आप उसके आदी हो जाएँगे’, हस्तरेखा तज्ञ ने बड़ी शान्ति से कहा।

ज़ोर का ठहाका उठा और अम्मा भी उसमें शामिल हुई। अम्मा ने बात जारी रखी, "लगता है कि मानव प्रकृति भी करीब-करीब ऐसी ही हो गई है। लोगों को दुःख-दर्द तो हैं परंतु वे उससे मानो इतने हद तक तदाकार हो गए हैं कि वे उसे पहचानते तक नहीं हैं। वे उससे छूटना भी नहीं चाहते।"

प्रश्नकर्ता ब्रह्मचारी ने कहा, "अम्मा, मेरा एक और प्रश्न है।" उसने अम्मा की प्रतिक्रिया जानने की आशा से उनकी तरफ देखा क्योंकि कभी-कभी अम्मा प्रश्नों का उत्तर दिए बिना चुप रहती हैं। अम्मा के संदर्भ में कभी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि अम्मा की प्रतिक्रिया क्या होगी, अम्मा का व्यवहार कभी तो उलझन में डाल देता है। किसी को नहीं पता कि वे कब बोलना पसंद करेंगी और कब नहीं। बहस के बीच भी अम्मा एकाएक समाधि में प्रवेश कर जाएँगी। उनके अनन्त मानसिक भाव मानव की समझ के परे हैं।

ईश्वर से अभिन्न

एक दिन भक्तों ने अम्मा को तमिलनाडु के एक प्रसिद्ध देवी मंदिर ले जाना चाहा। यह १९७७ के मध्य की बात है। उन दिनों अम्मा समय समय पर समाधि में लीन हो जाया करती थीं। ऐसी स्थिति में उन्हें अपने शरीर का भी बोध नहीं रहता था।

अम्मा को मंदिर ले जाने की इच्छा रखने वाला परिवार अम्मा के प्रति गहरी भक्ति रखता था। उन दिनों अम्मा के चारों ओर भक्तों की इतनी भीड़ भी नहीं हुआ करती थी। भक्त केवल भावदर्शन के समय आते थे और दूसरे दिन सवेरे वे अम्मा को अपने घरों पर निमंत्रण देते थे। कभी-कभी अम्मा उनके यहाँ दिन दो दिन ठहरती भी थीं। भक्तों को उनकी सेवा करने का अवसर मिलता और साथ ही अम्मा को थोड़ा सा आराम भी मिलता। उन दिनों अगर कोई स्मरण न कराता तो अम्मा न भोजन करतीं न ही सोती थीं। कभी तो बहुत अनुनय विनय करने पर ही अम्मा खाती या सोतीं। फिर भी उन्हें मनाना मुश्किल था। अम्मा

अपनी शारीरिक आवश्यकताओं पर कभी ध्यान नहीं देती थीं। अधिकांश समय वे समाधिस्थ रहती थीं।

कृष्णभाव एवं देवीभाव सप्ताह में तीन बार (मंगल, बुध और रविवार को) होते थे। उन दिनों अम्मा लोगों को बारह तेरह घण्टे तक दर्शन देती थीं। भावदर्शन के दिन शाम का कीर्तन शाम को साढ़े तीन या चार बजे शुरू होता और छः बजे तक चलता। रात के प्रथम भाग में कृष्णभाव होता था। नियम से यह साढ़े छः बजे प्रारंभ होता था। मानिए कि दो हजार भक्त थे। वे सब के सब अम्मा के पास दो बार जाते - एक कृष्णभाव में और दूसरे देवीभाव में। देवीभाव कभी-कभी सुबह सात या आठ बजे समाप्त होता।

उन दिनों थोड़े से परिवार ही अम्मा से घनिष्ठ थे, यानि कुछ परिवारों को ही यह जानने का सौभाग्य रहा कि अम्मा उच्चतम आध्यात्मिक स्तर पर चिरप्रतिष्ठित हैं। उस प्रसिद्ध देवी मंदिर में जाने के लिए निमंत्रित करने वाला परिवार उनमें से था। पहले अम्मा ने मंदिर जाने में रुची नहीं ली किंतु हमेशा की तरह उनकी निश्छल प्रार्थना के कारण अम्मा सहमत हो गई।

अम्मा ने मंदिरों के विषय में एक बार कहा, “बाहरी मंदिर उनके लिए हैं जो अपने हृदय के अंदर भगवान के निरंतर अस्तित्व को पहचान नहीं सके हैं। ईश्वर साक्षात्कार होने के बाद प्रभु का वास बाहर भीतर हर जगह अनुभव होता है। ऐसे व्यक्तित्व के लिए संसार का कोई भी स्थान, विश्व का कण-कण मंदिर है।”

अम्मा यह बात समझाने के लिए एक कहानी सुनाती हैं -

“नामदेव श्रीविठ्ठल के परम भक्त थे। प्रभु ने स्वयं उन्हें उपदेश दिया था कि अमुक ज्ञानी के पास जायें जो गांव की सीमा के बाहर एक शिव मंदिर में रहते हैं। मंदिर पहुँचने पर भक्त ने मंदिर के गर्भगृह में एक वृद्ध को लेटे देखा। वे अपना पांव शिवलिंग पर रखे हुए लेटे थे। ऐसा पाप देख क्रोध में आए नामदेव ने उस वृद्ध को जगाने के लिए तालियाँ बजाईं। वृद्ध ने तालियाँ सुनीं और आँखें खोलीं। उन्होंने नवागत को देखकर कहा, 'ओह! तुम नामदेव हो और तुम्हें विठ्ठल ने भेजा है।’

है न?' नामदेव आश्चर्यचकित हो गया। उसे भान हुआ कि वह एक यथार्थ महात्मा के सामने खड़ा है। किंतु एक बात वे समझ नहीं सके। उन्होंने वृद्ध महात्मा से कहा, 'आप निस्संदेह महात्मा हैं। पर मैं नहीं समझ पाया कि आप अपने पैर शिवलिंग पर कैसे रख सकते हैं?' इस पर महात्मा ने कहा, 'ओह क्या वे शिवलिंग पर हैं? मुझे पता नहीं था। कृपया मेरे पांवों को हटा दो। मैं थका हुआ हूँ।' नामदेव ने वृद्ध महात्मा के चरणों को हटा कर ज़मीन पर रखा। आश्चर्य की बात, जहाँ कहीं नामदेव वृद्ध महात्मा का पांव रखते वहाँ वृद्ध महात्मा के चरणों के पड़ने की जगह पर शिवलिंग का उद्भव होता। अंततः नामदेव ने उनके चरणों को अपनी गोद में रखा और तब वे स्वयं शिवस्वरूप हो गए।'

"यथार्थ महात्मा स्वयं परमेश्वर हैं। उन्हें किसी मंदिर या तीर्थ जाने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि वे जहाँ रहते हैं वह स्थान ही मंदिर है। परंतु वे कभी-कभी दूसरों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए तीर्थस्थानों अथवा मंदिरों में जाते हैं।"

जो भी हो, अम्मा अपने भक्तों की खुशी के लिए मंदिर गईं। वे जब मंदिर पहुँचे तब वे प्रवेशद्वार के सामने जा कर खड़े हो गए। वहाँ से देवी की मूर्ति को स्पष्ट देख सकते थे। जब अम्मा ने मूर्ति को देखा तो वे तभी समाधि में लीन हो गईं और करीब डेढ़ घंटे तक उसी दशा में खड़ी रहीं। परिवार के सदस्य इससे भयभीत हो गए। अम्मा जहाँ थीं वहीं हिमालय की तरह अचल खड़ी रहीं। अम्मा उसी भाव में खड़ी थीं जिस भाव में गर्भगृह में देवी खड़ी थीं।

भक्त परिवार इस बात से चिंतित था कि अम्मा को सामान्य बाहरी चेतना में कैसे लाया जाए। उस समय एक अधेड़ उम्र की स्त्री एकाएक उनके पास आई। उनके मुखमंडल पर एक गरिमा थी। दिखने में एक भक्त लग रही थीं। उन्होंने आज्ञास्वर में कुटुम्ब प्रमुख से कहा, "क्या तुम देख नहीं सकते कि वे (गर्भगृह के भीतर संकेत करती) और (गहरी समाधि में स्थित अम्मा की ओर संकेत करती) यह एक ही हैं? मीनाक्षी-स्तोत्र का पाठ करो।" उस महिला के शब्द इतने प्रामाणिक थे कि कुटुम्ब प्रमुख आज्ञाकारी बालक की तरह सहज रूप से स्तोत्र पाठ करने लगा।

- श्रीविद्ये शिववामभागनिलये श्रीराजराजार्चिते
 श्रीनाथादिगुरुस्वरूपविभवे चिंतामणीपीठिके ।
 श्रीवाणीगिरिजातनुताड्घ्निकमले श्रीशाम्भवि श्रीशिवे
 मध्याह्ने मलयध्वजाधिपसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥

जब कुटुम्ब प्रमुख स्तोत्र पाठ कर रहे थे तब वह स्त्री गहरी प्रार्थना के भाव में आँखें बंद किए हुए हाथ जोड़े खड़ी रही।

कुछ क्षणों बाद अम्मा सामान्य भावदशा में आई। किंतु वे उसी जगह पर झूमती हुई सी खड़ी थीं। उनकी दृष्टि अब भी देवी की मूर्ति पर स्थिर थी। परिवार ने स्तोत्र पाठ बंद किया।

जिस अज्ञात स्त्री ने परिवार को मीनाक्षी स्तोत्र जपने का आदेश दिया वह अम्मा के चरणों में गिरी और बड़ी देर तक वहीं पड़ी रही। अम्मा ने झुक कर प्यार से उसे उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। अम्मा ने जब उस स्त्री की ओर दृष्टि डाली तब अम्मा के मुख पर असामान्य प्रेम छलक रहा था। वह स्त्री आनन्दमग्न लगी। बड़ी देर तक अम्मा उसे देखती रहीं। आखिर, उन्होंने उस स्त्री का सिर धीरे से अपने कंधे पर टेक लिया। वह स्त्री अब अम्मा के कंधे पर सिर टेके आनंदाश्रु बहा रही थी। किसी को नहीं मालूम था कि वह स्त्री कौन थी और कहाँ से आई थी।

यह तो ऐसी असंख्य घटनाओं में से एक ही है। अकस्मात् उस क्षण मंदिर आई वह स्त्री एक दिव्य संदेश वाहक सी लगी, जो सब को, खासकर उस परिवार को स्मरण कराना चाहती थी कि अम्मा देवी हैं।

यही कारण है कि प्रश्नकर्ता ब्रह्मचारी एक प्रश्न पूछना चाहने पर भी सहसा रुक गया और अम्मा की तरफ देखने लगा। वह निश्चत रूप से जानना चाहता था कि अम्मा सामान्य भावदशा में ही हैं। जब उसने देखा कि अम्मा उत्तर देने के लिए तैयार हैं तो उसने प्रश्न जारी रखा।

सद्गुरु से आसक्ति ईश्वर से आसक्ति है

प्रश्न - "अम्मा, मुझे अब भी शंका है कि क्या गुरु के बाह्य रूप से

यह घनिष्ठता आवश्यक है या ईश्वरसाक्षात्कार की अभिलाषा ही हमें लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए काफी है?"

अम्मा - "बच्चो, पहले याद रखो कि गुरु से आसक्ति ईश्वर के प्रति आसक्ति है। तुम्हारी समस्या यह है कि तुम ईश्वर और सद्गुरु में अन्तर कर रहे हो। यथार्थ गुरु के शारीरिक रूप से आसक्ति परमात्मा के साक्षात्कार की तुम्हारी इच्छा को तीव्र बनाती है। वह ईश्वर के साथ रहने के समान है। गुरु तुम्हारी आध्यात्मिक यात्रा को कई आसान बना देते हैं। ऐसे सद्गुरु स्वयं मार्ग हैं और लक्ष्य भी। किंतु समस्त सृष्टि में गुरु को देखने का प्रयत्न करना चाहिए। गुरु के वचनों का पालन एवं उनके निर्देशों का अनुसरण यथासंभव करना चाहिए।

"क्या ईश्वर या ईश्वर साक्षात्कार के विषय में वस्तुतः तुम कुछ जानते हो? तुमने उसके बारे में सुना और पढ़ा है, बस इतना ही। तुमने जो कुछ पढ़ा व सुना वे केवल शब्द थे। अनुभव तो इन सब से परे है। वह अबूझ पहेली है।

"तुम इंद्रियों से या शास्त्रों से अर्जित ज्ञान से ईश्वर-साक्षात्कार का अनुभव नहीं पा सकते। उसका अनुभव करने के लिए तुम्हें अपने अंतःचक्षु का विकास करना होगा। अभी तुम्हारी जो दो आँखें हैं उन्हें एक बनना होगा, तभी तुम ईश्वर दर्शन कर सकोगे। इसका तात्पर्य यह है कि अपने दोनों आँखों से संसार को देखते हुए भी तुम्हें अद्वैत दर्शन करना चाहिए। द्वैत लुप्त हो जाता है और तुम संसार की आधारभूत एकता को देखते हो। अन्तःचक्षु या यथार्थ ज्ञाननेत्र यथार्थ गुरु ही खोल सकते हैं।"

अम्मा का यह कथन श्रीकृष्ण के अर्जुन के प्रति कथन का स्मरण कराता है -

न तु माम शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।

दिव्यं ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

'तुम केवल अपने भौतिक चक्षुओं से मेरे दर्शन नहीं कर सकते। इसलिए मैं तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करता हूँ। सर्वेश्वर के रूप में मेरा योगैश्वर्य देख लो।'

- श्रीमद् भगवद्गीता - अध्याय ११, श्लोक ८

अम्मा की बातें जारी थीं - "तुममें ईश्वर साक्षात्कार की अभिलाषा हो पर शायद वह अधिक समय तक नहीं बनी रहेगी। तुम यदि उत्तम साधक नहीं हो तो इच्छा की तीव्रता क्षीण होगी। तुम्हारी अभिलाषा आती जाती रहेगी, वह स्थायी नहीं रहेगी। यद्यपि तुम अपनी इच्छा को बनाए रखो तो भी तुममें सांसारिक

सुखभोग की तीव्र इच्छा हो सकती है। तुम अंतर व बाह्य जगत का संतुलन बनाना नहीं जानते। यदि तुम्हारा मार्गदर्शन करने के लिए गुरु उपस्थित न हों तो तुम पथभ्रमित हो सकते हो, तुम्हारी गति गलत दिशा में हो सकती है, या तुम बीच यात्रा में शायद रुक जाओ और तुम्हारा पतन भी हो जाए। ऐसा होने पर तुम अपनी सारी आस्था गंवा बैठोगे और सोचोगे कि ईश्वर नहीं हैं या आत्मसाक्षात्कार जैसी कोई स्थिति है ही नहीं।

“गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के प्रेम के समान या श्रीराम के रूप के प्रति हनुमान की घनिष्ठता के समान है। अथवा वे बुद्ध के शिष्यों की बुद्ध के प्रति या ईसा मसीह के प्रति ईसा मसीह के शिष्यों की घनिष्ठता के समान है। वे शिष्य वस्तुतः ईश्वर के साथ ही रहते थे। यथार्थ गुरु की भौतिक सन्निधि में रहना और उनके बाह्य रूप से घनिष्ठता पालना शुद्ध चैतन्य या ईश्वर के साथ रहने एवं घनिष्ठ होने के समान है। वह तुम्हें प्रेरणा देता है, तुममें तीव्र पिपासा जनाता है और तुम लक्ष्यप्राप्ति के प्रति तीव्रता बनाए रख सकोगे। जब तुम गुरु के प्रत्यक्ष देखरेख में रहते हो तब तुम पथ से विचलित नहीं हो सकते, शर्त केवल इतनी ही कि तुम आस्था, आज्ञाकारिता और गुरु के वचनों के पालन में सच्चे रहो।

“एक गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता परम सत्य के साथ सीधे संपर्क में होने के समान है। ऐसे महात्मा के सान्निध्य से दिव्यता छलकती है और तुम अपने हृदय में उसका अनुभव करते हो, तुम उसे अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख पाते हो और तुम्हें सर्वत्र उसका अहसास होता है। वह तुम्हारा स्पष्ट अनुभव होता है - जब तुम उनकी आँखों में देखते हो, जब तुम्हें उनका स्पर्श अनुभव होता है, जब तुम उनके वचनों एवं कर्मों पर ध्यान देते हो तब तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव होता है।

“प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी से घनिष्ठता चाहता है - प्रेमी हो, प्रेमिका हो, पति हो या पत्नी। बच्चों को माँ-बाप से लगाव होता है या खिलाऊँ से। कभी वह अपने भाई-बहनों के साथ के लिए हठ करते हैं। लोग किसी को अपना दोस्त बनाना चाहते हैं। संसार में मानव मन को व्यस्त रखने के लिए अनगिनत चीज़ें हैं। कम्पनियाँ और व्यापारी इस ध्येय के लिए अनेक नई वस्तुओं का निर्माण करते हैं। खुशी की तलाश में (अपने मन को शान्त करने की ज़रूरत में) लोग एक चीज़ से दूसरी चीज़ की तरफ भागते हैं। किंतु शीघ्र ही वे उस वस्तु से ऊब जाते हैं। तब वे मजबूरन किसी नई वस्तु के पीछे पड़ते हैं।

उनकी खोज कभी खत्म नहीं होती।

"बाज़ार में जब कोई नई चीज़ आती है, जैसे एक नये फिल्म का विमोचन होता है तो तुम्हारा मन उसे देखने के लिए अधीर हो जाता है। ज्यों-ज्यों तुम उस फिल्म के बारे में अधिक सुनते हो त्यों-त्यों देखने की चाह बढ़ती है। जब तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाए तब चंचल मन कुछ समय के लिए शान्त होता है। परंतु यह स्थिति तभी तक बनी रहेगी जब तक तुम दूसरी फिल्म या और किसी चीज़ के बारे में नहीं सुनते। यही मन की प्रकृति है। वह मौन नहीं रह सकता, और दूसरी ओर अकेले में प्रसन्न भी नहीं रह पाता। यदि मन को जुड़ने के लिए कुछ न मिले तो तुम व्यग्र हो उठते हो। मन आसक्ति की लंबी कड़ी की सृष्टि करता है। लोग कल्पना-जगत में रहते हैं और आसमान में खयाली महल गढ़ते हैं। यदि वे कल्पना-जगत में उड़ान नहीं भर सकते, सपना नहीं देख सकते या उनके मन को कोई वस्तु नहीं मिलती जिसपर वे मन को केन्द्रित कर सकते हैं, वे या तो पागल हो जाते हैं या खुदकुशी कर लेते हैं।

"तुम संसार की सभी वस्तुओं और अनुभवों से अवश्यमेव उकता जाओगे। तुम अधिक समय तक किसी भी वस्तु से जुड़े नहीं रह सकते। तुम्हें गतिशील रहना होगा क्योंकि मन निरंतर एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर बढ़ता है, और वह तुम्हें भी एक वस्तु से दूसरे वस्तु को निरन्तर कूदने को मजबूर करता है। मन के इस निरन्तर चंचल स्वभाव के कारण कोई भी परिस्थिति कुछ ही समय में तुम्हें उबाने लगेगी। इसलिए पाश्चात्य लोग प्रेमी व प्रेमिका को बदलते रहते हैं, पति व पत्नी को बदलते जाते हैं, नए व्यक्तियों को आजमा कर देखते हैं, नए शहर में नया घर खोजते हैं। वे नई वस्तुएँ, नए रिश्ते चाहते हैं क्योंकि पुराने व परिचित रिश्तों से उनका जी उचट जाता है। मन हजारों भिन्न-भिन्न वस्तुओं से जुड़ा रहता है और सभी दिशाओं से तुम्हें खींचता है।

"चूंकि मन हमेशा चंचल रहता है, नकारात्मक रहता है इसलिए अभी जो आध्यात्मिक अभीप्सा तुम अनुभव कर रहे हो वह भी लुप्त हो सकती है क्योंकि साक्षात्कार के लिए तुम्हारी वर्तमान अभिलाषा मन से ही उठती है। एक दिन तुम्हारा मन एकाएक ऊब जाएगा क्योंकि मन की प्रकृति ही हर वस्तु से उकता जाना है। वह हमेशा कुछ न कुछ नया चाहता है। यदि आध्यात्मिक जीवन में तुम्हारी कोई पकड़ न हो, कोई टेक न हो, तो तुम आध्यात्मिक जीवन से भी उचट जाओगे।

"अपने मन को स्थिर व शान्त बनाने के लिए मन से भी कोई ऊँची वस्तु

से उसका संबन्ध जुड़ना चाहिए। संसार में मन ही सबसे ज़्यादा शोर मचाता है। यदि विचारों को केन्द्रित करने, या मनन करने के लिए कोई विषय न हो तो मन शान्त नहीं रहेगा। किंतु मनन या ध्यान का विषय परिचित नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसी हालत में मन जल्दी उससे भी ऊब जाएगा।

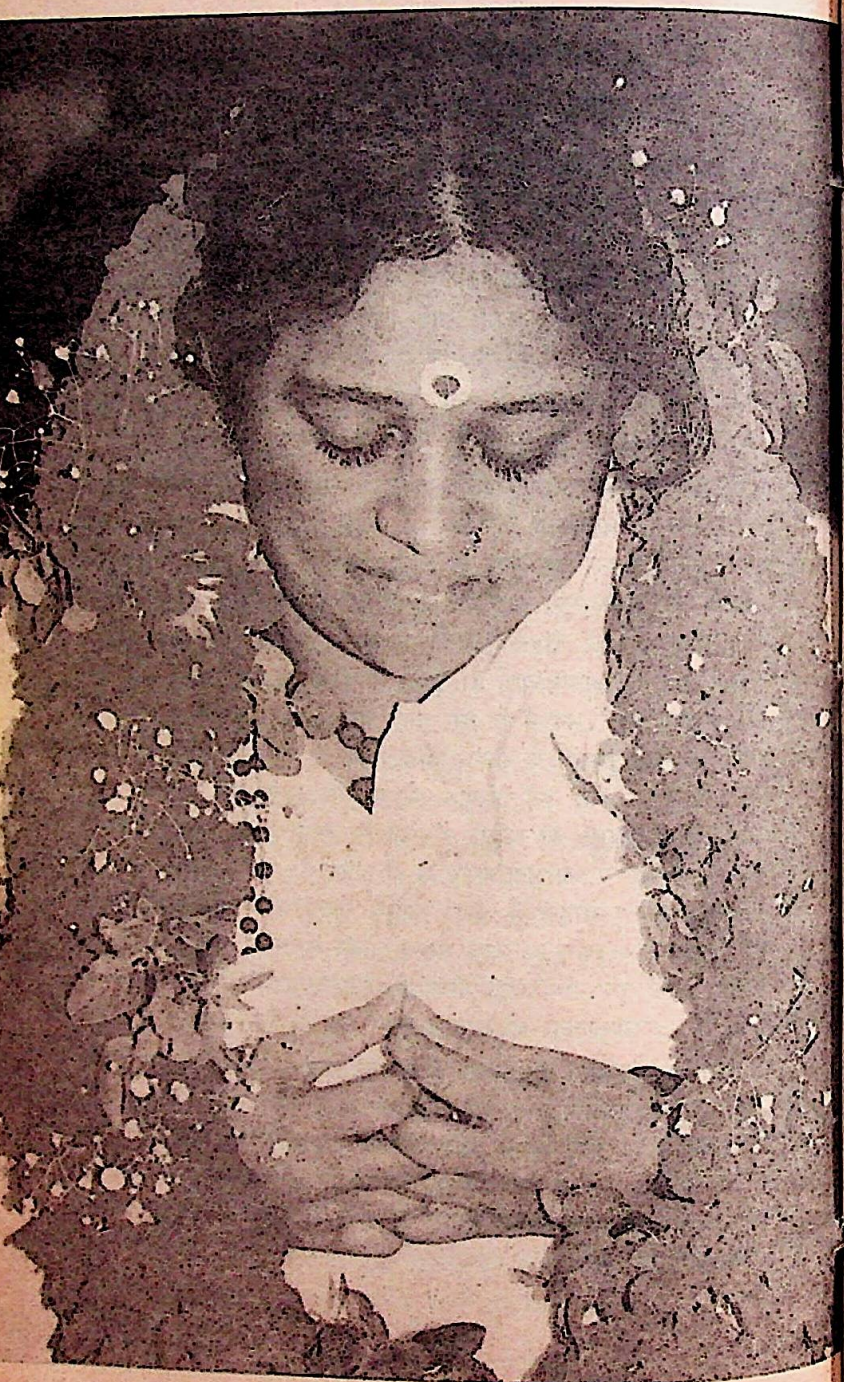
"वर्तमान में, तुममें ईश्वर साक्षात्कार की जो अभिलाषा है वह कई अभिलाषाओं में अन्यतम हो सकती है। तुम बहुत बड़ी अवधि तक अन्य प्रबल अभिलाषाओं को रोक नहीं सकते। वर्तमान मानसिक दशा में तुम्हारे अन्य अभिलाषाएँ ईश्वर साक्षात्कार के प्रति तुम्हारी प्रतिबद्धता से अधिक शक्तिशाली हैं। तुम जो अभिलाषा अनुभव करते हो वह किसी खास क्षण, किसी खास परिस्थिति या तत्कालिक आकर्षण से निष्पन्न हो सकती है। वह अल्प ही समय में ही समाप्त हो सकती है चूँकि यदि तुम अध्यात्म की ओर कोई सशक्त आकर्षण नहीं अनुभव करते तो तुम इस जीवनचर्या से शीघ्र ही उकता जाओगे। गुरु के बाह्य रूप से तुम्हारा लगाव ही यह आकर्षण है। गुरु के प्रति यह प्रेम व भक्ति ही संसार के प्रति तुम्हारी आसक्ति को क्षीण करते हैं। गुरु के प्रति प्रेम व लगाव तुम्हें सांसारिक प्रलोभनों के प्रति अनासक्त रहने की शक्ति देगा। गुरु की सन्निधी दिव्य है। इसलिए किसी तरह की उकताहट की गुंजाइश ही नहीं है क्योंकि ऊब, उकताऊपन तभी होता है जब मन सांसारिक विषयों से संलग्न रहता है, बाह्य वस्तुओं से संलग्न रहता है। मन शीघ्र ही बाह्य वस्तुओं से उकता जाता है चूँकि आनन्द या सुख वस्तुओं का स्वभाव नहीं है। सद्गुरु तो परमानन्द के परमस्रोत हैं। गुरु अमृतस्वरूप हैं। कोई जिज्ञासु हो तो वह उनकी सन्निधी में अनन्तता के अनेकानेक पक्षों का उद्घाटन होता देख सकता है। वे दिव्य हैं और यदि कोई खुले मन व हृदय से उनका सामीप्य ग्रहण करे तो उकता जाने की संभावना ही नहीं रहती। गुरु के बाह्य रूप से घनिष्ठता शिष्य के हृदय में प्यार, उत्साह, संतोष और ताजगी का अनुभव कराता है। शिष्य कभी निराशा व उदासी महसूस करता है तो गुरु का अहैतुक प्रेम व करुणा शिष्य को उसकी नकारात्मक दशा से बाहर निकालते हैं, उसे प्रेरणा देते हैं। वे उसे उत्साह से आगे बढ़ने का प्रोत्साहन देते हैं। यह शिष्य के मन के कोलाहल को शान्त करने में मददगार होता है, क्योंकि सद्गुरु की उपस्थिति ही एकमात्र ऐसा स्थान है जहाँ चंचल मन नित्य विश्राम पा सकता है, जहाँ वह ऊबता नहीं है।

"अध्यात्म सूर्य, चंद्र, पर्वत और नदियों की तरह प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं है। आध्यात्मिकता आस्था है। पूर्ण अविभक्त आस्था ही किसी को लक्ष्य तक पहुँचाएगी।

“प्रत्येक व्यक्ति का झुकाव या तो बुद्धि की ओर या हृदय की ओर होता है। बुद्धिवादियों के लिए विश्वास करना कठिन है चूँकि वे प्रत्यक्ष वस्तुओं पर ही विश्वास रखते हैं। चूँकि ईश्वर अदृश्य हैं इसलिए उनके अस्तित्व पर विश्वास करने के लिए व्यक्ति को एकमात्र आस्था पर निर्भर रहना होगा। आस्था - बौद्धिक प्रक्रिया नहीं है। यद्यपि भावनाप्रधान व्यक्ति अधिक आसानी से विश्वास करेंगे तो भी पूर्णतः विश्वास करना उनके लिए भी आसान नहीं होगा क्योंकि उनकी आस्था अविभक्त नहीं है; शंकालु मन के कारण उनकी आस्था आंशिक रहती है। और शीघ्र ही जैसे वे ऊब जाते हैं वे अपने विश्वास को केंद्रित करने के लिए अन्य किसी व्यक्ति या वस्तु की तलाश करते हैं।

“बुद्धिवादी और भावनाप्रधान दोनों प्रकार के लोगों के लिए किसी ठोस व प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता है जिससे वे अपने विश्वास को पुष्ट कर सकते हैं। अन्यथा उनमें ईश्वर साक्षात्कार के लिए थोड़ी सी रुचि जागेगी, थोड़ी सी वांछा उठेगी और कुछ समय बाद यदि उन्हें कोई अनुभव न हो या वे भगवद् उपस्थिति अनुभव न करें तो वे शायद आध्यात्मिक पथ को त्यागकर, कहें - ‘आध्यात्मिकता केवल अंधविश्वास है। ईश्वर या ईश्वरसाक्षात्कार जैसी कोई बात नहीं है’। समस्या उनके मन में है और उनमें धीरज की कमी भी है, फिर भी यदि उन्हें कुछ मिले जिससे वे संबंध जोड़ सकते हैं तो वे आश्वस्त होंगे कि वे सही रास्ते पर हैं और उन्हें अध्यात्म के पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी मिलेगी। किंतु यह सद्गुरु की सन्निधि में रहने से, उनसे व्यक्तिगत संबंध जोड़ने और उनके बाह्य रूप से घनिष्ठता बनाने से ही संभव है। गुरु से संबंध जोड़ना, ईश्वर के साथ संबंध जोड़ना है, अपने अंतस्थ चैतन्य के साथ संबंध जोड़ना है। यह एक साधारण व्यक्ति के साथ संबंध जोड़ने के समान नहीं है; यह एक ऐसा संबंध है जो तुम्हें सभी परिस्थितियों में अनासक्त रहने में मदद देगा। वह तुम्हारे मन को ईश्वरसाक्षात्कार की अंतिम छलांग भरने के लिए तैयार करता है।”

श्रोतागण मंत्रमुग्ध बैठे थे। अम्मा के सशक्त शब्द सर्वत्र गूंजते हुए प्रतीत हुए - श्रोताओं के हृदय में तथा बाहर अंतरिक्ष में वे शब्द गूंज रहे थे। ध्यान का सा वातावरण था मानो अम्मा के शब्दों की सत्यता को सिद्ध कर रहा हो - एक महात्मा की भौतिक उपस्थिति का महत्व, उनके बाह्य रूप से आसक्ति का महत्व, एवं गुरु से, जो कि शरीरधारी ईश्वर हैं, से व्यक्तिगत संबंध जोड़ने का महत्व दर्शा रहे हों।



अध्याय - १६

अम्मा मुक्तिदायिनी

अम्मा आश्रम में मंदिर के सामने नारियल वृक्षों के झुरमुट में कुछ आश्रमवासियों एवं भक्तों के साथ बैठी थीं। वे गृहस्थ भक्तों के साथ विभिन्न विषयों पर बात कर रही थीं। एकाएक अम्मा बालु की ओर मुड़ीं और बोलें - "ओट्टूर बेटा अम्मा को देखना चाहता है। उसे ले आना।" बालु उठा और ओट्टूर को लेने गया। ओट्टूर पुराने मंदिर के पीछे भूमिगत ध्यान कक्षों के ऊपर उनके लिए विशेष रूप से बनाए कमरे में रहते थे। ओट्टूर उष्णिगंबूदिरीपाड केरल के प्रख्यात कवि और संस्कृत-पंडित थे। वे श्रीमद्भागवत के अधिकारी विद्वान थे। ओट्टूर के श्रीकृष्ण पर आधारित छंद भारत भर में प्रसिद्ध हैं। वे कृष्ण भक्तों को प्रिय हैं। ओट्टूर श्रीमद्भागवत कथावाचक एवं कवि व लेखक के रूप में कई उपाधियाँ व पुरस्कार राज्य व केंद्र सरकार से पा चुके थे। वे श्रीकृष्ण के निस्सीम भक्त थे और केरल के प्रसिद्ध गुरुवायूर मंदिर से जुड़े थे। निम्नलिखित गीत 'कण्णन्डे पुण्यनामम्' (कन्हैया के पवित्र नाम) उनकी भक्ति की गहराई की एक झलक दे सकेगा।

भावार्थ -

मैं कब अपने कानों से कन्हैया के मंगलकारी नाम सुनूँगा?
 उन्हें सुनते सुनते मैं कब पुलकित हो उठूँगा आनन्द के अश्रु बहाऊँगा?
 आनन्दाश्रु में सिक्त होते-होते कब मैं पवित्र हो सकूँगा?
 उस संपूर्ण पवित्रता की दशा में मैं उनके नामों का गायन
 स्वयं-सहज रूप से कब करूँगा?
 परमानन्द में गाते हुए मैं कब धरती और आकाश को भूल सकूँगा?
 सब कुछ भुला कर पूर्ण भक्ति से मैं कब नृत्य कर सकूँगा?
 जब मैं नृत्य करूँ तब क्या मेरे पद धरती के मंच पर से
 दागों को मिटा डालेंगे?

उस आनन्द नृत्य में जिसमें मैं सारे दाग पोंछ डालूँ
मैं जोर से रो उठूँगा।

उस रुदन के द्वारा क्या मेरी पवित्रता आगे दिशाओं में फैलेगी?
जब नाटक मंचित हो जाए तब कब अन्त में अम्मा की गोद में गिरूँगा?
अम्मा की गोद में लेटे-लेटे कब मैं आनन्दपूर्वक सोऊँगा?
सोते सोते मैं अपने हृदयनिवासी कृष्ण का
सुन्दर रूप कब स्वप्न में देखूँगा?
जब मैं जग जाऊँ तब कब विश्वमोहक कृष्ण को देख सकूँगा?

इस महाकवि ने यह गीत अम्मा के अवतरण के पच्चीस वर्ष पूर्व लिखा था। इस गीत के पीछे एक आश्चर्यजनक व हृदयहारी कथा है। वह दिखाती है कि किस प्रकार भगवान का अवतार यथार्थ भक्त की सच्ची व हार्दिक प्रार्थना को सफल कर देता है। इस गीत में कवि कहता है - 'कब नाटक पूरा मंचित हो जाएगा? मैं कब आखिर अम्मा की गोद में गिरूँगा? कब अम्मा की गोद में लेटे हर्षाऊँगा?'

ओट्टूर पहले-पहल अम्मा से १९८३ में मिले। उन्हें अम्मा की ३०वीं वर्षगांठ के समारोह पर निमंत्रित किया गया था। अम्मा के एक भक्त से ओट्टूर ने अम्मा के बारे में सुना था। उस समय वे तिरुवनन्तपुरम गए हुए थे। उन्हें तुरन्त अम्मा का दर्शन करने की स्वतः प्रेरित इच्छा हुई। ओट्टूर ने दृढ़ता से महसूस किया कि अम्मा अवतार हैं, श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं हैं। श्रीकृष्ण उनके इष्टदेवता थे। यों वे २७ सितम्बर १९८३ को अम्मा के जन्मदिन पर उनसे मिलने आए। एक बार जब अम्मा से मिले तब पच्चासी वर्ष के वृद्ध भक्त, कवि एवं विद्वान ओट्टूर दो वर्ष के बच्चे के समान हो गए जो माँ के प्यार व ध्यान की कामना निरंतर करता है। उन्होंने पहचाना कि वे आखिर अपने लक्ष्य पर पहुँचे हैं। उन्होंने तय किया कि वे शेष जीवन अम्मा की सन्निधि में ही बिताएँगे। इसके बाद वे अम्मा के विषय में भी भजन रचने लगे। अम्मा और पच्चासी वर्ष के वृद्ध का संबन्ध अनोखा था - अनन्य सुन्दर। अम्मा उनकी शिशुसहज प्रकृति को सराहती थीं। उन्होंने उन्हें प्रिय नाम भी दिया - उणिक्कण्णा (कन्हैया)।

वे बच्चे की तरह हर काम करने के पहले अम्मा से सलाह लेते थे। कोई खास दवा लेनी हो तो वे लेने के पहले अम्मा की अनुमति मांगते थे।

एक नए ढंग का साबुन लगाना हो, भोजन में परिवर्तन करना हो - छोटी-छोटी बात पर भी वे अम्मा की अनुमति माँगते। उनके स्वीकृति देने पर ही वे करते। अगर अनुमति न मिलती तो पूर्ववत् ही कार्य करते, कोई परिवर्तन न करते। कभी-कभी वे अम्मा के हाथ से खाना चाहते थे। कभी-कभी वे अम्मा की गोद में विश्राम करना चाहते। ऐसे अवसर भी दुर्लभ नहीं थे जब उनको अपने कमरे से ऊँची आवाज़ में अम्मा! अम्मा! पुकारते हुए सुना जाता था। उन्हें जब कभी अम्मा को देखने की प्रबल इच्छा होती तभी वे यों ऊँची आवाज़ में पुकारते। ऐसे मौकों पर यदि अम्मा आसपास होती तो उनके कमरे में उनसे मिलने जाती। अगर अम्मा पास न होकर अपने कमरे में रहती तो ब्रह्मचारिणी गायत्री या और किसी के ज़रीए उन्हें कुछ प्रसाद भेजती। उनकी शिशु-सहज प्रकृति को जानते हुए अम्मा कभी उन्हें कुटिया में बुलवा लेती जहाँ वे भक्तों को दर्शन देती थीं। उस समय अम्मा उन पर बड़ा प्रेम व ममता बरसाती। ऐसे क्षणों में ओट्टूर जो हमेशा अस्वास्थ्य की शिकायत करते - अपना कष्ट भुला देते थे। वे हमेशा अम्मा के बगल में बैठ रहना पसंद करते थे; कहते थे- "अम्मा के पास बैठने पर बड़ी शक्ति मिलती है।"

यह दुर्लभ माँ-शिशु-संबन्ध मानवीय बुद्धि से परे था। पच्चासी वर्ष के कवि तीस वर्ष की अम्मा को 'माँ' पुकारते थे। यह बात मानव मन के लिए दुरूह ही है। ऐसी पहेली को बुद्धि समझा कैसे सकती है? ओट्टूर उणिण नंबूदिरिप्पाड के लिए अम्मा गुरु व ईश्वर दोनों थीं। उन्होंने अम्मा में अपने इष्टदेवता श्रीकृष्ण को और जगन्माता को - दोनों को देखा। अम्मा का संबोधन करके उन्होंने जितने गीत लिखे उनमें और अपनी लिखी अम्मा की अष्टोत्तरशतनामावली में यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। निम्नलिखित गीत ओट्टूर द्वारा अम्मा पर लिखा गया था

भावार्थ

अम्मा! आप कृष्ण व काली दोनों का अवतार हैं।

अम्मा! आप अपने मंदहास और

अपने गीत, अपने दृष्टिक्षेप से, स्पर्श व नृत्य से

आदन्ददायी संभाषण से पावन चरण के स्पर्श से

सारे लोकों को पवित्र कर देती हो।

अम्मा! आप समस्त जड चेतन जगत को,

ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके तक,
 प्रसन्नता से धर्म से लेकर मोक्ष तक
 सारे पुरुषार्थों का दान करती हो
 अम्मा! आप अपने प्रेम की लहरों से
 सारे मानव जगत को आप्लावित करती हैं,
 तीनों लोकों को आश्चर्य चकित करती हैं।

ओट्टूर की एक ही कामना थी। जब कभी वे अम्मा के दर्शन पाते तब वे उनसे यही प्रार्थना करते थे - "अम्मा, जब मैं आखिरी सांस लूँ तब आपकी गोद में सिर रखे रहूँ। यही मेरी एकमात्र इच्छा है, एकमात्र प्रार्थना है। मेरी अम्मा, अपना सिर आपकी गोदी में रखे हुए मैं मर सकूँ।" वे जब कभी मिलते तब यही प्रार्थना दोहराते। वे अपनी प्रार्थना इतनी बार दोहराते थे कि अम्मा के सारे भक्तों को और कवि के चाहकों को यह विदित थी।

अम्मा से मिलने के बाद शीघ्र ही ओट्टूर आश्रम के स्थायी निवासी हो गए। आश्रम में उनका निवास बड़ा शान्तिमय व आनन्दमय रहा। वे हमेशा कहते थे - "मैं अब समझ गया कि भगवान ने मेरा त्याग नहीं किया क्योंकि मैं उनकी सन्निधि में रहता हूँ, उनके दिव्य प्रेम का अनुभव करता हूँ। जब मैं सोचता था कि श्रीकृष्ण या चैतन्य महाप्रभु या अन्य किसी महात्मा के साथ रह नहीं सका, तब मन बहुत ही निराश होता था। किंतु अब मैं ऐसा अनुभव नहीं करता क्योंकि मेरे विचार में अम्मा उन सब का पूर्ण रूप हैं।"

१९८९ में अम्मा की तीसरी विश्व यात्रा संपन्न हुई। उसके पहले ओट्टूर का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। उनका शरीर शिथिल हो रहा था। अम्मा ने उनकी चिकित्सा की पूरी व्यवस्था की थी। इसके बावजूद वे अपना स्वास्थ्य पूरी तरह पा नहीं सके थे। वे बहुत कमजोर हुए और उनकी दृष्टि जाती रही। ठीक देखने में असमर्थ होने के कारण वे नियमानुसार कविता लिख नहीं पाते थे। उसके बदले वे अपने भतीजे नारायण को रचनाएँ सुनाकर लिखवाते रहे। नारायण उनकी व्यक्तिगत सेवा के लिए सदा साथ रहता था।

ओट्टूर का स्वास्थ्य बदतर हो रहा था। फिर भी उनकी शिशुसहज निश्छलता और अम्मा के प्रति उनका व्यवहार बिल्कुल नहीं बदला। वह अधिक तीव्र हो गया। अम्मा की गोद में सिर रखे आखिरी सांस लेने की उनकी प्रार्थना निरंतर

चलती थी। जब उनकी दृष्टि बिलकुल क्षीण हुई तब उन्होंने अम्मा से कहा- "अगर आप मेरी बाह्य दृष्टि ले रही हैं तो ठीक है। पर हे जगन्माता, कृपया मेरे भीतरी अंधकार को दूर करें, अंतर्चक्षु को खोल दें। इस शिशु की प्रार्थना को न ठुकराएँ।"

इस पर अम्मा ने प्रेम से उत्तर दिया- "उणिक्कण्णा, चिंता मत करो। वह ज़रूर होगा। अम्मा तुम्हारी निश्छल प्रार्थना को कैसे ठुकरा सकती है?"

अम्मा की तीसरी विश्व यात्रा के प्रारंभ होने के सप्ताह भर पहले ओट्टर का स्वास्थ्य एकाएक खराब हो गया। उनकी स्थिति बड़ी गंभीर हुई और वे खाट पर ही पड़े रहे। सभी ने सोचा कि वे मर जाएँगे। ओट्टर को मौत का डर नहीं था। उनका डर था कि अम्मा की विदेश यात्रा के दौरान न मर जाएँ। उन्होंने अम्मा को अपना भय बताया - "अम्मा, मैं जानता हूँ कि आप सर्वत्र हैं और आपकी गोद विश्व सी व्यापक है। फिर भी मैं अपनी अंतिम यात्रा के समय आपकी उपस्थिति की प्रार्थना करता हूँ। यदि मैं आपके दूर रहते हुए मरूँ तो आपकी गोद में सिर रखे मरने की मेरी इच्छा पूरी नहीं होगी।" अम्मा उन्हें प्रेम से सहलाती रहीं और अधिकारवाणी में बोलीं - "नहीं बेटे, उणिक्कण्णा, ऐसा नहीं होगा। तुम विश्वास कर लो कि अम्मा की वापसी के बाद ही तुम्हारा शरीर त्याग होगा।"

ओट्टर के मन को बड़ी शक्ति मिली। क्योंकि यह आश्वासन अम्मा के ही होंठों से निकला इसलिए ओट्टर ने दृढ़ता से विश्वास किया कि मृत्यु उन्हें अम्मा के आने से पहले छीन नहीं सकेगी।

तीन महीने के विश्वभ्रमण के बाद अम्मा अगस्त में आश्रम वापस आई। उनकी अनुपस्थिति के दिनों में ओट्टर की चिकित्सा एक आयुर्वेदिक वैद्य के यहाँ होती थी। वे वैद्य अम्मा के बड़े भक्त भी थे। उन्होंने इस महाकवि का पूरा ध्यान रखा और ओट्टर का स्वास्थ्य ज़रा सा सुधरा। किंतु कुछ समय बाद बदतर हालत हो गई। अम्मा ने ओट्टर से आश्रम लौटने को कहा क्योंकि अंतिम यात्रा का समय समीप था।

श्रीकृष्णाष्टमी के दिन ओट्टर अम्मा के पास बैठे रहे और उन्होंने सारे समारोहों में भाग लिया। श्रीकृष्णाष्टमी के दूसरे दिन देवीभाव का दिन था। भावदर्शन रात को ढाई बजे समाप्त हुआ तो उसके बाद अम्मा ओट्टर के कमरे में गई। वे बहुत कमज़ोर तो थे, पर अम्मा को देख कर खुश हुए। वे बच्चे की तरह रो पड़े और उन्होंने अम्मा से प्रार्थना की, "अम्मा, हे जगदंबा, मुझे वापस बुला लो।" जैसे मैं बच्चे को सहलाती हूँ वैसे ही अम्मा ओट्टर की छाती, माथा आदि सहलाती रहीं। प्यार और करुणा उमड़ रही थी।

एक भक्त ने उस दिन अम्मा को एक नई रेशमी चटाई भेंट की थी। अम्मा ने गायत्री से वह चटाई करुणा के कमरे में लाने को कहा। गायत्री गई और शिघ्र ही चटाई लिए लौटी। अम्मा ने ओटूर का पतला व दुबला शरीर खाट से उठाया और माँ जैसे बच्चे को बाहों में लिए रहती है उसी प्रकार लिए खड़ी रहीं। गायत्री, बालु और नारायण ने रेशमी चटाई खाट पर बिछाई। जब ओटूर अम्मा की अपार करुणा का अनुभव कर रहे थे वे ऊंची आवाज़ में बोल उठे- "अम्मा, हे जगदंबा, इस नालायक बच्चे पर इतना प्यार व करुणा क्यों बरसा रही है? अम्मा, अम्मा, अम्मा।"

अम्मा ने उन्हें बहुत धीरे से खाट पर लेटाया और कहा - "बेटे, उणिक्कण्णा, खूब सोओ। अम्मा सवेरे आएगी।"

"अम्मा, मुझे चिरनिद्रा में सुला दो", ओटूर ने कहा। अम्मा ने फिर से उन्हें करुणापूर्वक देखा और कमरे से चलीं।

उस रात को कवि ने अपना एक नया गीत सुनाया। वह अंतिम गान था।
भावार्थ -

मेरी चिकित्सा करते वैद्य हार मान गए।

मेरे सारे बंधु निराश हो गए।

अम्मा, मुझे अपनी गोद में प्रेम से लिटाओ

शरण दो, मुझे तुकराओ मत

हे शारदामणि, हे सुधामणि, पावन जननी!

मुझे वात्सल्य से अपने गोद में लिटाओ।

अपने मुखमंडल पर कृष्णभाव प्रकट करो।

मुझे अमृतत्व से अनुगृहीत करने में अब विलंब न करो।

अपने प्यारे मुखमंडल पर नन्दलाल का भाव दर्शाओ,

इस छोटे कन्हैया को दिखाओ!

अपनी गोद में इसे सुलाओ!

दूसरे दिन सवेरे सात बजे यानी २५ अगस्त १९८९ को अम्मा ने नारायण को बुलवाया। उन्होंने उससे कहा कि ओटूर कुछ घण्टों के मेहमान हैं। अम्मा

ने आगे कहा- "अपने चाचा से यह पता कर लो कि क्या अपना अंतिम संस्कार आश्रम के अहाते में चाहते हैं या अपने गांव में।" नारायण वापस कमरे में गया और उसने ओट्टर को अम्मा का संदेश सुनाया। यद्यपि उनकी आवाज़ बहुत धीमी थी तो भी ओट्टर ने स्पष्ट उत्तर अपने हाथ के इशारे से दिया - मेरा अंतिम संस्कार यहीं - इस पुण्य भूमि में होगा, और कहीं नहीं।

करीब दस बजे ओट्टर ने उनके पास खड़ी ब्रह्मचारिणी लीला से अम्मा को बुलाने को कहा। लीला ने उनकी प्रार्थना पर उतना ध्यान नहीं दिया। वह अपने हाथ में कोई दवा लेकर नारायण को उसका क्रम समझा रही थी। आखिर ओट्टर ने लीला को एक धक्का दिया और इशारा किया- "अब कोई दवा नहीं, अम्मा को बुलाओ।" लीला कमरे से गई। आगे कुछ क्षणों तक ओट्टर के होंठ बुदबुदा रहे थे - "अम्मा, अम्मा, अम्मा" - इस जप के दौरान जैसे वे समाधि में रहे थे।

उस समय अम्मा अपने कमरे में थीं। लीला जब भीतर आई तब अम्मा ने गायत्री व लीला से कहा- "कुछ क्षणों में ओट्टर बेटा प्राण छोड़ेगा। किंतु उधर अम्मा के जाने का समय नहीं हुआ। अब उसका मन पूर्णतः अम्मा पर केंद्रित है। यह तीव्र चिंतन लय की दशा में पहुँचेगा। तब अम्मा उसके पास जाएगी। यदि अम्मा इससे पहले जाएँगी तो लय की गहनता कम हो जाएगी।" कुछ देर बाद अम्मा अपने कमरे से ओट्टर के कमरे गई। लीला पीछे पीछे चली। अम्मा ओट्टर के कमरे में मंदहास करती पहुँचीं और ओट्टर के बिलकुल पास उनके बिस्तर पर बैठ गई। अम्मा के मुखमंडल पर असाधारण कांति थी। वे उणिक्कण्णन के मुख पर देखती ही रहीं, मानों कहती हों, "आओ मेरे बेटे, मेरे दुलारे उणिक्कण्णा, आओ अपनी शाश्वत माता में लीन हो जाओं"। जैसे कि अम्मा ने पहले भविष्यवाणी की थी, ओट्टर लय की दशा में लेटे थे। अम्मा उनका माथा, छाती को सहलाती मलती उमड़ता प्यार व करुणा देती रहीं। यद्यपि ओट्टर समाधि दशा में थे तो भी उनकी आँखें अधखुली थीं। उनके चेहरे पर किसी तरह की पीड़ा या संघर्ष का कोई निशान नहीं था। कोई भी यह आसानी से देख सकता था कि वे कितने हर्षित व लीन थे। अम्मा उनके सिर के पास धीरे से बढ़ीं। उन्होंने उनका सिर धीरे से उठाया और अपनी गोद में रखा। उन्होंने अपना दाहिना हाथ उनकी छाती पर रखा और मुखमंडल को निहारती रहीं।

महान कवि व भक्त, अम्मा के उणिक्कण्णन अम्मा की गोद में लेटे रहे तो अम्मा ने धीरे से उनकी पलकों को सहलाया और वह हमेशा के लिए बंद हो

गई। ओट्टर ने अपना शरीर छोड़ा और उनकी आत्मा अम्मा में सदा के लिए लीन हो गई। अम्मा झुकीं और उनके माथे को प्यार से चूमा।

यों कवि ने अम्मा के अवतरण के पच्चीस वर्ष पहले अपने गीत - "कण्णन्दे पुण्यनाम" में जो अंतिम पंक्ति लिखी थी वह करुणामयी जगदंबा ने पूरी कर दी।

"कब नाटक मंचित हो जाय? कब मैं अम्मा की गोद में गिरूंगा? और अम्मा की गोद में लेटे लेटे आनन्दपूर्वक कब सोऊंगा? जब सोऊं तब मेरे हृदय निवासी श्रीकृष्ण का सुन्दर रूप कब स्वप्न में देखूंगा? जब मैं जागूँ, तब कब विश्वविमोहक श्रीकृष्ण के दर्शन करूंगा?"

यह घटना इसका उदाहरण है कि सद्गुरु जो ईश्वर से अभिन्न हैं, सच्चे भक्त की हार्दिक इच्छाएँ पूरी करते हैं।

इस घटना की एक उल्लेखनीय बात यह है कि ओट्टर जब अम्मा की विश्व यात्रा के समय अपने मरने का भय प्रकट करते थे तब जैसा पहले उल्लेख हुआ है, अम्मा ने कहा था, "नहीं उणिक्कण्णा, ऐसा नहीं होगा। अम्मा के आने के बाद ही उणिक्कण्णन शरीर छोड़ेगा।"

कौन ऐसा वादा दे सकेगा कि एक आदमी अमुक समय के पहले नहीं मरेगा? यह तो ऐसा है मानो मौत पूर्णतः अम्मा के अधीन है। जब वे कहती हैं कि "जब तक मैं अनुमति न दूँ तब तक तुम मेरे बच्चे का स्पर्श नहीं कर सकते।" अम्मा के सिवा और कौन मृत्यु को आदेश दे सकता है? ओट्टर के मतानुसार अम्मा साक्षात् जगदंबा हैं, परमसत्य ब्रह्म की पूर्ण अभिव्यक्ति हैं, वे सच्चिदानन्द मूर्ति हैं। वे मानव के रूप में देवी हैं। ईश्वर के सिवा कौन ऐसा आदेश दे सकते हैं? जो मृत्यु के पार पहुँच गया है वही बता सकता है - "जब तक मैं कहूँ कि समय हो गया है तब तक उठरो।" यहाँ वही हुआ था।

ओट्टर के देहांत के बाद केरल के प्रसिद्ध लेखक, भाषाविद् और विद्वान श्री. एन.बी. कृष्णवारियर ने एक प्रसिद्ध समाचार पत्र में ओट्टर पर संपादकीय लिखा - "ओट्टर ने युवा माता अमृतानंदमयी में जगदंबा को देखा वे उस वृद्ध ओट्टर से अपने बच्चे की तरह ममता रखती थीं। वह एक निराला माँ-बेटे का संबन्ध था।"

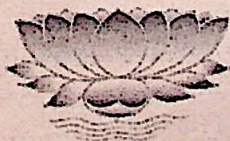
हम अब उस खास शाम को लौट चलें। वह ओट्टर के देहांत के कुछ वर्ष पहले की बात है। बालु वृद्ध कवि का हाथ संभाले हुए नारियल के बाग को

लौटा। ओट्टूर बड़ी भक्ति व विनय से अम्मा के चरणों पर गिरे। साष्टांग दंडवत करते हुए उन्होंने कहा, "अम्मा, आप जानती थीं कि आपका यह दास आपको देखना चाहता था और आपके साथ रहना चाहता था। आपने मुझे बुलवाया है क्योंकि आप मेरी इच्छा जानती हैं। अम्मा कृपया अपना चरण मेरे सिर पर रखिए।" अम्मा जोर से हंस पड़ीं और बोलीं, "उष्णिक्कण्णा मेरे पैर गंदे हैं।" ओट्टूर ने बड़ी सशक्त व उदात्त वाणी में कहा, "आप क्या कह रहीं हैं? आपके चरण और गंदे! अम्मा ऐसा मत कहिए। मैं जानता हूँ कि आपके चरणों की धुली पूरे विश्व के अज्ञान अंधकार को नष्ट करने के लिए पर्याप्त है। अपना चरण मेरे सिर पर रखिए। नहीं तो मैं नहीं उठूँगा।"

आखिर अम्मा को ओट्टूर की इच्छा माननी पड़ी। उन्होंने अपना चरण ओट्टूर के सिर पर रखा। वे महान भक्तकवि, ओट्टूर भावविभोर हो गए। वे बारंबार दोहराते रहे, "आनन्दोऽहं, धन्योऽहं, आनन्दोऽहं।" उन्होंने अम्मा के चरणों की धुली लेकर शरीर पर मला।

ओट्टूर ने अम्मा के सामने घुटने टेक नमस्कार किया। अम्मा ने बड़ी ममता से उन्हें आलिंगन किया। महाकवि ने अम्मा की तरफ निश्छल बालक की तरह देखा। उनकी आँखें आँसुओं से भरी थीं। वे बोले, "अम्मा, कभी इस बच्चे का त्याग न करना। मुझे हमेशा अपनी दिव्य सन्निधि में रखना।"

ॐ इति।



अनुक्रम

अध्याय १	9
सीमित 'अहं' नहीं असीम आत्मा	9
अध्याय २	13
मन पागल है	13
अहं ध्यान पर जीता है	15
अध्याय ३	23
साक्षीभाव	23
यथार्थ केन्द्र भीतर है	24
पूर्ण सचेत रहो	26
साक्षी भीतर है	31
सर्वसाक्षी अम्मा	38
आत्मा की अनन्त शक्ति	40
अध्याय ४	45
मन झूठ है	46
मन की दो शक्तियाँ	50
जागो और समझो	51
आसक्ति रोग है	55
जब अम्मा कहती हैं - चिंता मत करो....	57
तपस्या की आवश्यकता	59
नौसिखिया बनो	62
श्रवण की कला	65
शिष्यों के तीन प्रकार	67
अध्याय ५	71
पराशक्ति के रूप में अम्मा के दर्शन	72
क्या वर्तमान संघर्षों के लिए धर्म उत्तरदायी है?	74
धर्म और अध्यात्म	76

अध्याय ६	83
कृष्णभाव की समाप्ति	83
अध्याय - ७	95
समुद्र की तरह विशाल और गहरा	95
गोता लगाओ और गहराई को समझो	97
प्रलयाग्नि के समान	100
मानव अस्तित्व का उच्चतम शिखर	101
करुणामयी अम्मा	104
अध्याय ८	109
विरसता को जीतना सीखो	109
जीवन को सकारात्मक दृष्टि से देखो	110
अध्याय ९	115
अम्मा एक पहेली	115
अम्मा की बीमारी	120
गुरु एक अज्ञेय व्यक्ति	123
अध्याय १०	131
एक अच्छी याददाश्त	131
सद्गुरु की सर्वव्यापी प्रकृति	133
सद्गुरु के चरणों की शरण लो	135
समर्पण के लिए साहस चाहिए	137
अहं यथार्थ सत्त्व को नष्ट करता है	139
सौन्दर्य निरहंकारिता में है	142
अध्याय ११	145
अध्याय १२	153
मेरा अधिकार नहीं केवल उनकी कृपा	153
सूक्ष्म अहं से सावधान	156
आनन्दमग्न अम्मा	160
अध्याय १३	163
दिव्यता उधार नहीं ली जा सकती	163

अध्याय १४	167
यह 'वही' है.....	169
साधक में स्त्रीसुलभ गुणों का महत्व	170
सद्गुरु - विश्व और उससे परे.....	173
अध्याय १५	179
क्या गुरु के बाह्य रूप से लगाव महत्त्वपूर्ण है?	179
प्यार करती माँ के समान	180
सद्गुरु समस्त दुःखहारी.....	183
ईश्वर से अभिन्न	187
सद्गुरु से आसक्ति ईश्वर से आसक्ति है.....	190
अध्याय १६	197
अम्मा मुक्तिदायिनी	197



